युग-पुरुष महात्मा गांधी

पहला भाग

लेखक

श्री एस० मनोहरलाल

प्रो० भ० प्र० पान्थरी

भूमिका लेखक

आचार्य नरेन्द्र देव

वाइस-चान्सलर लखनऊ यूनीवर्सिटी

प्रकाशक

प्रकाशन-गृह,

टिहरी गढ़वाल।

प्रकाशन-मत्री
श्री पान्थरी
प्रकाशन-गृह
टिहरी गढवाल स्टेट

प्रथम सस्करण २,०००
चैत्र नवमी, स० २००४
१८ अप्रैल १९४८

मूल्य ५) रु०

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस

पुस्तक मिलने का पता—
प्रो० भगवतीप्रसाद पांथरी
श्री काशी विद्यापीठ, बनारस कैण्ट,

बापू की वाटिका का

यह श्रद्धा पुष्प

बापू की ही बलि वेदी पर

अर्पित !

भूमिका

'युग-पुरुष महात्मा गांधी' नामक पुस्तकका पहला भाग पाठकोंके सन्मुख है। पुस्तकके लेखक श्री पाथरीजी तथा श्री मनोहरलाल हैं। श्री पांथरीजी इतिहासके विद्यार्थी हैं। इन्होंने इतिहास संबंधी कई पुस्तक लिखी है। प्रस्तुत पुस्तकके पहले दो अध्यायोंमे ऐतिहासिक पृष्ट-भूमि लिखी गयी है जिससे महात्मा जी के कार्यको समझनेमे सुविधा हो। पुस्तक दो भागोंमें समाप्त होगी। पहले भागमें सन् १९१४ तक की घटनाओंका उल्लेख है।

महात्माजी सचमुच वर्तमान युगके सर्व श्रेष्ठ पुरुष हैं। भारतीय सभ्यताकी यह सबसे बडी देन है। उनकी शिक्षा मे प्राचीन और अर्वाचीन दोनोंका अच्छा सम्मिश्रण है। उनकी शिक्षाका महत्व केवल हमारे लिए ही नहीं है, वरच सारे संसारके लिए है। आज संसार चौराहे पर खड़ा है। उसको एक नए मार्गकी तलाश है, एक नये सन्देशकी भूख है। महात्माजीका दिव्य सन्देश संसारका त्राण कर सकता है।

गांधीजी की अनेक जीवनियां लिखी गयी है। महात्माजी

ने स्वयं अपनी आत्मकथा लिखी है। किन्तु वह अपूर्ण है। उनके निधनके बाद गाधी साहित्य मे आशातीत वृद्धि होगी। प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रकारका एक प्रयास है। पुस्तकका दूसरा भाग अधिक महत्वका होगा, क्योकि सन् १९१४ के बाद ही महात्माजी ने भारतके राष्ट्रीय आन्दोलन मे सक्रिय भाग लेना आरभ किया था। पुस्तक बडी सावधानी और परिश्रमसे लिखी गई है। पाथरीजी ने भारतीय इतिहासका अच्छा अध्ययन किया है। उनके और उनके सहयोगी ग्रन्थकारसे ऐसी ही आशा थी।

लखनऊ
२–४–४८

नरेन्द्र देव

आमुख

सन् ४२ का जमाना था और भाग्यवश आगरा सेन्ट्रल जेलके बारह तालोंमें हम दोनों एक साथ बन्द थे। गांधी जयन्ती आयी, हम लोगोंने उसमें भाग लिया। उस अवसर पर गांधीजीके सम्बन्धमें कुछ व्याख्यान आदि भी हुए। अनेक व्यक्तियोंने तरह-तरहसे गांधीजीके सिद्धान्त और कार्योंकी आलोचना की। हमें कुछ एक सज्जनोंकी आलोचनासे लगा कि इसमें गांधीजीके बजाय वक्ताकी निजी भावना अधिक है। अतः हम लोगोंने तभी यह निश्चय किया कि सही रूपसे गांधीजीके भावोंको समझने और समझानेके लिए उन्हींकी आत्मकथा और लेखोंके आधारपर उनका अध्ययन होना चाहिए। प्रस्तुत पुस्तक उसी अध्ययनका प्रयास है।

किन्तु इस पुस्तककी रचनाका आधार शुद्ध श्रद्धा रही है, हमने इसमें पांडित्यका प्रयोग न करके विशुद्ध छात्र-वृत्तिसे काम लिया है, क्योंकि श्रद्धा-प्रेरित निष्पक्ष जिज्ञासासे हमने गांधीजीके जीवनको समझने की यहाँ चेष्टा की है, वह भी इसलिए कि हम उनके जीवनसे कुछ सीख और कर सकें।

गांधीजीके शब्दोंमें 'मेरा जीवन मेरा सन्देश है', यही हमारा ध्रुव विश्वास है, इसलिए उनके सन्देशको समझने और हृदयंगम करनेका हमने 'युग पुरुष' के प्रथम और द्वितीय भागमें प्रयास किया है।

हम इसमें कहाँतक सफल हुए हैं, यह तो विद्वान समाज ही बतला सकेगा। लेकिन यदि इस प्रयाससे गांधीजीका सन्देश कुछ भी प्रचारित हो सका तो हम अपने प्रयासको सफल ही समझेंगे।

एक बात और, 'हमने यह पुस्तक' ४६ में ही पूरी कर दी थी, और आधी छप चुकी थी कि इस बीच गाधीजी की हत्या हो गयी। अतः इस अनिवार्य कारणसे पुस्तक की क्रियाओमें अन्तर पडा है।

प्रस्तुत प्रथम भाग सामने है और द्वितीय भाग भी प्रेस में जा चुका है। आशा है, जल्दी ही प्रकाशित होकर पाठकोके सामने आ जायगा।

अन्तमे हम अपने कर्नाटक के विद्यार्थी-श्री महाबलेश्वर भट्ट और श्री गजानन शर्माके बहुत आभारी है। उन्होंने हमें प्रेस कापी तैयार करने आदि मे बहुत सहयोग दिया। श्री भट्टजीने प्रूफ देखने और ब्लाक बनवानेमे भी हमे सहायता पहुँचायी जिसके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। हमारे मित्र विद्यापीठ पुस्तकालयके अध्यक्ष भाई प्रो० गोरावाला खुशाल जैन भी धन्यवादके पात्र है जिनसे हमे पुस्तकके बारे यदा-कदा सुझाव मिलते रहे है। पुस्तककी छपायी सफायी और प्रूफ आदिमें बहुतसी भूले भी रह गयी होगी, जिसके लिए हमे आशा है, सहृदय पाठक हमे सचेत तथा क्षमा करेगे।

विनीत—

एस. मनोहरलाल

भगवती प्रसाद पान्थरी

विषय-सूची

		पृ
१	भारत की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि	२८
२	ऐतिहासिक प्रतिक्रिया और राष्ट्रीय पुनर्जागृति	६७
३	महात्मा गाधी का प्रारम्भिक जीवन	७२
४	अफ्रीका मे	१०३
५	जीवन मे नई कोपले	१११
६	गाधीजी और वोअर युद्ध	१२५
७	मातृ-भूमिको	१४५
८	फिर दक्षिण अफ्रीका मे	१६९
९	सेनापति गाधी	१९२
१०	सत्याग्रह का आरंभ	२२३
११	सत्याग्रह पूर्णता पर	२७३
१२	सफल संग्राम	२९२

भारतकी ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि

अध्याय १

महात्मा गांधीके जीवनका हमारे भारतकी राजनीति और
राष्ट्रीय जीवनपर जो प्रभाव पड़ा है, और उससे हमारे नूतन
भारतमें जो प्रतिक्रिया हुई, उसे ठीक तरह समझनेके लिये हमें
प्रथम अपने इतिहासकी उस पृष्टि-भूमिको समझना आवश्यक
है जिसकी प्रतिक्रिया होने महात्मा गांधीको युग पुरुष या युगा-
वतारके रूपमें प्रकट किया।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि युग 'पुरुष' की सृष्टि करता
है और पुरुष 'युग' की। इसलिए यद्यपि यह सही है कि गांधीने
आज भारतमें एक नूतन 'युग' गांधी-युगको जन्म दिया है,किन्तु
यह भी सही है कि 'गांधी' को जन्म देनेवाला भी भारतीय इति-
हासका वह युग है, जिसकी बन्धनोंको मुक्तकर राष्ट्रको स्वतन्त्र
और स्वच्छंद करनेवाली प्रतिक्रियाने समय-समयपर ऐसे महा-
पुरुषों अथवा व्यक्तियोंको जन्म दिया जो उसके इष्टके साधन
हो गये है। राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध आदि ऐसे कतिपय
महापुरुषोंमें ही गांधीका व्यक्तित्व अपना स्थान रखता है। इस
प्रकार चूँकि गांधीका व्यक्तित्व उनसे पूर्ववर्ती इतिहासकी प्रति-
क्रियाका ही एक स्वरूप है इसलिये उनके जीवन और कार्योंपर
प्रकाश डालनेसे पहिले उनके पूर्व इतिहासपर कुछ प्रकाश डालना
आवश्यक हो जाता है।

भारतीय इतिहासकी प्राचीनता—

संसारके प्राचीन सभ्य देशोंमे सबसे प्राचीन देश हमारा भारतवर्ष है। भारतके पश्चात् अन्य प्राचीन सभ्य देशोमे चीन, मिश्र, मेसोपोटामिया, क्रीट और यूनान तथा रोमका स्थान है। मिश्रआजसे लगभग हजारो वर्ष पहले बहुतही सभ्य और सुसंस्कृत देश था। प्राचीन समयमे यह सभ्यता हजारो वर्षतक फूलती फलती रही। किन्तु आखिर वह विश्वमे खेल कूदकर फिर अन्तर्धान हो गई, और अपने पीछे स्मृति स्वरूप कुछ पिरामिड, ममी और मन्दिर तथा विशाल इमारतोके खंडहर छोड गई। यद्यपि मिश्र अभी भी है, परन्तु आजके मिश्र वालो और प्राचीन पिरामिडके बनानेवाले मिश्रवासियोंके बीच कोई सास्कृतिक अथवा जातीय शृङ्खला नही है। प्राचीन मिश्र तो मिट चुका।

मेसोपोटामिया अथवा ईराक तथा परशिया भी मिश्रकी भाति अपनी सभ्यताके प्राचीन कालमे न जाने कितने विशाल और प्रभावशाली राज्यो और सभ्यताओंके केन्द्र रहे है, किन्तु आज वे सब मिट चुके। उनका प्राचीन गौरव अतीतके गर्त्त मे खो चुका है।

यूरोपका सुरम्य द्वीप क्रीट आजसे ३००० वर्ष पूर्व अपनी उमग भरी सभ्यतामे इठलाया करता था। क्रीटका यौवन और सौंदर्य उसकी वैभवशाली नगरी 'कनोसस'मे बिखरा हुआ एक समय बडी प्रखरतासे चमका था। कनोसस नगरी अपने दूसरे नाम 'मिनोस'से भी प्रख्यात थी। यह नगरी क्रीटकी सभ्यताका

केन्द्र थी और इस नगरीके नामपरही क्रीटकी सभ्यता संसारमें मिनोयन् कहकर पुकारी जाती थी। करीब २००० वर्षों तक इस सभ्यताका भी संसारके चित्रपटपर अभिनय होता रहा। उसके बाद यूनानी आये और मिनोसको उजाड गए।

'मिनोस'को उजाडकर उसके अवशेषोंपर यूनानियोंनेअपनी 'हेलनिक' सभ्यताको प्रतिष्ठित किया। यह घटना आजसे ३००० वर्ष पूर्वकी है। फिर सैकडों वर्षोंतक यूनान, स्पार्टा और एथेन्सकी धूम रही। किन्तु वे भी मिट चले। आखिर रोमका अभ्युदय हुआ। यूनान और रोमही यूरोपको सभ्यताके पथपर लाये, लेकिन स्वय विश्वके रगमचसे खिसककर उन्होंने भी नेपथ्यकी राह ली।

यद्यपि भारतवर्षके उपरान्त सभ्य होनेवाले प्राचीन मिश्र, मेसोपोटामिया, ईराक वा परशिया, क्रीट या मिनोस अथवा कनोसस, यूनान और रोम आज संसारके चित्रपटसे अन्तर्धान हो चले है, किन्तु भारतवर्ष और चीन आज भी अपनी प्राचीन सस्कृति और सभ्यताको लिये हुए जीवित है।

भारतवर्षकी सभ्यता आजसे कमसे कम लगभग १०,००० वर्ष पूर्वकी सभ्यता है। इसी प्रकार चीनकी सभ्यता भी आजसे ४००० वर्ष पूर्वकी सभ्यता है। इन दोनो देशोपर सदियोंसे आक्रमण तथा प्रत्याक्रमण होते रहे,और दोनों मुल्क विदेशी वर्बर आक्रमणकारी और विजेताओं द्वारा लूटे-खसोटे गये। इस प्रकार दोनोंके ऊपर युद्धोंके खूब घात और प्रतिघात हुये। विनाशने हमारे मुल्कमें खूब ताडव किया और आक्रान्तकोंने हमें उजाडकर वीरान बनानेके कई प्रयत्न किये। किन्तु इतनेपर भी आजतक

हम अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति तथा इतिहासको सुरक्षित रखकर जीवित है। हमे मिटानेके लिए सदियोंसे विदेशियोने जो भी प्रयत्न किये उनके वे सारे प्रयत्न विफल रहे और फलतः भारतवर्ष और चीन आज भी अमिट रूपसे स्थित है।

इस प्रकार ससारके प्राचीनतम सभ्य देशोंमे भारतवर्ष सबसे प्राचीन सभ्य देश है। इसकी सभ्यता जैसा कि हम कह आये है, आजसे लगभग १०,००० वर्ष तक पुरानी है।

वैदिक युग--

हमारी सभ्यताका प्रारम्भिक युग इतिहासमे 'वैदिक युग'के नामसे प्रसिद्ध है। इस युगकी तिथि आजसे १०,००० वर्ष पूर्व अथवा ईसासे ८,००० वर्ष पूवतक मानी जाती है। वैदिक युगका इतिहास हमे बहुत कुछ प्राचीन वेद-ग्रन्थोसे मिलता है। वेद असलमे हमारे धार्मिक ग्रन्थ है। वेद सस्कृतकी 'विद्' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है 'जानना' अथवा 'ज्ञान'।

वेद इस प्रकार ज्ञानके भण्डारके साथ-साथ हमारे प्राचीन आर्य पूर्वजोके स्मृति-ग्रन्थ भी है। इनसे हमारे अपने पूर्व पूर्वजोका ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त होता है। वेदोकी सस्कृति और समाज-व्यवस्था आज भी हममे कायम है, इसलिए यह कहना कि हम उन्हीं आर्योंकी सन्तान है और आज हजारो वर्षोंके बीत जानेपर भी हमारा प्रत्यक्षतः अपने वैदिक आर्य-पूर्वजोसे सम्बन्ध बना हुआ है, बिल्कुल सही है। अतः आजके भारतीय प्राचीन सहस्राब्दियोंसे ही चले आरहे है।

आजके भारतके सामाजिक व्यवस्थाकी मूल-योजना भी प्रथमतः वैदिक युगमे ही हुई थी। चार वर्ण और चार आश्रम वैदिक युगकी ही सृष्टि है।

किन्तु उस समय चार वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रके विभाग जन्मपर नही, कर्मपर निर्भर थे। इस जाति व्यवस्थाके फलस्वरूप यद्यपि हिन्दू जाति आजतक जीवित रह सकी है, लेकिन आगे चलकर यह व्यवस्था गड़बड़ा गई। चार वर्णोंका बटवारा 'कर्म'की जगह बादमे विशेषतया जन्मसे होने लगा। फल यह हुआ कि चार वर्णोकी जगह कितनीही जातिया हम लोगोंमे पैदा हो गई, जिससे हमारी एकताको बहुत बड़ा आघात पहुचा। यह एक ऐसी बुराई पैदा हुई जो आजतक हमारे समाजमे प्रचलित है।

वैदिक युगका जीवन बहुत सरल और शान्त था। वैदिक समाज 'सत्य' और 'आनन्द'की खोजमे निरन्तर उच्च 'ज्ञान' अथवा 'चित्त' प्राप्तिके प्रयत्नोंमे लगा रहता था। यही कारण है कि इस युगमे महान् ऋषि, महर्षि और तपपूर्ण ज्ञानी मुनियोने जन्म लिया और अपनी सन्तानके लिये ज्ञानके अक्षयभण्डार 'वेद' और 'उपनिषद्' अपने पीछे छोड़ गए।

इसके साथही समाज-विज्ञानका भी उनको एसाही ज्ञान था। वैदिक कालमे समाजकी रक्षा और राज्य-प्रबन्धके लिये यद्यपि राजा सर्वमान्य हुआ करता था, परन्तु उसको प्रजाकी अनुमतिपर चलते हुए शासन करना पड़ता था। राजा स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था, और यदि स्वेच्छाचारी हो जाय तो उसे गद्दीसे उतार दिया जाता था। इस प्रकार यह

युग इस प्रकारसे हमारे इतिहासका वह विमल युग था, जब कि सारा समाज सुख और शान्तिके साथ अपना जीवन व्यतीत करता था।

रामायण युग—रामावतार

वैदिक युगके बाद हमारे आर्य-इतिहासमें रामायण और महाभारत-युग बहुत महत्व रखते हैं। रामायण युगका समय करीब ४००० ई० पू० माना जाता है। इस युगमें मालूम पड़ता है कि हमारे समाजकी वेद-कालीन आध्यात्मिक भित्तिको तोड़ कर रावणकी भौतिकवादी आसुरी सभ्यता अपनी उग्र हिंसाके द्वारा समाजके सुख और शान्तिको नष्ट करना चाहती थी।

किन्तु अहिंसक अध्यात्मकी जगह हिंसक भौतिकताको कायम करनेमें रावणको सफलता प्राप्त न हो सकी। आर्य महापुरुष रामने रावणके सारे आसुरी प्रयत्नोंको विफल कर दिया। रामके देव-प्रयत्नसे आर्य-जातिपरका यह खतरा टल गया और भौतिकवादके पशुको हमारे समाजके सुख या शान्तिको कुचलनेसे रोक दिया गया। फलतः आध्यात्मके सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोंपर हमारे यहा, रावणके 'असुर-राज'की जगह रामका 'स्वराज्य' स्थापित हुआ, जिसने मानवके लिये सुख, शान्ति तथा उन्नतिके विशाल और शुभ द्वार खोल दिये।

महाभारत युग—कृष्णावतार

किन्तु रावणके आसुरी खतरेको टले हुए अभी करीब ७०० वर्षही हुए थे कि पुनः भौतिकवादिताके अनाचारने जन्म लेना

शुरूकर दिया। यह महाभारत युगका समय था। इस युगमें दुर्योधन, जरासन्ध, शिशुपाल और कस आदि राजाओंके रूपमें पशुता और आसुरी वृत्तिया बढने लगीं। ये राज भौतिकवादिताके गढ बन गए। आर्योंकी पुरातन आध्यात्मिक भित्तिको फिरसे उजाडनेका प्रयत्न होने लगा। मानव समाजसे सत्य और धर्मका पुनः लोप होना शुरू हो गया।

मानवीय कल्याणकारी प्रवृत्तियों प्रेम, शान्ति, अहिसा और मेलका स्थान, आसुरी प्रवृत्तिया—हिसा, युद्ध और अनाचारने लेना आरम्भ कर दिया, मानव समाजसे धर्म हटता गया और अधर्मकी बढती होने लगी। सब मनुष्योंको एकही ईश्वरके विभिन्न रूपमे देखने वाली आर्य-सम-दृष्टिका लोप होने लगा और मनुष्योंमे जाति तथा ऊँच-नीचके भेद भाव पनपने लगे। मनुष्यपर फिर अत्याचार होने लगे और समाजमे इस अनीतिके कारण अव्यवस्था और त्रास फैल उठा। इस अनीति और अत्याचारके फलःस्वरूप महाभारत युगकी त्रस्त मानवीय अभ्यर्थना और पुकारने कृष्णको जन्म दिया। फलतः कृष्ण 'युगावतार' बनकर फिरसे आर्य-व्यवस्थाको भौतिकताके पशु वा राक्षससे बचानेके लिये आपहुचे। कृष्णकी सहायतासे आर्य पाडवोंने दुर्योधनको कुरुक्षेत्रकी लडाईमे हराकर भौतिकवादको एक बार जबर्दस्त शिकस्त दी। इस विजयके बाद कृष्णने सत्य, अहिसा, समता तथा स्वतन्त्रताके आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर आर्योंके उजडते हुये समाजकी फिरसे पुनर्स्थापनाकी।

भारतीय—प्रजातन्त्र—राज्य

महाभारतके युद्धके वाद दुर्योधन और जरासधकी वढती हुई साम्राज्यशाहीका अन्तहो गया। उनके वाद फिर भारतवर्षसे कुछ समयके लिये राजतन्त्र उठसा गया। राजतन्त्रके उठतेही हमारे भारतवर्षमे कई छोटे-छोटे प्रजातन्त्र उग आये। इन प्रजातन्त्रोमे मगध, विदेह, काशी, कोशल, वैशाली, पिपलीवाहन, मालव तथा क्षुद्रक आदिके नाम प्रसिद्ध है। इन प्रजातन्त्रोमे कोई स्वेच्छाचारी राजा नही होता था। शासनका कार्य प्रजाके प्रतिनिधियोकी सलाह पर हुआ करता था। गॉवोके शासनके लिये पचायते होती थीं जो स्वय गॉवोके मामलोको घरपरही सुलझा लिया करती थीं।

महावीर और बुद्धके अवतार

किन्तु कुछ साल वाद वह समाज-व्यवस्था, जिसे कृष्णने आकर ठीक किया था, फिर विगड़ चली। इस समय समाज-व्यवस्थाके विगडनेका कारण भौतिकवादी साम्राज्यशाही न थी, किन्तु धार्मिक अनीति और अत्याचार थे। ब्राह्मणोने धर्माधर्मपर अपनी प्रधानता विठला दी थी। मोक्षका मार्ग ब्राह्मणोंने अन्यके लिये वन्दकर दिया था। धर्मके आध्यात्ममूलक सिद्धान्तोको पीछे ढकेल दिया गया था, और अहिसा तथा प्राणियोकी सेवाके वदले असत्यपूर्ण हिसात्मक यज्ञ होने लगे थे। जाति-भेद वढ गये थे, और मानव अपनी आपसी एकताको खोकर फिर अलग-अलग होकर एक दूसरेसे अत्याचार और अनाचारका वर्ताव करने लगे थे। ई पू छठी शताब्दिकी यह दशा थी। अतः युगको फिर

धर्म-संस्थापन करनेवालेकी आवश्यकता हुई और फलःस्वरूप महावीर (५९९-५२७ ई०पू०) और गौतम बुद्ध (५६३-४८३ ई०पू०) ने 'युगावतारों'के रूपमे जन्म लिया। महावीरने जैन धर्म और बुद्धने बौद्ध धर्मकी स्थापनाकी। भगवान महावीर और विशेषकर बुद्ध भगवानने धार्मिक पाखंडो, हिंसात्मक-यज्ञो तथा जाति-भेदोंको मिटाकर मनुष्यकी हिंसात्मक प्रवृत्तियोंको रोकनेका महान प्रयत्न किया। मोक्ष, शान्ति और आध्यात्मिक सुखके द्वार सब जातियों, सब छोटे बड़े एवं तथाकथित ऊँच नीच सब प्रकारके लोगोंके लिए खोल दिये गये। परिणामतः विकृत होता हुआ हमारा समाज पुनः सचेत और सचेष्ट हो उठा, और फिर अपनेको संभालनेके प्रयत्नोंमे जुट गया।

भारतवर्षका विदेशी जातियोंसे सम्पर्कका आरम्भ—

इन अवतारोंके अलावा हमारे प्राचीन भारतीय इतिहासकी दूसरी प्रमुख घटना हमारा विदेशियोंके साथ सम्पर्क है। भारत संसारके सब देशोंसे अधिक उपजाऊ और धनधान्य पूर्ण रहा है। कहावत मशहूर थी कि भारत एक सोनेकी चिड़िया है। किन्तु हमारी यह समृद्धिही हमारे अभिशापका भी कारण बनी। हमारे इसी वैभव और धनको लूटनेके हेतु गौतम बुद्धके समयसे ही विदेशियोंने आक्रमण शुरूकर दिये थे।

परशियन साम्राज्य—

प्रथमतः परशियाके सम्राट् दाराने (५२२-४८६ ई पू) हमारे मुल्कपर हमला किया था। ५१८ ई पू मे ही वह हमारे पंजाब प्रान्तका अधिपति हो गया था। इस समयसे लेकर

करीव डेढ सौ वर्षोंतक भारतका उत्तर पश्चिमी प्रान्त परशियाके साम्राज्यका अंश बनाही रहा। भारतके इस प्रान्तको पाकर परशिया अपनेको धन्य समझने लगा। और वात भी ठीक थी, क्योंकि अकेला भारतीय प्रान्त परशियाको सालाना ३०० टेलेन्ट सुवर्ण अर्थात् करीव १२५०० मन सोना दिया करता था। इतना सोना परशियन साम्राज्यके अन्य २० प्रान्त मिलकर भी मुश्किलसे दे पाते थे। यह अपार सोनाही था जिसने परशियन लोगोंको ही नहीं, अपितु कई एक दूसरे विदेशी लुटेरोंको भी हमारे मुल्कपर धावा करनेके लिए समय समयपर न्योता दिया है।

परशियनोंके वाद चौथी शताब्दि ई पू मे यूनानियोंने भी हमारे इसी वैभवको लूटनेके लिए भारतवर्षपर हमला किया था। अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) इस यूनानी हमलेका नेता था। सन् ३२७-३२६ ई० पू०मे वह काबुलके दरवाजेसे हमारे मुल्कमे घुसा। उस समय उत्तर पश्चिममे वहुतसी प्रजातंत्र रियासते थी। यद्यपि शासन और व्यवस्थाके विचारसे ये रियासते वहुतही सुशासित और विकसित थी, किन्तु इनमे परस्पर कोई मेल न था। अपने राज्य अथवा रियासतके प्रेमके सिवाय इनमे पूर्णदेशीय राष्ट्रीयता न थी। इसलिए विदेशी आक्रमणकारीके खिलाफ वे कोई संयुक्त मोर्चा कायम न कर सके। परिणाम यह हुआ कि सिकन्दरने एक-एक करके सारे प्रजातंत्रोंको विनष्ट कर डाला। किन्तु पजावके महाराज पुरुसे विजय हासिल करनेमे उसे काफी मूल्य चुकाना पडा था। अतः पुरुके पौरुष और वलसे थककर एव डरकर अलक्षेन्द्रकी फौजे आगे वढनेका साहस न कर सकी और पजावसे ही वापिस हो गई। लौटते समय अलक्षेन्द्र

अपने जीते हुये भारतीय प्रदेशो (उत्तर पश्चिम भारत और पजाव) के शासनके लिये कुछ यूनानी शासकोंको यहीं छोड गया।

विदेशियोंसे भारतको मुक्त करनेके लिए राज्यक्रान्ति और भारतके राष्ट्रीय साम्राज्यकी पुनर्स्थापना—

अलक्षेन्द्रके लौट जानेके वादही भारतने विदेशी सत्ताके खिलाफ तुरन्त विद्रोह कर दिया। इस विद्रोहके नेता थे 'पिपली वाहन'के इक्ष्वाकु वशीय चन्द्रगुप्त मौर्य।-चन्द्रगुप्त मगधके नन्द वशीय सम्राट्के सेनापतिके लडके थे। पहिला विद्रोह चन्द्रगुप्तने नन्दोंके खिलाफ किया था और जव उन्हे पकडकर फॉसी दी जानेवाली थी, तव वे भागकर पजाव चले आये थे। पंजावमे उनकी कौटिल्यसे मित्रता हुई। चन्द्रगुप्त अलक्षेन्द्रके विजयोंसे मर्माहत हो चले थे, और इन विदेशियोंके पजेसे अपने देशको स्वतत्र देखना चाहते थे। इसलिए अलक्षेन्द्रके पीठ फेरतेही चन्द्रगुप्तने कौटिल्यकी मददसे भारतीय जनताको विदेशियोंके विरुद्ध उभाड़कर विद्रोह कर दिया। चन्द्रगुप्तका विद्रोह सफल हुआ, और सारे यूनानी शासक हिन्दुस्तानसे भगा दिये गये या मार डाले गये। इसके वाद ३२१ ई पू मे चन्द्रगुप्तने पाटलीपुत्र परभी अधिकार कर लिया। इस प्रकार उत्तरमे अफगानिस्तान, काबुल, कन्धार, गन्धार तथा पजावसे लेकर मगध और नीचे दक्षिणमे करीव मैसूर तक चन्द्रगुप्तकी अकेली सत्ता कायम हो गई। यह चन्द्रगुप्तकी ही विजय न थी, अपितु भारतकी राज्य क्रान्तिकी भी विजय थी, जिसकी सफलताने विदेशियोंको

हिन्दुस्तानसे बाहर कर हमारे खंडित भारतको पुनः मौर्योके नेतृत्वमे, एकसूत्रमे ग्रथित और संगठित कर दिया। इसी कारण मौर्य-वंश राष्ट्रीय उत्थानके इतिहासमे पहिला सार्वभौम राष्ट्रीय राजवंश माना जाता है।

मौर्य वंश—

भारतके इसी उज्ज्वल वंशने राज-कुल-भूषण सम्राट् अशोक-को भी जन्म दिया था, जिनके सुयश और सुकृतिके सौरभसे आज भी देश महक रहा है। अशोकने अपने शासनको सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोंपर चलाया, और उन सिद्धान्तोका अनुसरण करते हुए उन्होने साम्राज्यलिप्साके हेतु 'युद्ध' भी बन्द करा दिये। लोगोको तलवारसे जीतनेके बजाय उन्होंने लोगोके हृदयोंपर प्रेम और धर्मकी विजय स्थापित करनेको महत्व दिया, और इस प्रकार पाशविक विजयकी जगह धर्म-विजय की स्थापनाकी। इस तरह आजसे २२०० वर्ष पूर्वही सम्राट् अशोकने राज-शासनमे सत्य और अहिंसाका सफल प्रयोग करके दिखा दिया, और यह भी जतला दिया कि यदि राजा या शक्तिके ठेकेदार अपने स्वार्थोको सर्वोपरि न समझे अथवा मोहान्ध न हुआ करे, तो संसारसे 'युद्ध'की विभीषिका और पाशविकताका भी लोप हो सकता है। आज लोग कह दिया करते है कि संसारका काम बिना युद्ध और हिंसाके कैसे चल सकता है, किन्तु अशोकका उदाहरण ऐसा कहनेवालोको क्या चुप नही कर देता ? अशोक हमारे इतिहासके ही नही संसारके तमाम महान कहे जानेवाले

सम्राटोसे भी यथार्थतः महान थे। उनका साम्राज्य हिन्दुकुशसे आसाम और हिमालयसे लेकर सुदूर दक्षिणसे पाडुचेरी और चोल राज्योकी सीमातक फैला हुआ था। इस प्रकार स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त और अशोकके प्रयत्नोसे प्रथमतः सम्पूर्ण भारत एक शासनके द्वारा राष्ट्रीय सूत्रमे सकलित किया गया था। मौर्योका शासन यद्यपि बाह्यरूपसे साम्राज्यवादीही था, किन्तु उनके शासनके सिद्धान्त वस्तुतः प्रजातन्त्रमूलक थे। यह मौर्य साम्राज्य ई पू १८७ मे पहुचकर समाप्त हो गया और उसके पश्चात् भारतकी एक राष्ट्रीयता पुनः नष्ट हो चली।

विदेशी शक, यवन और पार्थियन—

मौर्योके बाद फिर भारतवर्षमे कई छोटे-छोटे राज्य उग आए जैसे शुग, आन्ध्र, कलिग, कण्व आदि। इससे भारतकी राष्ट्रीय शक्ति क्षीण हो चली। परिणामतः हमारे देशपर फिर यूनानियों, शक और कुशानो तथा पार्थियनोंके हमले होने लगे। २१२ ई० पू० से १२० ई० सन् तक भारतीय राष्ट्र कई विदेशी और देशी राज्योके जय-विजयकी क्रीडास्थली बना रहा। इन यूनानी, शक और कुशान राजाओमे मिलिन्द (१८५ ई० पू०) नाहपान (७८ ई० सन्) कनिष्क [१२० ई० सन्] गान्डोफारनीज (४५ ई सन्) आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय है। यद्यपि इन विदेशी राजाओने हमारे बहुतसे प्रदेशपर बाहु-बल द्वारा अपनी भौतिक विजय स्थापितकी थी, किन्तु सास्कृतिक और बौद्धिक रूपमे विजय हमारी ही रही। फलतः कुछ समयके भीतरही ये सारे शक, यवन और कुशान राजा

हिन्दू धर्मसे पराजित हुए और हिन्दू समाजको आत्म-समर्पण कर उसीमें मिल गये। इस प्रकार जिन शक, यवन और कुशानोंने हमें तलवार द्वारा विजित किया था, वे स्वयं अन्ततः हमारी संस्कृति द्वारा विजित कर लिये गये।

राष्ट्रीय पुनरुत्थान और गुप्तोंका अभ्युदय—

हम देख आये हैं कि मौर्योंके पतनके पश्चात लगभग १५० वर्षों तक भारत खण्डित अवस्थामें पड़ा था। किन्तु इस लम्बे अर्सेके बाद फिर भारतके दिन लौटे।

३४० ई० सन्‌में पुनः गुप्तवंशीय महाराज चन्द्रगुप्तके नेतृत्वमें भारतीय राष्ट्रका निर्माण कार्य शुरू हुआ जिसे उनके उत्तराधिकारियोंने योग्यताके साथ पूरा करके छोड़ा। चन्द्रगुप्तके पुत्र समुद्रगुप्त और पोते चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यके विशाल प्रयत्नोंसे सारा उत्तरी-भारत जो अबतक खण्डित पड़ा था, पुनः एक-राष्ट्र और एक शासनमें आबद्ध कर लिया गया। दक्षिणभारतपर भी गुप्तोंकी विजय और प्रभुता कायम हुई, यद्यपि वहाँके राज्योंको गुप्त-साम्राज्यमें नहीं मिलाया गया। विदेशी शक, और कुशान आदि राजाओंने भी गुप्तोंकी प्रभुताको स्वीकार कर भारतीय राष्ट्रके सामने मस्तक झुका दिया।

इस प्रकार गुप्त-राजाओंने भारतको संकलित कर भारतीय राष्ट्रका पुर्ननिर्माण किया। भारतके जीवनसे विदेशी प्रभाव हटा दिये गए, और उनकी जगह भारतीय जीवनके सब क्षेत्रों—धर्म, संस्कृति, साहित्य और कलामें भारतीयताको ही

अपनाया और विकसित किया गया। फलत: भारतीय ब्राह्मण संस्कृति और भारतीय धर्म फिरसे पनप उठे और भारतके राष्ट्रीय जीवनमें एक नूतन स्फूर्ति और जीवन संचारित हो उठा। भारतकी राष्ट्रीय भाषा, संस्कृति, साहित्य और कलाने गुप्तोंका पूर्ण सहयोग पाकर विकासकी सीमाको भी लांघ दिया। कालिदासकी शकुन्तला और मेघदूत साहित्यिक विकासके माप-दंड बन गए। अजंताकी गुप्त चित्रकारी संसारके लिये ईर्षाकी वस्तु हो गई। आजभी गुप्तोंकी 'अजंता' कलाकी विमल गंगाका स्रोत बनी हुई है। आजके बहुतसे कलाकार, जैसे बंगालके, अजन्ताकी चित्रकारीसे उत्साहित होकर गुप्त कालकी अलौकिक शैली पर चित्र बनानेके प्रयत्नमें लगे हुए है। किन्तु अजन्ताकी चित्रशैलीकी वे केवल स्पर्धाही कर सके है। राष्ट्रीय साहित्य और कलाके इस स्वर्गीय पुनर्जीवनके साथही साथ गुप्त-कालीन समाजने जो उन्नतिकी वह भी वैसीही अनुपम और अलौकिक थी। चीनी यात्री फाहियानने, जो गुप्तोंके समयमें भारतवर्ष आया था, और करीब ४०५ से ४११ तक यहाँ रहा, गुप्त शासनके बारेमें लिखा है कि उनका शासन बहुतही सभ्य और सुसंस्कृत था। अशोकीय शासनकी तरह गुप्त शासनके मूल सिद्धान्तभी अहिंसा-मूलक और सत्यपर आधारित थे। राजा प्रजाके सेवककी तरह काम करता था। जनताको हर प्रकारकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता थी। किसीपर कोई प्रतिबंध न था, और समाजका हरएक व्यक्ति उच्च आदर्शोंका माननेवाला था। गुप्त शासनकी सुयोग्यता और सफलताका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है

कि उस समय न्यायालय बहुत कम थे, और चोरी, डकैती तथा अनाचार एवं व्यभिचारका करीब-करीब लोपही हो गया था। फाँसीकी सजा तक उड़ा दी गई थी। अतः गुप्त-युग निःसन्देह हमारे भारतवर्षका राष्ट्रीय स्वर्णयुग था।

अन्तिम राष्ट्रीय आर्य पुष्यभूति वंश—

दो सौ वर्ष भारत गुप्तोंके राष्ट्रीय स्वर्ण-युगमें खेलता और खिलता रहा। इसके बाद उनके शासन और युगपर यवनिका गिरती है। और तदनन्तर छठवीं शताब्दिके अंतिम चरणमें आकर भारतवर्षके राजनैतिक मंचपर फिर राष्ट्रीय पुष्यभूति वंश प्रवेश करता है। पुष्यभूति वंश प्राचीन आर्यवंशोंमें सबसे अंतिम वंश है। इस वंशमें हर्षवर्धन सबसे बड़ा और महान सम्राट हुआ है। उसने ६०६ से लग भग ६४७ ई० सन् तक राज्य किया। हर्षवर्धन प्राचीन प्रभावशाली और शक्तिमान आर्य राजाओंमें आखिरी प्रतापी और शक्तिशाली सम्राट हुए, जिनके आधिपत्यमें उत्तरी भारत अथवा आर्यावर्त्त एक राष्ट्रके रूप में संगठित रहा। हर्षयुगमें भी गुप्तो की भांति भारतीय राष्ट्रने खूब विकास किया था।

आर्य राष्ट्रका विनाश—

हमारे राष्ट्रीय इतिहासका यह आखिरी अध्याय था। इसके बाद सन् ६४७ में हर्षवर्धनकी मृत्युके साथ हमारी राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय शासन, छिन्नभिन्न हो गये। सारा भारतीय राष्ट्र टुकड़े-टुकड़ोंमें बँटकर पुनः उसी दशाको

पहुंच गया जिसमें वह चन्द्रगुप्त मौर्यके पूर्व अलक्षेन्द्रके आक्रमणके समयमें था। सारे भारतवर्षमें पुनः कई छोटे छोटे रजवाड़े उग आये जिनमें चौथी शताब्दि ई० पू० के प्रजातंत्र रयासतोंकी भांति न तो कोई मेल था, न कोई पारस्परिक सहयोग, और न भारतको एक राष्ट्र मानकर उसकी सुरक्षा और सुशासनके लिए चिन्ता। हमारे इतिहासके इस पुनरावृत्तिके युगको राजपूत-युगके नामसे कहा जाता है।

राजपूत-युग—

राजपूत-युगसे विदेशी आक्रमणोंकी पुनरावृत्ति भी शुरू हो गई। इस युगके विदेशी आक्रमणकारी मुसलमान थे। मुसलमानोंके आक्रमणोंके समय सारा भारतवर्ष कई राजपूत रियासतोंका थाला बना हुआ था, जो राज्य-लिप्सा और ईर्षामें पड़े हुए परस्पर लड़ते-भिड़ते रहते थे। ऐसी हालतमें मुसलमान आक्रमणकारियोंने सरलतासे एक-एक करके तमाम राजपूत राज्योंको परास्त कर डाला, क्योंकि पौरुष और शक्तिसे पूर्ण होनेपर भी पारस्परिक मेल वा ऐक्य और एक-राष्ट्रीय भावनासे हीन होनेके कारण वे विदेशी आक्रमणकारियोंके विरुद्ध किसी प्रकारका सफल संयुक्त-राष्ट्रीय मोर्चा कायम न कर सके थे। परिणामतः मुसलमान विजयी हुए और आर्योंका गौरवान्वित भारतवर्ष अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनताको खो बैठा।

मुस्लिम आक्रमण—

मुसलमानोंके आक्रमण ७ वीं और ८ वीं शताब्दीमें अरबोंके नेतृत्वमेंही शुरू हो गये थे, किन्तु इस्लामी आक्रमणोंका

अधिक जोर १० वी और ११ वी शताब्दीमे प्रारम्भ हुआ, जब तुर्कोने सुबुक्तगीन(९८६-८७)और महमूद गजनवी(१००१-१०२५) के नेतृत्वमे हिन्द पर लगातार आक्रमण करने शुरू किये। लेकिन ये आक्रमण लूट खसोट तक ही सीमित रहे, और हमारे मुल्कपर स्थायी रूपसे किसी प्रकारका शासन कायम करनेकी इन आक्रमणकारियोने चेष्टा न की।

मुस्लिम शासनकी स्थापना—

लेकिन १२ वी सदीके अन्तमे भारतकी हिन्दू राजशाही का अन्त हो चला। दिल्ली, अजमेर और साभरके प्रतापी महाराज पृथ्वीराजके नेतृत्वमे भारत सगठित होने और एकराष्ट्र कायम करनेकी सोच ही रहा था कि यकायक मुहम्मद गोरीने आकर सारा स्वप्न तोड डाला। सन् ११९२मे तराईके मैदानमे मुहम्मद गोरीकी छद्म भरी चमचमाती तलवारने पृथ्वी-राजका अन्तकर डाला और दूसरे ईर्षालु राजपूत राजा अलगसे तमाशा देखते रहे। किन्तु यह अवसान अकेला पृथ्वीराजका अवसान न था, अपितु यह भारतीय राष्ट्र और उसके स्वातन्त्र्यका भी अवसान था, क्योकि पृथ्वीराजके बाद भारतवर्ष इतना अशक्त और कमजोर हो गया कि वह तराईमे खोई हुई अपनी स्वतन्त्रताको युगो तक नही लौटा सका— तराई या तरावडीकी हार हिन्दू-राष्ट्रकी हार थी, जिसने हिन्दके साम्राज्यका तख्त पूर्णरूपसे मुसलमानोके हाथमे सौप दिया।

आर्योकी गौरवोन्वित राजनगरी हस्तिनापुर-अब राजपूत हिन्दुओंके हाथसे निकल कर दिल्लीके नामसे मुसलमान

शासकोंकी राजधानी और चेरी बनी। मुहम्मद गोरीने दिल्लीके तख्तपर अपने प्रेमपात्र एक गुलामको आसीन किया और इस प्रकार हम गुलामोंके गुलाम बनकर अपनेही मुल्कमें दूसरेके आश्रित हो गये।

मुस्लिम गुलाम वंशकी स्थापनाके साथ १३ वीं सदीके प्रारम्भ से लेकर फिर निरन्तर एकके बाद दूसरे मुसलमान शासक भारत-के राष्ट्रके मालिक होतेही चले गये। १३ वीं सदीसे १६ वीं तक गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद, और लोदी हिन्दुस्तानके भाग्य विधाता रहे।

इस प्रकार १३ वीं शताब्दीसे १६ वीं शताब्दी तक मुसल-मानोंके आक्रमणोंकी धूम रही। मुसलमान आक्रमणकारी पहले-पहल जब यहाँ पहुचे तो उन्होंने हिन्दू कौमहीको नष्ट कर देना चाहा था और इस हेतु उन्होंने हिन्दू धर्म और संस्कृति पर जोरोंसे आघात भी किये थे। किन्तु जब इन आक्रमणकारि-योंने हिन्दुस्तानमें रहकर शासन करना प्रारम्भ किया, तब उन्हे मालूम हो गया कि हिन्दू कौमको नष्ट करना तो दूर रहा, वे बिना उनकी मददसे हिन्दुस्तानपर शांतिसे शासनभी नहीं कर सकते। प्रत्यक्षतः शासन-व्यवस्थाको चलानेके लिये मुस्लिम शासकोंको हर मंजिलपर हिन्दुओंके सहयोगकी आवश्यकता थी, जिसके बिना उनका हरगिज काम न चल सकता था।

मुस्लिम और हिन्दुओंमें परस्पर मेल—

यह सच है कि हिन्दुओंके शक्तिशाली और प्रभावशाली राज्य दिल्ली, कन्नौज, ग्वालियर, अनहिलवाड, देवगिरि आदि,

मुसलमानो द्वारा खत्म कर दिये जा चुके थे, परन्तु तबभी भारतवर्षमे कुछ एक हिन्दू राज्य दिल्लीकी मुस्लिम शाहीकी अवहेलना करनेको हमेशा मौजूद रहे। अतः इन हिन्दु अधिपतियोंको अपने कब्जेमे रखने तथा मुल्कके शासनकी व्यवस्था करनेके हितही मुस्लिम शासकोंको हिन्दू जनताके सहयोगकी आवश्यकता प्रतीत हुई थी। इसके अलावा मुस्लिम शासकोको अपनी फौजके लिएभी हिन्दुस्तानकी जनताका सहारा अपेक्षित था।

फलतः यहाके शासक होनेपर विदेशी मुस्लिम विजेताओको धीरे-धीरे हिन्दुस्तानको ही अपना मुल्क मानना पडा, और हिन्दुओंके सहयोगकी उन्हे नित्य अभ्यर्थना करनी पड़ी। दूसरी ओर हिन्दुओंने जब मुसलमानोको सुनिश्चित रूपसे यहा बसा देखा तो उन्होने भी मुसलमानोंको जहातक हो सका अपनेमें मिला लेनाही श्रेयस्कर समझा। ये ही कारण थे कि अब हिन्दू और मुसलमानोमे कुछ ऐसे प्रकारके सुधारक पैदा हुए, जिन्होने हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मोको मिला कर, विरोधकी जगह प्रेम स्थापित करनेकी चेष्टाएं कीं। इन सुधारकोंने दोनो धर्मोके समान तत्वो और समान सिद्धान्तो पर जोर दिया, और इस प्रकार धर्मोके अन्तरभूत सिद्धान्तोकी समता दिखाकर दोनो धर्मोकी एक-आदर्शता और एकरुपता प्रकट की। यह प्रयत्न शताब्दियों तक चलता रहा। किन्तु इस प्रयत्नमे हिन्दू तथा मुस्लिम सुधारकोको आशातीत सफलता नहीं मिल सकी। कारण यह था कि कतिपय धर्मान्ध मुसलमान शासकोंके अत्याचार-पूर्ण तथा असभ्य व्यवहारोंसे हिन्दू-जनतामे मुसलमानो और उनके धर्मके प्रति एक असह्य घृणा और उपेक्षा

पैदा हो गयी थी। मुसलमान शासक हिन्दुओंकी शक्ति और ताकतसे चिढतेभी थे, और नही चाहते थे कि हिन्दू किसी प्रकार शक्तिशाली बनकर उन्नत हो, क्योंकि हिन्दुओंकी शक्तिके बढनेसे वे अपने लिए खतरा महसूस करते थे। ऐसी स्थितिमे मेल एक स्वप्न था। किन्तु तब भी साधारण जनतामेसे उठने वाले सुधारक (जैसे रामानन्द, कबीर, गुरु नानक, चैतन्य, जायसी आदि) हिन्दू मुस्लिम जनतामे मेल स्थापित करानेका बराबर प्रयत्न करतेही रहे और कुछ हद तक उसमें आखिरकार सफल भी हुये। यह इन्ही सुधारकोंके प्रयत्नका फल था कि हिन्दू और मुस्लिम सस्कृतिया एक दूसरेके निकट सम्पर्कमे आ सकीं। इस सम्पर्कके परिणामसे ही मुस्लिम युगके भारतीय साहित्य, कला—ललित एवं स्थापत्य, और सामाजिक व्यवहारोंपर हमे मुस्लिम धर्मका प्रत्यक्ष प्रभाव देखनेको मिलता है।

मुगल-युग—

मुस्लिम राजशाहीका स्वर्ण काल मुगलोंके अभ्युदयके साथ प्रारम्भ होता है। मुगल-युगका प्रारम्भ सन् १५२६ ई० मे हुआ, जब कि काबुलके बादशाह बाबरने लोदी सम्राटको पानीपतकी लडाईमे परास्त कर, दिल्ली और आगरा पर कब्जा किया था। इसी समय दिल्लीके लोदी सुल्तानोको निर्बल देखकर मेवाडके महाराजा राणा सागा भी हिन्दू साम्राज्यकी पुर्नस्थापना और अपने प्राचीन आर्य गौरवको फिरसे लौटा लानेके प्रयन्तमे लगे हुए थे। किन्तु राणासागाका प्रयत्न सफल न हो सका। हिन्दुस्तान को मुस्लिम सत्तासे छुडानेके लिये राणासागाने लोदियोंके विजेता बाबरसे जबर्दस्त लोहा लिया, परन्तु दुर्भाग्यवश कन्हवाकी लडाई

में (सन् १५२७ में) वह वावरसे हार गया। राणासांगाकी इस हारसे अब असतुष्ट भारतको मुसलमानोंको हिन्दुस्तानसे निकाल कर राष्ट्रीय साम्राज्यको स्थापित करनेकी अपनी अभिलाषा अपने विदीर्ण हृदयमें ही दवाकर छिपा लेनी पड़ी, और मजवूरी वस मुसलमानी शासकोंके साथ सहयोगी वन कर रहनेको तैयार हो जाना पड़ा।

विजयी वावर हिन्दुस्तानका पहिला मुगल साम्राट् हुआ, किंतु मुगल साम्राज्यको सुसगठित और सुदृढ वनानेका कार्य भार उसके पौत्र अकवरके जिम्मे पड़ा।

अकवरके प्रयत्नोंने हिंदू और मुसलानोंमे एकता स्थापित करनेका वह महान् प्रयत्न शुरू किया—जो इससे पहले किसी मुस्लिम शासकने न किया था। अकवरपर मध्यकालीन सुधारकों का भी काफी असर था। साथही राजनैतिक दृष्टिसे भी उसे यह भली प्रकार ज्ञात हो गया था कि हिंदुस्तानमें मुस्लिम मुगल साम्राज्य की इमारत हिंदुओंकी शक्तिशाली दीवारके सहारेके विना टिक नहीं सकती। उसे यहभी महसूस हुआ कि हिंदुस्तानमें, विना हिंदुस्तानियोंके सहयोगके और विना हिन्दुस्तानको अपनी मातृ-भूमि समझे विदेशीय मुस्लिम विजेताके रूपमें स्थायी शासन नहीं कायम किया जा सकता। इसलिये अकवरने सोचा, और सही ही कि यदि मुगलिया खानदान हिन्दुस्तानके साम्राज्यका निश्चिन्तता से भोग करना चाहता है तो उसे मुगलिया खान्दानको हिन्दुस्तानके राष्ट्रीय वंश या खानदानका रूप देना होगा और हिन्दू तथा मुसलमानोंके बीचके पृथकत्वकी खाईको पाट देना पड़ेगा।

फलतः अकबरने अपनी शासन-व्यवस्थासे बहुत हद तक धार्मिक भेद-भाव उठा दिये। हिन्दुओंको भी मुसलमानोंकी तरह दरबार और शासनमें ऊंचे-ऊंचे ओहदे दिये जाने लगे। हिन्दुओंका समान रूपसे मान और विश्वास किया जाने लगा। विधर्मी होनेके नाते मुसलमान शासक अबतक हिन्दुओंसे जो घृणात्मक 'जजिया' कर लिया करते थे, उसेभी अकबरने हटा दिया। सामाजिक रूपसे भी अकबरने हिन्दू और मुसलमानोंके हृदयोंको निकट लानेका यत्न किया। राजपूत राजाओंकी लडकियोंसे विवाह करनेमें यही उसका उद्देश्य था। कट्टर इस्लाम धर्मको साम्राज्यकी व्यवस्थामें दस्तनदाजी करनेसे पीछे ढकेल दिया गया, और उसकी जगह अकबरने एक स्वतन्त्र सर्वदेशीय धर्म 'दीन-इलाही' की स्थापनाकी।

इन प्रयत्नोंका फल यह हुआ कि हिन्दू जो मुगल साम्राज्य की स्थापनासे असंतुष्ट हो रहे थे, और मुसलमानी शासनको हमेशासे विदेशी शासन समझ कर उससे घृणा किया करते थे, अब यह अनुभव करने लगे कि अकबर विदेशी मुगल नहीं, हिन्दूही है, हिन्दुस्तानी है, और मुगलसाम्राज्य मुस्लिम साम्राज्य नहीं, राष्ट्रीय साम्राज्य है।

इस प्रकार मध्य कालीन सुधारकोंका हिन्दू और मुस्लिम एकताको स्थापित करनेका कार्य अकबरने बहुत हदतक पूराकर दिखाया। उसके प्रभावसे हिन्दू और मुसलमान दोनों अब अपनेको भाई-भाई और एकही भारत-माताके पूत अनुभव करने लगे। दोनो अब हिन्दुस्तानको अपना राष्ट्र और मुल्क समझकर दर्द और सहयोगके साथ हर प्रकारसे उसकी उन्नतिके लिये कार्य करने लगे।

किन्तु अफसोस अकबरके मरतेही उसके उत्तराधिका-
रियोने पुनः मुगल साम्राज्यके राष्ट्रीय स्वरूपको बिगाडना
शुरू कर दिया। अकबरके तीसरे उत्तराधिकारी धर्मान्ध औरग-
जेबने तो सम्राट होतेही (१६५८-१७०७) मुगल साम्राज्यका
रहा सहा राष्ट्रीय स्वरूप बिलकुलही खत्म कर डाला। हिन्दुओ
पर फिर अत्याचार होने लगे। जजिया कर फिरसे लगा दिया
गया और हिन्दुओको पीडित करनेके, और भी कई तरीके
काममे लाये गये।

हिन्दुओको अब फिर मालूम पड़ने लगा कि वे विदेशीय
हुकूमतके शिकार हो रहे है। उनको अपना मुल्क हिन्दुस्तान
मुस्लिम-शासनके खूखार पजेमे जकडा और छटपटाता दीखने
लगा। परिणामतः अब उन्हे अपनी अन्तर-दृष्टिके सामने अपनी
जाति और धर्म तथा देशका सर्वनाश प्रत्यक्ष नाचता दिखाई
पडने लगा।

फलतः हिन्दू जातिने अपनी तथा अपने धर्म और देश
की रक्षा करनेके लिये मुगलिया हुकूमतके खिलाफ सर्वत्र
विद्रोहका झडा खड़ा कर दिया। पजाबमे गुरू गोविन्द
सिहके झडेके नीचे सिक्ख संगठित हुए। राजपूताना
मे, राजपूत-क्षत्रिय सभल उठे। दक्षिणमे शिवाजीके नेतृत्वमें
मराठोंका दल बल पकडने लगा। गोविन्द सिह और शिवा
आदिने हिन्दुओंको राष्ट्रीय धर्म और राष्ट्रीय-प्रेम एव राष्ट्रीय-
स्वतत्रताका पाठ पढाकर जागरुक और सजगकर डाला। मुगल
आफतमे आ फसे। दक्षिणमे मराठे और उत्तरमे सिक्ख उनके
राज्यकी दीवारोंपर कसकर चोटे मारने लगे। परिणामतः मुगल
साम्राज्यकी इमारत डोल उठी। औरङ्गज़ेबका तख्त हिल उठा।

सिक्ख और मराठोंके घातकप्रहारोंसे मुगल-शाली क्षुब्ध हो उठी। व्याकुल होकर हिन्दुओंकी इन दो राष्ट्रीय ताकतोंको खत्म करनेके लिये औरंगजेब जीवन भर प्रयत्नमें लगा रहा, किन्तु अन्ततः उससे कुछ करते न बन पड़ा।

मराठोंसे आखिर समय तक युद्ध करनेके बाद, थककर वह चुपचाप अहमद नगरको लौट आया, और वहींपर कुछ समय उपरान्त सन् १७०७ में उसकी मृत्यु भी हो गई।

औरंगजेबके मरनेके बाद सिक्ख और मराठा उत्तरोत्तर अपनी शक्ति बढ़ाते चले। मुगल साम्राज्यकी दीवारें हिलती चली गयीं। मुगलोंके ढहनेके साथ दूसरी ओर मराठा शक्ति उत्त-रोत्तर बढती गयी। मराठोंकी यह शक्ति बढतीही रही, जब तककि सन् १८१९ में अंग्रेजी-साम्राज्य शाहीने मराठा सबके नेता पेशवाका अन्त न कर दिया। इसी तरह सिक्ख शक्ति भी मुगलोंको कुचलती हुई बढती चली गई, जब तक कि सन् १८४८ में अंग्रेजी शक्तिने पेशवाकी भांति उनका भी खात्मा न कर डाला।

क्षीण होते हुए मुगल साम्राज्यपर इसी समय विदेशी पर-शियनों और यूरोपियनोंने भी क्रूरतासे प्रहारकर उसे चूरकर डाला। सन् १७३९ ई० में परशियाके राजा नादिरशाहने और सन् १७५६ और १७६१ में अहमदशाह दुर्रानीने मुगलोंकी दिल्ली पर बड़े घातक हमले किये। दूसरे हमलेके समय अहमदशाह मुगलोंके साथ मराठा शक्तिको भी कुचलता गया।

हिन्दुस्तानकी इस शोचनीय दशाका विदेशी यूरोपियन व्यापा-रियोंने खूब फायदा उठाया। आन्तरिक कलह और विदेशी

प्रहारोंसे खडित और द्रवित हुए हिन्दुस्तानको लूटने-खसोटने और उस पर कब्जा करनेका उन्हे बडा सुन्दर अवसर दिखलाई दिया।

यूरोपियन जातियाँ औरंगजेबके पूर्वसेही हिन्दुस्तानमें व्यापारके वहाने पहुँच चुकी थीं। औरंगजेवकी प्रचण्डताके सामने तो वे कुछ करनेका साहस न कर सके थे, लेकिन उसके मरनेके वाद हिन्दुस्तानको अशक्त और असगठित पाकर उन्होंने अपनी साम्रज्यशाही योजनाके अनुसार हिन्दुस्तानको दवानेका उपक्रम शुरू कर दिया।

इस प्रकार एक ओरसे फ्रेंच और दूसरी ओरसे अगरेज व्यापारी अपनी अपनी हुकूमत हिन्दुस्तानमें कायम करनेके लिये परस्पर लडने भिड़ने लगे। फ्रेंच जनरल डुप्ले और अगरेज जनरल क्लाइवमें खूब युद्ध हुए। इस संघर्षमें अंगरेज विजयी हुए, और फ्रेंच हिन्दुस्तानके राजनैतिक रंगमंचसे निकाल वाहर कर दिये गए।

फ्रांसिसियोंके निकल जानेपर अगरेजोका कोई दूसरा यूरोपियन प्रतिद्वन्दी न रह गया। उन्होने अव हिन्दुस्तानियोंकी आपसी फूट और कलहका फायदा उठाकर कभी मुस्लिम राज्योंको अपनी ओर करके हिन्दू राज्योंको दवाया, और कभी हिन्दू राज्योंसे मिलकर मुस्लिम राज-शक्तिको गिराया। इस प्रकार रोमके सीजरोंकी 'भेद और शक्ति' की नीतिसे काम लेते हुए क्लाइवने सन् १७५७ में वगालको अपने अधिकारमें कर लिया। मुगल वादशाहोंकी शक्ति वगालसे हटा दी गई, यद्यपि नाम मात्रसे अंग्रेजी-कम्पनी-सरकार मुगल वादशाहको अपना वादशाह

स्वीकारकर उसे कुछ कालतक दीवानी देती रही। किन्तु जैसे जैसे हिन्दू और मुस्लिम आपसमें लडकर अपनी शक्तियोंको क्षीण करते गये अंगरेज अपनी भेद-नीति द्वारा एकको दूसरेसे भिडाकर अपना काम निकालते गये। इस प्रकार हिन्दुस्तानकी बढती हुई ताकतोंमें पहले अंगरेजोंने सन् १८१९ में मराठोंको खतम किया और उसके बाद रही सही सिक्खोंकी हिन्दू-शक्तिका भी सन् १८४५ में अन्तकर डाला। इन शक्तियोंके खतम होतेही सारा हिन्दुस्तान अब उनके कब्जेमें चला आया, यद्यपि नाम भरके लिये मुगल बादशाह अभी भी दिल्लीके किलेमें मौजूद था।

अंगरेजोंने अपनी हुकूमतके कायम होनेपर हिन्दुस्तानको बुरी तरहसे लूटना और खसोटना शुरू किया। हुकूमत करने वाली अंगरेजी कम्पनीका मुख्य ध्येय व्यापार था, और उसका अर्थ था लूट। इस प्रकार हिन्दुस्तानकी खूब लूट होने लगी। हिन्दुस्तानी राज-वंश भी एक-एक कर नष्ट किये जाने लगे। जिन हिन्दुस्तानी राजवंशोंसे मैत्री जोड़ कर अंगरेजो ने अपनी शक्ति स्थापितकी थी उन्हें भी अंगरेजोंने जीवित न रहने दिया। कंपनीके गवर्नर-जनरल हेस्टिंगज और वेलेजली आदिने कई हिन्दुस्तानी राज्योंको उखाड फेंका और कईको अपना गुलाम बनाया। उसके बाद रहे सहे कई एक हिन्दुस्तानी राज वंशोंको डलहौजी ने (१८५६ ई०) हडप कर खतमकर डाला।

अंगरेजोंके विरुद्ध प्रति-क्रिया—

अंगरेजी कम्पनी-राजकी इस लूट मारसे जनता तो क्षुब्ध

थी ही, साथही मुस्लिम और हिन्दू राज वंशभी अपने मुकुटो को अगरेजी बूटो द्वारा ठुकराया जाते देखकर क्रुध हो उठे। सारे देशमे विद्रोहकी आग धधक गई। परिणामतः सन् १८५७मे हिन्दुस्तानी राजवशोने हिन्दुस्तानी जनता और सिपाहियोको साथ लेकर अगरेजोको अपनी मातृ-भूमिसे निकाल देनेका सङ्कल्प कर डाला। इस सङ्कल्पमे हिन्दू और मुसल्मान समान रूपसे सम्मिलित हुए। विदेशी गुलामीके खिलाफ हिन्दू और मुसलमानोने मिलकर संयुक्त और राष्ट्रीय मोर्चा तैयार किया। अगरेजोके साथ भारतका यह पहला स्वातन्त्र्य सग्राम था। इस स्वातंत्र्य सग्रामके नेता वहादुरशाह, नाना साहव, पेशवा, झाँसीकी रानी और तातिया टोपी आदि थे।

किन्तु ये क्रातिकारी अपनी शक्तिको सुचारु रूपसे सङ्गठित न कर सके, और इसलिए वे अगरेजोंकी सङ्गठित शक्तिका ठीक तरहसे मुकावला न कर पाये। इसके अतिरिक्त पूरे राष्ट्रने भी समुचित रूपसे उस स्वातत्र्य संग्राममे मदद न पहुचाई, वरन् वहुतोने तो मुल्कके साथ गद्दारी करके अगरेजोको ही मदद दी।

फलतःअगरेजी कपनी-सरकारकी विजय हुयी, और भारतीय मुकुट धूलमे जा गिरा। सन् १८५७ की इस विजयसे ब्रिटिश हुकूमत पूर्णतया भारतवर्षमे कायमहो गयी।

इसी समय कपनी सरकारके हाथोंसे भारतीय शासनकी वागडोर इङ्गलैडके ताजके हाथोमे चली आई और हम ब्रिटिश महारानीकी गुलाम रय्यत वने।

अगरेजी हुकूमतका कठोर जुआ अव दृढतासे हमारे कधो पर था।

ऐतिहासिक प्रतिक्रिया और राष्ट्रीय पुनर्जागृति

अध्याय—२

अंग्रेजोंने जिस तरह भारतवर्षपर अपना शासन और प्रभुता कायमकी वह हम देख चुके है। उन्होंने हमारी आपसी फूटका लाभ उठाकर अपनी सफल भेद-नीतिसे भारतीय सामन्तशाही को खतम कर दिया था। किन्तु इस समय सामन्तशाहीका खतम होना वास्तवसे अनिवार्य भी हो गया था। १८ वीं और १९ वीं सदीमे ओद्योगिक क्रान्तिके फलस्वरूप, विश्व जिस परिवर्तनकी ओर जा रहा था उसमे मध्यकालीन सामन्तशाही का टिका रहना मुश्किल था। अतः भारतवर्षकी सामन्तशाहीका अन्त करनेमे अग्रेजोने एक प्रकारसे आने-वाले युगका ही हाथ बटाया।

इस औद्योगिक क्रान्तिका जन्म—जिसने एक शताब्दिके भीतर राष्ट्रीय जीवनके प्रवाहको बदल दिया, इङ्गलैंडमे हुआ था। औद्योगिक क्रान्तिने नई किसमकी कलसे चलने वाली मशीने पैदा कर उद्योग-धन्धोंमे आश्चर्य पूर्ण परिवर्तन पैदाकर दिये थे। हाथकी जगह अब मशीनोसे अधिक सुल-भताके साथ कई गुना अधिक काम तैयार होने लगा। फल-स्वरूप उद्योगोंके महान् केन्द्र जिन्हे फैक्टरी कहते है—स्थापित होने लगे। इन फैक्टरियोंके मालिक बडे-बड़े पूंजीवाले थे।

पूंजीवालोंने अब नई मशीनो द्वारा खूब रुपया पैदा किया। तभीसे कतिपय सामर्थ्यशाली पूंजीपति बनने लगे, और ससारसे 'पूंजीवाद' ने अपना सिक्का जमाया।

व्यापारिक वस्तुओंके अतिरिक्त मशीन युगने नये-नये विस्मयकारी युद्धके अस्त्र-शस्त्रोको भी पैदा किया। इङ्गलैंड ने इस क्रान्तिका जन्म उसी समय हुआ जब कि उसके व्यापारी भारतीय राष्ट्रको हड़पनेमे लगे हुए थे। अतः नई क्रान्तिके दिये हुये हथियारोको पाकर अगरेजी व्यापारियोको पुराने ढगसे लड़नेवाले भारतीयोंपर कब्जा करना बिलकुल आसान हो गया। मशीनो द्वारा अपरिमित उत्पादन खपानेके लिए उन्हे अपरिमित बाजार भी चाहिये था जिसमे वे स्वच्छन्दता से व्यापार कर सके, और यह तभी सभव था जब वे नये हथि-यारोके द्वारा शातिमय एशियाई प्रदेशोको हड़प लेते। बढती हुई पूंजीवादकी यह तृष्णा थी ओर इसे यूरोपवालोने एशि-याई मुल्कोको चूसकर तृप्त करनेका प्रयत्न किया। फलतः इस प्रयत्नमे हमारा भारतवर्ष उनका प्रथम ग्रास बना।

अतृप्तिपूर्ण-तृष्णाके अलावा पूंजीवादने संकुचित राष्ट्रीयता ओर जातीय अभिमानको भी जन्म दिया। अतः इस सकु-चित राष्ट्रीयता और देश-प्रेममे विश्वास रखने वाले यूरोपके प्रत्येक मुल्क अपने राष्ट्र और अपनी जातिके अलावा दूसरो को तिरस्कृत निगाहोसे देखने लगे।

लेकिन हमारे लिये यूरोपकी इस राष्ट्रीय अहमन्यताका फल अच्छाही हुआ। उनकी ज्यादतियों और एकदेशीयता को देखकर हमारे एशियाई प्रदेशोमे भी राष्ट्रीय भावनाये

जाग उठीं। एशियाने भी अंगड़ाई ली और विजातीय यूरोपियनोंसे सतर्क हो उठा।

किन्तु खेद है कि भारतवर्षने इतनी देर करके सभलनेका प्रयत्न किया—जब समय निकल चुका था। अतः १८५७ का विशाल प्रयत्न स्वतंत्रताके संग्रामकी एक असफल कहानी बनकर ही रह गया।

लेकिन चीन जो बहुत दिन तक हमारीही भांति यूरोपियन पूंजी और साम्रज्यशाहीका शिकार रहा उचित समयपर होश संभाल लेनेसे बहुत कुछ बच गया। परन्तु जापान अपनेको यूरोपकी दासतासे मुक्त रखनेमे पूर्ण रूपसे सफल रहा।

१८ वीं सदीकी व्यापारिक लूट—

बहुत प्राचीन कालसे ही हमारे और रोमके बीच व्यापारिक सम्बन्ध था। रोम आदि पाश्चात्य देशोंके अलावा चीन, अरब तथा अन्य एशियाई मुल्कोंसे तो ईसाके पूर्व सैकडो वर्षोंसे लेकर १५ वीं सदीतक हमारा व्यापार चलता ही रहा।

इस प्रकार ईसाके किंई शताब्द पूर्वसे भारतीय व्यापारके साथ-साथ यहाकी संस्कृति, कला और धर्मभी यूरोप और एशियामे पहुच कर शताब्दियो तक उन देशोको सास्कृतिक प्रकाश देते रहे थे। यही वह समय था जब भारतने अपनी सास्कृतिक विजयके द्वारा बृहत्तर—भारत (Greater India) की स्थापनाकी थी।

सांस्कृतिक विजयका यह प्रवाह अशोकके समयसे बड़ी तेजीसे प्रारम्भ होकर थोडी बहुत रुकावटोके साथ गुप्तयुग तक जारी रहा। किन्तु सातवी शताब्दिसे इस प्रवाहमें कुछ रुकावट पैदा हो गई थी। और यद्यपि एशियाई मुल्कोसे हमारा यह सास्कृतिक सम्बन्ध १२ वी और १३ वी शताब्दि तक चलता ही रहा किन्तु यूरोपसे हमारा संबंध विच्छेद हो चुका था। एक प्रकारसे भारतवर्षने गुप्तोके बाद यूरोपसे मानो आखेही फेर ली थीं।

अन्तमें १५ वीं शताब्दी ई० सन्से आकर पुनः साम्राज्य तृष्णासे पीड़ित यूरोपसे जबर्दस्ती हमारा सम्पर्क प्रारम्भ हुआ। इस सम्पर्कका श्रीगणेश करनेवाला वास्कोडिगामा था जो पुर्त्तगाल से चलकर सन् १४९८ मे प्रथमतः कालीकट और कानानोर मे उतरा था।

इस समय यूरोपकी तृषित आखे हमारे असंख्य धन दौलत को देखकर ललचा उठी थी। वास्कोडिगामाके समयसे हम देखते है कि क्रमसः किस प्रकार पोर्त्तगीज, डच, फ्रेंच और अंगरेजी कम्पनिया व्यापारके बहाने हमारे धनको उड़ानेके लिये यहां घुसी चली आई। इस व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धामे अन्ततः अग्रेज ही विजयी हुए और १८ वीं सदीमे भारतवर्षपर स्वाधिकार स्थापित कर मनमाना व्यवहार करने लगे।

प्लासीके युद्धके समय यानी सन् १७५७ से लेकर पूरी १८ वीं सदी भर अग्रेज कपनी व्यापारके बहाने खूब लूट मचाती रही। इसके अलावा सन् १७५७ और १८५७ के सौ संघर्ष-पूर्ण वर्षोके भीतर अंग्रेजी कंपनी अपने नये हथियारो,

चालबाजियों और कूटनीतिके सफल हथकंडोंके द्वारा देशी रजवाड़ोंमें घुस-घुस कर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करती चली गई। इन सौ वर्षोंके अंगरेजी सम्बन्धके बारे श्री एच० एम० हिन्डमन लिखता है—

"During the whole of the period (1757–1857), Conquest by force of arms and annexation by that means, or by chicane, pressed steadily forward" (The Awakening of Asia, by H M. Hyndman p 205)

अर्थात् "सन् १७५७ से १८५७ के भीतर हथियारोंके जोरपर अथवा छल कपटके द्वारा विजय और अपहरणका कार्य दृढतासे चलता रहा"। इसप्रकार छल-कपट और पशु-बलसे हमारे स्वातन्त्र्यको खतमकर अंगरेजोंने अपने बृटिश-शासनकी स्थापनाकी थी, यद्यपि अंग्रेजी साम्राज्यशाहीके समर्थकोंका कहना तो यह है कि भारतमें अंगरेजी राजकी स्थापना विजयकी तृष्णासे नहींकी गई, किन्तु जनताकी इच्छासे ही उसकी स्थापना हुई थी (India by Sir V Chirol, pp 78-79)

अतः अपहरण नीतिके द्वारा देशी रजवाड़ोंमेंसे बहुतसे नष्ट कर दिये गए थे और उनको अंगरेजी साम्राज्यमें मिला लिया गया था। इन विजित और पराजित रजवाड़ोंसे खूब धन और दौलत अंग्रेजी कंपनीके हाथ लगा। इस असंख्य लूटके रुपयेको दो भागोंमें बांटा गया। एक हिस्सा विलायत औद्योगिक केन्द्रोंको बढानेके लिये भेजा गया और दूसरा हिस्सा बचे-खुचे अपराजित देशी और सीमान्त राज्योंको ध्वस्त करनेके काम पर खर्च किया गया। इन अपराजितोंको जीत लेनेपर फिर उनको भी लूटा गया। इस लूटका धन, सोना व चांदी कुछ तो

विजय करने वाले गवर्नर जनरलोंको पारितोपिकमे वितरित हुआ और वाकी इङ्गलैड भेजकर जमा किया गया।

इस भांति भारतवर्षको लूटकर कितना धन १८ वी सदीके अन्त तक इङ्गलैड पहुंचाया गया कोई ठिकाना नहीं। श्री एच० एम० हिन्डमनके अनुसार "यह धन कोलम्वस और उसके उत्तराधिकारियो द्वारा जितना अमेरिकासे यूरोपको लाया गया उससे कही अधिक था।" (The Awakening of Asia, by H H Hyndman, p 205)

इस भारतीय रुपयेसे इङ्गलैडने अपने उद्योग-केन्द्रो और धन्धोंको खूब वढाया। अंगरेजी उद्योग—कोयला, लोहा और सूतके कारखाने हमारी पूंजीको पाकर इतने शक्तिशाली हो चले कि कोई अन्य मुल्क १८वी सदीके व्यापारमे उनका सामना न कर सकता था। इस प्रकार जिस भारतवर्षके वलपर अंगरेजोंको व्यापारिक प्रभुत्व प्राप्त हुआ, उसी भारतको पुन उनके व्यापार द्वारा इतना पीड़ित होना पड़ा जितना कि वह उस समय भी नहीं हुआ था जव अंगरेजोने सीधी लूट मचाकर उसे आर्थिक-क्षति पहुचाई थी। (Ibid p 202)

भारतीय उद्योग धन्धोका अन्त—

ब्रिटिश राजके इस व्यापारिक प्रभुत्वने अन्ततः हमारे आर्थिक जीवनको ही नष्ट कर डाला। यह आर्थिक सर्वनाशका कार्य १७ वीं और १८ वी शताब्दीसे ही प्रारम्भ हो गया था। इस समयके भीतर अंगरेजी सरकारने एक ओर तो भारतीय केलिको वा मलमल पर इङ्गलैड ले जानेकी रोक लगाई, और दूसरी ओर अट्ठारहवीं शताब्दीके अन्तमे अथवा उन्नीसवीं

शताब्दीमें भारतीय धनको पाकर अपने कारखानोंको इतना बढा लिया कि इंगलैंड सस्तेसे सस्ते मूल्यपर अपना माल दुनियाको देने लगा। इसका परिणाम स्वभावतः भारतीय जुलाहोंके लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ। अंगरेजी व्यापारसे भारतीय घरेलू उद्योगोंकी रक्षाके लिये अंगरेजीही सरकार होनेसे कौन ऐसे नियम बनाता जो उनके असंयत व्यापार और मशी-नोंके प्रहारको रोक सकते और भारतीय जुलाहा एवं व्यापारको विनष्ट होनेसे बचा लेते। श्री हिन्डमनके शब्दोंमें "बेरोक-टोक प्रतियोगिता, और अंगरेजी साम्राज्यके अन्तर्गत अंगरेजी मालमें स्वतंत्र व्यापार, इस समयका व्यापारिक धर्म बन गया था" (The Awakening of Asia p 23)

इस सबका परिणाम जो होना था वही हुआ अर्थात् भारतीय उद्योग-धन्धे सब खतम हो गये और हजारों आदमी बेकार हो चले। उनके पाससे जीवनके सम्पूर्ण साधन छीन लिये गये और उन्हें चुप-चाप मरनेके लिये छोड दिया गया।

ब्रिटिश शासन—

ब्रिटिश शासनका रूप कंपनी युगमें नितान्त स्वार्थपूर्ण रहा। उनके शासनका ध्येयही एक मात्र भारतीय धन और जनका शोषण था। कंपनी युगके इस शासनको सुधारनेका कार्य लार्ड कार्नवालिसके सुपुर्द हुआ और उसने भारतमें अंगरेजी शासनकी जो व्यवस्था स्थापितकी, वह थोड़ा-बहुत उलट-फेरोंके साथ अन्त तक उसी प्रकार कायम रही।

किन्तु जनताके हितके लिये भी क्या कुछ किया गया? श्री हिन्डमनके शब्दोंमें—"यदि कुछ किया है—तो १३२ वर्षोंमें १७८६

से लेकर १६१६ तक, अगरेजी शासकोंने पार्लियामेण्ट, प्लैटफार्म और प्रेस द्वारा, भारत, इंगलैंड और संसारको यह विश्वास दिलानेकी कोशिश की है कि ब्रिटिश-राजने भारतवासियों को अनगिनत लाभ प्रदान किये है, और भारतवासी स्वयं स्वायत्तशासन या स्वराजके अयोग्य है। लेकिन भारतकी शान्त और अशिक्षित जनता यह अच्छी तरह जानती है कि ब्रिटिश राजका यह केवल दम्भ है"।

राष्ट्रीय प्रतिक्रिया—

परन्तु अगरेजी-शासनसे कुछ लाभ भी अवश्य हुआ। यह लाभ था अगरेजोंके द्वारा भारतका पश्चिमी सभ्यताके सम्पर्कमे आना। इस सम्पर्कका परिणाम यह हुआ कि भारतीयोंमे भी पुन राजनैतिक जागृति, एकता और राष्ट्रीय स्वतन्त्रताकी भावनाये पैदा हुई, जिनकी प्रतिक्रियाके फलसे स्वराज्यके आन्दोलनने विकास पाया।

इस राष्ट्रीय जागृतिमे निःसन्देह पहला हाथ अगरेजी शिक्षाका था। भारतीयोंको अंगरेजीकी शिक्षा देनेमे ब्रिटिश सरकारने मूलतः अपनाही स्वार्थ सोचा था। अगरेजी सरकारको एक तो अगरेजीके जानकार हिन्दुस्तानी क्लर्कोंकी आवश्कता थी, और द्वितीय, अंग्रेजी शिक्षाके द्वारा वे भारतीय साहित्य और भाषाको एव हिन्दुस्तानी सस्कृतिको नष्टकर भारतीयोंको यूरोपीय रंगमे रग देना चाहते थे, क्योंकि ऐसा करनेसे वे समझते थे कि भारतीय हृदय और मनसे भी पराभूत होकर अगरेजी राजके पक्के हिमायती हो जायेंगे और इस प्रकार भारत हमेशा उनके शोषणके लिये कब्जेमे रह सकेगा। किसी देशको निरन्तर गुलाम

बनाये रखनेके लिये निःसन्देह सांस्कृतिक विजयकी योजना बहुत जरूरी हुआ करती है। किन्तु अफसोस, अंगरेज राजनीतिज्ञ इस कूटनीतिज्ञतामें सफल न हो सके। अंग्रेजी शिक्षाका परिणाम हमारे बजाय उल्टा उन्हींके लिये घातक सिद्ध हुआ।

अंग्रेजी शिक्षाके परिणामसे भारतमें एक ऐसा छोटा शिक्षित वर्ग पैदा हुआ जिसने राष्ट्रीय जागृतिके आन्दोलनको रास्ता दिखलाया। अंग्रेजी शिक्षाने इस नये वर्गको और उनके द्वारा सामान्य भारतीयोंको मिल्टन, बर्क, मिल, मैकोले और हर्बर्ट स्पेन्सर आदि अंगरेजी विचारकोंकी स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता और स्वराजकी उच्च भावनाओंसे बहुत प्रभावित किया। इन भावनाओंसे प्रेरित होकर भारतीय भी अब अपने मुल्कको एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें देखनेकी अन्दर ही अन्दर कामना करने लगे। अतः ब्रिटिश-राजके बन्धनों और गुलामीकी जञ्जीरोंसे अपनेको कसा और बंधा हुआ पाकर उनका हृदय ब्रिटिश-राजसे क्षुब्ध एवं असन्तुष्ट हो चला और अपनेको मुक्त करनेके लिये विद्रोही बन बैठा।

भारतीयोंके असन्तोषकी यह आग अन्य उपकरणोंने मिलकर और भी प्रज्वलित की। अंगरेजी शिक्षाके अलावा अंगरेजी और यूरोपीयन विद्वानोंने भारतीय इतिहास और पुराने साहित्यका खोजपूर्ण अध्ययन कर भारतको उसकी संस्कृति, साहित्य और भाषाकी महानताका भी बोध कराया। परिणाम यह हुआ कि जो अंगरेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीय पश्चिमी प्रतिभासे खींचकर यूरोपकी ओर अग्रसर हो रहे थे वे अब अपनी संस्कृति और देशकी ओर लौटने लगे। परिणामतः उनके हृदयोंमें अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा और विचलित हुए सांस्कृतिक गौरवको पुनः

स्थापित करनेकी बलवती भावनायें जाग उठीं, किन्तु विदेशी राजके रहते ऐसा होना सम्भव न देखकर उनका हृदय ब्रिटिश-सत्ताके विरुद्ध और तीव्रतासे भड़क उठा।

धार्मिक आन्दोलन—

ब्रिटिश राजके विरुद्ध सुलगती हुई आगको प्रज्वलित करने मे धार्मिक सुधारको और आन्दोलन-कर्त्ताओंका भी काफी योग रहा है। पश्चिमकी विचार-धारासे प्रभावित होकर ये नये सुधारक भारतीय-हिन्दू धर्मकी रुढिवादितको विशुद्ध कर उसे प्रगतिकी ओर बढा ले गये।

यह नया धार्मिक आन्दोलन १९वीं सदीमे श्री राजाराम मोहन रायसे प्रारम्भ होता है। राजाराम मोहन राय 'पहिला महान् अर्वाचीन भारतीय' था।[1] इस महान् व्यक्तिने सती-प्रथा को खतम करनेमें अग्रेजी सरकारको बहुत मदद दी थी। वे एक उच्च-कोटिके विद्वानभी थे। धर्मके बाह्य उपकरणो और आडम्बरोंके वे विरोधी थे। वे सामाजिक कुरीतियोको सुधारना और शिक्षा द्वारा नारीका उद्धार करना चाहते थे। जातिके बन्धन और छुआ-छूतके वे विरोधी थे। अतः इन ध्येय और सुधारोंको आगे बढानेके लिये उन्होंने एक धार्मिक सघकी स्थापनाकी जो 'ब्रह्मो-समाज'के नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्मो समाजके कार्यको उनके पश्चात देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशवचन्द्र सेनने आगे

---

1. Landmarks In Indian Constitutional and National Development, by, Gurumukh Nihal Singh—p 175

बढाया। इनमेसे देवेन्द्रनाथने विशुद्ध भारतीय धर्म वा संस्कृतिको ब्रह्मो-समाजका आधार बनाया, लेकिन केशवचन्द्रने ब्रह्मो-समाज-को ईसाई धर्मके आधारपर चलाया।

बंग-देशीय ब्रह्मो समाजकी तरह दक्षिणमे भी धार्मिक सुधारोंके लिये 'प्रार्थना समाज' कायम हुआ जिसके सञ्चालक—जस्टिस रानडे, सर आर जी भन्डारकर और सर नारायण चन्द्रावरकर आदि व्यक्ति थे।

किन्तु धार्मिक संस्थाओंमेसे जिसने भारतको स्वातन्त्र्य प्रेम, राष्ट्रीय प्रेम, तथा राष्ट्रीय धर्म, साहित्य और संस्कृतिका पाठ पढाया—वह 'आर्य समाज' था। आर्य समाजके संस्थापक महर्षि दयानन्द हुए है। १८७५ मे उन्होने पहिले बम्बईमे आर्य समाजकी स्थापना की और फिर १८७७ मे उसे लाहोरमे स्थापित किया। आर्यसमाजका आधार 'वेद' थे। अतः आर्यसमाज पूरी तरह भारतीय धर्म था। स्वामी दयानन्दका सबसे महान् सन्देश था—"वेदोकी ओर बढ चलो"। इस सन्देशने उत्तरी और पश्चिमी भारतको बहुत प्रभावित किया और काफी बडी संख्यामे लोग आर्य समाजके अनुयायी बनने लगे। श्री ऐड्रूज और गिरिजा मुकरजी लिखते है, "ब्रह्मो समाजके प्रमुख सदस्योकी भाति दयानन्द अंग्रेजी पढे हुए थे, लेकिन उन्होने प्रचार आदि कार्य हिंदी मे ही किया। इससे उत्तरी भारतकी जनताको उन्हे समझनेमे बहुत सरलता हुई, और आर्य-समाजने 'जन आन्दोलन'का रूप ले लिया। उनके अनुगामी उनके धर्मके भारतीय स्वरूपसे बहुत आकर्षित हुये। 'वेदोकी ओर बढ चलो'के मन्त्रने उन लोगोको अत्यधिक आकृष्ट किया जो उस समय पश्चिमके धार्मिक सिद्धान्तोको

चुनौती देना चाहते थे।[1]" १८८३ मे स्वामी दयानन्दकी मृत्यु होनेपर कर्नल ओकलॉट (Col Oclott) ने उनको, 'एक महान् देशभक्त'. घोषित किया था। वे दयानन्द स्वामीही थे जिन्होंने स्वराजकी घोषणाकर "भारत भारतीयोका है" की प्रथम पुकार उद्घोषितकी थी।

धार्मिक सस्थाओंसे थियोसोफिकल सोसाइटीने भी भारतके राष्ट्रीयताके आन्दोलनको आगे बढानेमे काफी सहायता पहुचाई। इस सस्थाने भारतीयोको उनके प्राचीन गौरवकी महिमा बताकर उन्हें अपने पुरातन धर्म, संस्कृति और सभ्यताको बचाने और बढानेके लिये प्रेरित किया।

धार्मिक सुधारकोसे श्री रामकृष्ण परमहस और उनके प्रमुख शिष्य स्वामी विवेकानन्दका भी बहुत बड़ा स्थान है। इन महापुरुषोने अपने प्रभावसे भारतीयोको हिन्दुत्वकी तरफ खीचा और प्राचीन आदर्शोसे उन्हे प्रभावित किया। श्री रामकृष्ण परमहंसने सेवा पर बहुत अधिक जोर दिया। उनकी सेवाका यह कार्य आज भी 'रामकृष्ण सेवा-सङ्घो'के द्वारा भारतके बहुतसे प्रान्तोमे चल रहा है।

परमहसके महान् शिष्य स्वामी विवेकानन्दने भारतको 'आध्यात्म'की महिमा समझाकर भारतीयोको आश्वस्त किया, तथा उन्हे 'आध्यात्म द्वारा ससारको जीतनेका सन्देश दिया'। साथ ही उन्होने—राष्ट्रीयताके सन्देशका भी भारतीयोमें प्रबलतासे प्रचार किया।

---

1 The Rise and Growth of the Congress In India by C. F. Andrews & Girija Mukerjis' PP 34-35

अतः १९ वी सदीमे भारतमे कई प्रकारसे धार्मिक आन्दोलन चले जिन्होंने भारतको राष्ट्रीय प्रेमका मार्ग दिखलाया, और भारतीयोंको उनके महान अतीतकी महिमा बतलाकर उनमे राष्ट्रीय प्रेम तथा देश-भक्तिकी प्रबल भावनाये पैदा करदीं।

धार्मिक आन्दोलनोंके साथ-साथ अगरेजी सरकारकी अनीतिपूर्ण नीतिने भी भारतीयोंको राष्ट्रीय ढंग पर सगठित होनेमे खूब मदद पहुचाई। अग्रेजी शिक्षाके प्रसारसे इस समय (१९ वीं सदी) भारतमे अग्रेजी पढ़े लोगोंका एक वर्ग पैदा हो चुका था। लेकिन पूरी तरहसे शिक्षित होनेपर भी इस वर्गने अनुभव किया कि ब्रिटिशराज हर प्रकारसे उनकी उन्नतिके मार्गमे बाधक है। शिक्षित वर्गकी तरह व्यापारी वर्गको भी यही अनुभव हुआ कि सरकारकी आर्थिक नीतिका लक्ष उन्हे न उभरने देनेका है। अतः इस नीतिके फलसे शिक्षित और व्यापारी दोनोंही वर्ग असन्तुष्ट हो चले। साथ ही अगरेज रगकी स्पर्धाके कारण काले भारतीयोंको अपनेसे बहुत ही नीचा और अयोग्य समझते थे। अतः इस जातीय अभिमानने हिन्दुस्तानियोंको और भी क्षुब्ध कर डाला, और भारतीय प्रजा और अगरेज शासकोंके बीच एक गहरी खाई पैदा हो गई। हमारे लिये अंगरेज नौकरशाहीकी इस दुर्नीति और जातीय अभिमानका परिणाम अच्छा ही हुआ क्योंकि उनके इस जातीय-गौरव और दुर्व्यवहारने हमारे दिलोंमे भी राष्ट्रीयता और जातीयताके भाव प्रबलतासे उगा दिये।

हम कह आये है कि अंग्रेजी पढा वर्ग इस समय बढ़ता जा रहा था, किन्तु 'काले' होनेके कारण उच्च सरकारी पदोंका मार्ग उनके लिये बन्दसा था। महारानी विक्टारियाके चार्टर

में यद्यपि जातीय समानताका राग अलापा गया था, किन्तु लार्ड लिटनने यह स्पष्ट रूपसे घोषित कर दिया था कि चार्टरके वचनोंकी पूर्ति नहीकी जा सकती। फलतः शिक्षित वर्गका असतोष बढता ही गया और १८७७—१८७८ में भारतमें इन्डियन सिविल सर्विसके लिये कलकत्तेमें पहिला संगठित आन्दोलन हुआ।[1] यद्यपि यह आन्दोलन सिविल सर्विसके लिये किया गया, किन्तु उसका ध्येय अन्तिमतः हिन्दुस्तानकी जनतामें एकता और संगठनकी भावनाओंको सजग करना था। इस आन्दोलन को प्रेरणा देनेवाली संस्था 'इन्डियन ऐसोसियेशन' थी। यह सस्था श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके द्वारा बगालमे २६ जुलाई १८७५ मे कायमकी गई थी। इस सस्थाका ध्येय था—(१) राजनैतिक प्रश्नोंके लिये शक्तिशाली जनमत एकत्र करना, (२) एक सामान्य राजनैतिक ध्येयके लिये भारतीय जनताको सगठित करना, और (३) हिन्दू मुस्लिम एकताको बढाना। इन ध्येयोंको आगे बढानेके लिये निःसन्देह एसोसियेशनने काफी कार्य किया। इटलीके वीर मैजिनीकी राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावनाओंसे प्रभावित और प्रेरित होकर इन्डियन एसोसियेशनने भारतकी राष्ट्रीय एकता पर भी खूब जोर दिया और अपने प्रोग्राममें राष्ट्रीय एकीकरणके ध्येयको प्रमुखता दी।[2] यह संस्था कांग्रेसके अभ्युत्थान काल तक बराबर उत्साहके साथ काम करती रही। यह उसीके प्रयत्नोंका फल था कि इन्डियन

---

1 Indian Constitutional and National Development . Gurumukh Nihal Singh p 179.

2 The Rise and Growth of the Congress, by C. F Andrews and Girija Mukerji p. 113

सिविल सर्विसका आन्दोलन चला और योग्य भारतीय भी सिविल सर्विसमे लिये जाने लगे। वैधानिक आन्दोलनकी यह प्रथम विजय थी। सन् १८७८ मे इन्डियन एसोसियेशनने दूसरा वैधानिक आन्दोलन उठाया। यह आन्दोलन लार्ड लिटनके १८७८ के वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्टके विरोधसे हुआ, जिसने भारतीय पत्रोंकी बहुत सारी आजादी छीन ली थी। इस आन्दोलनके फलसे ही लार्ड रिपन (१८८०—८२) के शासनकालमे 'वर्नाक्यूलर ऐक्ट' हटा लिया गया था।

कलकत्ताका उदाहरण—

कलकत्ताके इन्डियन एसोसियेशनसे प्रेरित होकर मद्रास, बम्बई और पूनामे भी राष्ट्रीय-उत्थानके विभिन्न ध्येयोको लेकर संस्थाये स्थापित हुई। सन् १८७८ मे 'मद्रास महाजन सभा' कायम हुई। सन् १८८५ मे तय्यबजी, फिरोजशाह मेहता और के० टी० तेलंगके प्रयत्नोसे बम्बईमे 'बाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन' कायम हुआ। सन् १८७०मे पूनामे 'सार्वजनिक सभा' स्थापितकी गई जिसने श्री रानडे और श्री जोशीके अधिनेतृत्व मे राष्ट्रीय हितके कई एक काम किये। यह सभा राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाली एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकालती थी। पत्रिकाके ज्यादातर लेख श्री रानडेके ही लिखे होते थे। श्री जेम्स किलोकके अनुसार इस सभाने पश्चिमी भारतको जागृत करनेमे बहुत बड़ा काम किया और राजनैतिक आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओ पर जनमतको तैयार करने और बनानेमें योग दिया।[1]

---

1 Mahadeva Govind Ranade, by Killock p 25,

राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापना—

जब कि विभिन्न प्रान्तोंमे इस प्रकार भारतीय समस्याओं को सुलझानेके लिए अलग-अलग सङ्गठन बन रहे थे, उसी समय राष्ट्रीय पत्रिकाओंने इन प्रान्तीय सङ्गठनोंको एक सूत्रमे ग्रथित कर उन्हे एक राष्ट्रीय प्रकारमे ढालने की चर्चा भी शुरू-कर दी थी।

इसी बीच, इलबर्ट बिलकी एक आखे खोलने वाली घटना भी हो पड़ी। लिटनके बाद लार्ड रिपन (१८८०-१८८३) वाइस राय हुये थे। लार्ड रिपन 'एक उदात्त अंग्रेज थे, उनमे सहजरूपसे न्यायके प्रति प्यार था। अतः वे १८५८ की महारानी विक्टोरिया की घोषणाको कार्यान्वित करते हुए जातीय भेद याने गोरे और काले वर्णका भाव हटाकर भारत और यूरोपके दोनो देशोंकी जनताको समानताके स्तर पर ले आना चाहते थे[1]।' अतः समानताकी भावनाओंसे प्रेरित होकर उनके शासनमे इलबर्ट नामसे एक बिल पास हुआ, जिसके अनुसार भारतीय न्यायाधीशों (Judges)को प्रेसीडेन्सीके नगरोंके अतिरिक्त, देशी जिलोंमे भी अंगरेज नागरिकोंके फैसले करनेका अधिकार दे दिया गया था। इस बिलके पास होनेपर अंगरेजोंने बहुतही हो हल्ला मचाना शुरू किया। अंगरेज अपनेको शासक वर्गका समझते थे,इसलिये 'काले' मजिस्ट्रेटके सामने खडा होनेमे उन्होंने अप्रतिष्ठाका सवाल उठाया। अंगरेज नौकरशाही भी तिलमिला उठी। अंगरेजोंने प्रतिष्ठा के साथ यह भी जाहिर किया कि यदि 'गोरे'का न्याय करनेका अधिकार 'काले'को दे दिया गया तो ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव

---

1 Indian National, Congress—1909–p 952

हिल जायगी[1]। अग्रेज और यूरोपियनोंका यह जातीय अभिमान और अहङ्कार था। यूरोपियनोंने इलबर्ट बिलके विरुद्ध जगह-जगह विरोध-प्रदर्शनके लिये डिफेन्स एसोसियेशन कायम करने शुरू किये और अपने सगठनोको चलानेके लिये चन्दे भी इकट्ठे किये। सफेद जातिके विशेषाधिकारोको सुरक्षित रखनेके लिये इस प्रकार खूब जोरोसे आन्दोलन चला।' डिफेन्स एसोसियेशनने' इगलैड और भारत दोनो जगह इलबर्ट बिलका ऐसा विरोध किया कि अन्तमे लार्ड रिपनकी भारतीय सरकारको उसे वापिस ले लेना पडा। इस घटना और यूरोपियन डिफेन्स ऐसोसियेशनके सगठनका परिणाम अन्तमे हमारे राष्ट्रीयजागरणके लिये अच्छाही साबित हुआ। गोरी जातिके इन व्यवहारोंको देखकर राष्ट्रकी आखे खुलीं। अब तक प्रान्तोमे ही भारतीय अपना सङ्गठन करने पर लगे थे, किन्तु अब यूरोपियन डिफेन्स ऐसोसियेशनने उन्हे चेता दिया कि यदि उन्हे अगरेजी सरकारसे टक्कर लेना है तो एक राष्ट्रीय सङ्गठन कायम किया जाना चाहिये। फलत सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने १८८३ मे यूरोपियन डिफेन्स ऐसोसियेशनके मुकाबलेमे राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय फन्ड (कोष) चलानेके निमित्त एक राष्ट्रीय कान्फ्रेंस बुलाई।

इसी समय (यानी १८८३) एक उदात्त अगरेज एलान आक्टेवियन ह्यूमने भी भारतके राष्ट्रीय सङ्गठनको बनाने और प्रेरित करनेमे बडी मदद पहुचाई। श्री ह्यूम पहिले एक उच्च सरकारी पद पर रह चुके थे। १८८२ मे सरकारी नौकरीसे इस्तीफा देकर वे शिमलामे बस गये थे। वे एक बड़े दूरदर्शी

---

1 Renascent India by H C E Zacharias p 109–110

राजनीतिज्ञ थे। ब्रिटिश राजकी दुर्नीति और नौकरशाहीके जातीय अभिमानका परिणाम उन्हे स्पष्ट दिखलाई दे रहा था। वे देख और समझ चुके थे कि यदि भारतकी वर्तमान असंतोषकी सुलगती हुई आन्तरिक आगको शान्त न किया गया तो देश भरमे फिर १८५७ की भाति ही जगह-जगह क्रान्तिके विस्फोट भड़क उठेगे। ह्यूमको खुफिया विभागकी कई रिपोर्टोसे यह भी ज्ञात हो चुका था कि कृषकवर्गमे असंतोप वढता जा रहा है, और मुल्क मे षड्यन्त्रकारी गुप्त सगठन पैदा हो रहे है। ह्यूम इस स्थितिको रोकना चाहते थे। उन्होने अगरेज नौकरशाहीको इस स्थितिकी भयकरता समझानी चाही, लेकिन १८५७ की सफलतासे ब्रिटिश नौकरशाही निश्चिन्त हुई बैठी थी, इसलिये उन्होने ह्यूमके कथन पर कोई ध्यान न दिया।

अतः ह्यूमने अब अपना रुख वदला और हिन्दुस्तानी नेताओसे सवध जोड़ा। उन्होने एक खुले पत्रमे कलकत्ता विश्व-विद्यालयके ग्रेजुएटोंको ललकारते हुये कहा—'मेरे जैसे विदेशी भारतवर्ष और उसके वच्चोको प्यार कर सकते है, किन्तु उनमे राष्ट्रीयताकी प्रेरणा नही भर सकते, इसलिये वास्तविक रूपसे मुल्कके लिये उसीके निवासियोका कार्य करना चाहिये।' ह्यूमने इस प्रकार कलकत्ताके ग्रेजुएटोको भारतके 'बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक पुनरुत्थानके हेतु' एक संगठन कायम करनेकी प्रेरणा दी।[1]

---

1 Alllan Octavian Hume, C B, Father of the Indian National Congress, by Sir W Weederburn, London, 1913, p 52

ह्यूमकी इस प्रेरणा और बनर्जीके राष्ट्रीय संगठन और राष्ट्रीय कोष स्थापनाकी चेष्टाके परिणामसे आखिर १८८५ में राष्ट्रीय संगठनके हित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापनाकी गई। हमारी आजकी राष्ट्रीय कांग्रेसका यही स्रोत है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापनाके सम्बन्धमें ह्यूमने तत्कालीन वाइसराय श्री डफरिनसे भी मंत्रणाकी थी और वाइसरायने इस बातको स्वीकार भी किया था कि "यह अच्छा होगा यदि मुल्कमें कोई ऐसा संगठन हो जिसके द्वारा सरकार मुल्कके जनमतसे परिचित रह सके।"[1] इस प्रकार ह्यूमने भारतीय सरकारका भी राष्ट्रीय कांग्रेसके निर्माणमें सहयोग प्राप्त कर लिया था। परिणामतः भारतीय सरकारने नवजात कांग्रेसके आरम्भिक विकासमें किसी प्रकारकी रुकावट न पैदाकी, वरन् बम्बईमें जब कांग्रेसका प्रथम बार अधिवेशन हुआ तो बहुतसे सरकारी अफसरोंने भी उसमें हिस्सा लिया था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी पहिली सभाका होना पहिले (२२ से ३० दिसम्बर १८८५) पूनामें निश्चित हुआ था, किन्तु पूनामें यकायक हैजाका प्रकोप फैलनेसे सभाका स्थान बादमें बम्बईमें रखा गया। कांग्रेसकी इस पहिली सभामें हिन्दुस्तानके तमाम हिस्सेसे लगभग ७२ प्रतिनिधि सम्मिलित हुये थे। उस समयसे आज तक कांग्रेसकी बैठक हर साल किसी मुख्य नगर या गांवमें होती ही रहती है।

कांग्रेसकी पहली सभाके सभापति रमेशचन्द्र बनर्जी चुने गये थे। सभापतिके पदसे दिये भाषणमें उस समय बनर्जीने कांग्रेस-के ध्येय और लक्ष्य इस प्रकार प्रकट किये थे—(१) मुल्कके

---

1 Wedderburn p. 60

तमाम कार्यकर्त्ताओंमें आपसी मेल जोल बढाना, (२) राष्ट्रीय एकताको बढ़ाना, (३) जनमतको सङ्घठित करना, तथा (४) इस बातके लिये प्रयत्न करना जिससे "भारतीयों को अपने मुल्कके शासनमें यथोचित स्थान प्राप्त हो सके आदि।"

प्राथमिक कांग्रेसके ये ही विनम्र ध्येय थे। किन्तु इन विनम्र ध्येयोंके होते हुये भी ब्रिटिश सरकार जल्दी ही कांग्रेसके आंतरिक राजनैतिक भावोंको समझ कर उसके मार्गमें अड़चने पैदा करने लगी। लार्ड डफरिन, जिसने स्वयं कांग्रेसकी स्थापनामें सलाह दी थी वही अब कांग्रेसके बढते हुये प्रचारको देखकर उसे "राजद्रोही और अल्प वर्गीय सभा कहने लगा।" फलतः १८८८ से जब इलाहाबादमें कांग्रेस अधिवेशन हुआ, सरकार हर प्रकारकी रुकावटे कांग्रेसके मार्गमें डालती चली गई।

किन्तु इन रुकावटोंके बावजूद ह्यूम कांग्रेसके कार्यको आगे बढाते गये। भारतीय कांग्रेसके ध्येयको प्रचारित करने के लिये ह्यूमने १८८८ में इंगलैंडमें एक एजेंसी स्थापितकी जिसके पहिले मंत्री श्री डब्लू-डिगबी हुए। यह एजेंसी १८८९ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी एक कमेटीके रूपमें बदल दी गई। इस कमेटीके प्रचारके परिणामसे ही श्री ब्राडलाफ (Bradlaugh) ने १८८९ में बम्बईकी कांग्रेसमें भाग लिया था। इस वक्त की कांग्रेसने भारतमें प्रतिनिधित्वपूर्ण शासनकी शुरुआतके लिए एक स्कीम रखी थी, जिसे ब्राडलाफने पार्लियामेन्टमें एक बिल द्वारा पेश करनेका वचन दे दिया था। तद्नुसार ब्राडलाफने १८८९ में एक बिल पेश भी किया। ब्राडलाफके बिलको पेश हुआ देखकर गवर्नमेंटने अपनी सर्व-प्रियता खो जानेके

उसने स्वय भी एक बिल पार्लियामेंटमे पेश कराया, जो ब्राडलाफके बिलसे बहुत घट कर था। दुर्भाग्यवश १८९१ मे ब्राडलाफकी मृत्यु हो गई, और गवर्नमेंटके बिलको पास होनेमे कोई दिक्कत न पड़ी। फलतः गवर्नमेंटका बिल १८९२ मे शाही आज्ञासे १८९२ का इण्डिया कौसिल ऐक्टके नामसे पास हो गया।

१८९२ के इण्डिया कौसिल ऐक्टके अनुसार, जो कि कांग्रेस के आन्दोलनका ही फल था—पहिले पहल 'चुनाव'का सिद्धात व्यवहारमे आया और कौसिलके सदस्योको 'वोट' देनेके अलावा वार्षिक-बजट पर विवाद करनेका हक भी दे दिया गया।

किन्तु काग्रेस इस ऐक्टसे ही संतुष्ट होकर नहीं बैठ गई। काग्रेस तो शासनमे "भारतका पूरा प्रतिनिधित्व, और कौसिलके सदस्योंकी सीमित शक्तियोका प्रसार चाहती थी," और यह १८९३ के काग्रेसके अधिवेशनमे दादा भाई नौरोजीने स्पष्ट घोषित भी कर दिया था। दादा भाई नौरोजीने पहिले पहल 'स्वराज' को भारतका ध्येय भी घोषित किया। इस ध्येयकी प्राप्तिके लिये इन काग्रेस नेताओंने—वैधानिक-आन्दोलन, और भारतीयोका ब्रिटिश प्रजातन्त्रवादियोके साथ मिलकर कार्य करना—ये दो मार्ग बतलाये।

काग्रेसने इस प्रकार अपने इतिहासके पहिले बीस वर्षोंमे अपना सुचारु रूपसे सगठन किया और राष्ट्रमे एकता कायम कर दी। फलतः ब्रिटिश राजके मुकाबलेमे खडा होनेके लिये उन्हे अब अपनेपर भरोसा होने लगा और ब्रिटिश प्रजातत्रवादियोके सहयोगकी भी उन्हें कोई विशेष जरूरत न रह गई। नि सन्देह काग्रेस दृढतासे बढती चली जा रही थी।

किन्तु काग्रेसके विकासके वनिस्पत उससे भी तीव्र गति से राष्ट्रीयता, और विदेशी हुकूमतसे स्वतत्र होनेकी भावनाओने विकास किया। भारतमे अव वैधानिक आन्दोलनके प्रति असतोपकी आवाजे प्रकम्पित होने लगी। युवक समाज भारतके वैधानिक आन्दोलनकी धीमी गतिसे उकता सा उठा। वे सोचने लगे कि वैधानिक आन्दोलनके अलावा क्या कोई ऐसा क्रातिकारी मार्ग नहीं हो सकता जिसके अनुसरणसे अधिकारो की प्राप्ति तत्वरता और तेजी से हो सके। क्या अंगरेजी सरकारसे किसी दूसरे मार्गसे भी काम लिया जा सकता है? क्या अंगरेजी शक्ति वाकई लोहेकी दीवार है जिससे टक्कर लेना केवल अपना सिर फोड़ना है? वस्तुतः अगरेजी-शक्तिको अजेय और अपार समझनेका कारण दुर्दमनीय गुलामी और गोरे राज की कठोर निरकुशता थी। अगरेजोंने नि सन्देह भारतीयोंको इस बुरी तरहसे दवा रखा था कि हिन्दुस्तानी अपने दिलोमे अपने आपको गोरे अगरेजोंसे अकथनीय रूपसे तुच्छ समझने लगे थे। अगरेजोके कठोर आधिपत्य तथा १८५७ के विद्रोहका जिस भीषणतासे अंगरेजी सरकारने भारतीयोसे वदला लिया था, उससे हिन्दुस्तानी ब्रिटिश-राजसे अभी तक अपरिमित रूपसे संत्रस्त हुए वैठे थे। ब्रिटिश सरकारने आर्मस-ऐक्ट द्वारा भारतीयोको निःशस्त्र भी कर रखा था। इससे भी वे अत्यन्त भीरु और कायर वन गये थे। अतः ऐसी अवस्थामे हिन्दुस्तानियोको ब्रिटिश राजकी मुखालफत करने की हिम्मत हो भी कैसे सकती थी? भारतही नही एक प्रकारसे पूरा एशिया ही तव गोरे प्रभुत्वको असमान्य और अजेय मान वैठा था। किन्तु इसी वीच १८९४ मे एक ऐसी घटना हुई जिसने काली

जातिकी आखे खोल दीं। १८९४ मे अबीसीनियाके काले एशियाई राज्यने अडोआके युद्धमे यूरोपके गोरे इटालियन आक्र-मणकारियोंको बुरी तरहसे परास्त कर उन्हे अपने मुल्कमे घुसनेसे रोक दिया। इस घटनाको देखकर नवजागृत भारत भी सोचने लगा कि यदि अबीसीनियाकी काली जाति गोरे इटालियनोको ढकेल सकती है, तो क्या हिन्दुस्तानके काले गोरे अगरेजोंको नहीं निकाल बाहर कर सकते? उन्हे अब कांग्रेस की नरम और वैधानिक रीति वा नीति निष्फलसी जचने लगी। वे सोचने लगे कि इस नीति पर चलनेसे राष्ट्रको १० वर्षोंमे बड़े प्रयत्नोंके बाद आखिर एक मामूली कौंसिल ऐक्टके सिवा और क्या मिल सका? अतः नवीन-भारतने क्रान्तिके मार्गपर अग्रसर होनेका निश्चय किया। इस आग्नेय—मार्गकी ओर बढने वाले प्रान्तोंमे महाराष्ट्र और बगाल सबसे आगे रहे।

महाराष्ट्रमे इस समय बाल गगाधर तिलकके नेतृत्वमे राष्ट्रीयताके विचार बडी तेजीके साथ फैल रहे थे। तिलक एक महान् देश भक्त थे, जिनका महाराष्ट्रकी जनतापर अत्य-धिक प्रभाव था। जन-मान्य होनेके कारण उन्हे देशने 'लोक मान्य' की उपाधि भी प्रदानकी थी। सारे भारतमे तिलक, लोकमान्य और चितपावनके नामसे प्रसिद्धि प्राप्त कर गये थे। तिलक देशभक्त होनेके साथ ही एक महान् पंडित और ऊँचे कक्षके राजनितिज्ञ भी थे। जनतापर उनका पूरा-पूरा प्रभाव था, अतः इस दृष्टिसे "वे ही भारतके पहिले राजनैतिक नेता थे, जिनकी आवाजकी पहुच जनता तक थी।" निःसन्देह तिलकसे पूर्ववर्त्ति नेताओंमे से कोई ऐसा न हुआ था जिसकी आवाज पढ़े-लिखे समाजके बाहर

जन साधारणतक पहुच सकी हो। इस जन-नेता और प्रचण्ड राजनीतिज्ञने बड़ी भीपणताके साथ अगरेज-शाहीके विरुद्ध प्रचार शुरू किया। और देशमें जागृतिकी एक व्यापक लहर पैदा कर दी।

अपने युगके वे सचमुच 'गाधी' थे, अन्तर केवल यही था कि गाधीजीकी तरह वे शात और मृदुल न थे, और हिसक क्रातिमें विश्वास रखते थे। इसलिये यदि तिलकको 'तीक्ष्ण गाधी' कहा जाय तो अनुचित वा अनुपयुक्त न होगा। विशेपतया तिलकके प्रचारसे महाराष्ट्रमे राष्ट्रियताने खूब जोर पकडा। महाराष्ट्रके युवक ब्रिटिश-शासनके लौह-पंजेसे अपने को छुडानेके लिये तड़फड़ा उठे। अगरेजोके प्रति उनके हृदयो मे कोपकी भीपण ज्वाला दहकने लगी। इसी समय १८९७ मे पूनामे प्लेग फैला और उसे दबानेके लिये अंगरेजी सरकारने वहाँकी ब्रिटिस रेजीमेन्टको आज्ञा दी। लेकिन बीमारीको दबानेके बजाय ये नृशन्स और आततायी सैनिक वहाँकी जनताकोही दबाने और रौधने लगे। उनके इस दुर्व्यवहारको नव-चेतनासे पूर्ण भारतका युवक-हृदय कैसे सह सकता था? अतः वहाँके भारतीयोंने प्रतिहिंसासे उत्तेजित होकर पूनाके कलक्टर और ब्रिटिश-रेजीमेटके एक लेफ्टिनेन्टकी हत्या कर डाली।

भारतीयोंके इस दुस्साहससे भारत सरकारका हृदय कॉप उठा। उन्हे प्रतीत होने लगा कि भारतीय अन्दरही अन्दर सशस्त्र क्रातिकी मन्त्रणा कर रहे है। वे सोचने लगे कि १८५७ की क्रांति के नेता नाना साहब-'चितपावन' थे, और तिलक भी 'चितपावन' कहलाते है, इसलिये हो न हो तिलकके इशारेपर ही (यद्यपि इसके लिये कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न था) ये राजनैतिक

हत्याये हुई है। फलतः संत्रस्त और भयभीत सरकार द्वारा तिलक पकड लिये गये और उन्हें १८ महीनेकी सख्त सजा दे दी गई। किन्तु हिसासे हिसा क्या कभी दब सकी है ? तिलक को सजा देकर ब्रिटिश-सरकारने उन्हे और क्रांतिको दबा डालना चाहा था, किन्तु इससे क्रातिकी ज्वाला और भी तीव्रतर हो उठी और तिलक बन्द होनेसे वस्तुतः जनताके और भी निकटस्थ चले आये। जनताकी दृष्टिमे तिलक राजनैतिक शहीदोमे अग्रगामी साबित हुए। क्रांतिकी लहर दबनेके बजाय बगालमे भी फूट निकली।

लार्ड कर्जन और बग-भग आन्दोलन—

सन् १८९८ से १९०५ तक भारतका शासन सूत्र लार्ड कर्जन के हाथमे रहा। कर्जन एक पक्का साम्राज्यवादी व्यक्ति था। अब तकके अगरेज वाइसरायोमेसे कर्जनही वह व्यक्ति है जिसे "ब्रिटिश औरगजेब" कह सकते है। औरगजेबकी भॉति उसका शासन भी अनियन्त्रित, दकियानूसी और आतंक पूर्ण रहा। पर उसकी दुर्दमनीय नीतिने भारतीय असन्तोषकी ज्वालाको भडका कर, ब्रिटिश राजकी नीवको हिलानेमे ही अधिक काम किया। अपने मनमे शायद वह यही सोचता रहा होगा कि गुलाम भारतीयो को दबाना कोई कठिन कार्य नही है, क्योंकि भारतीय गुलामोसे भला कौनसी ताकत है जिससे वे उसके शासनकी बुराइयोंका प्रतिरोध कर सकते है ? कर्जनकी ये धारणाये उसके कई एक अनैतिक कार्यों और जनमतकी पूर्ण उपेक्षा करने की नीतिसे प्रत्यक्ष है।

कर्जनने पहला आघात 'भारतीय शिक्षा' पर किया था। १९०४ मे उसने एक ऐसा ऐक्ट पास कराया जिसके परिणामसे

भारतीय विश्व-विद्यालय व शिक्षा-संबन्धी संस्थाएं शिक्षा-प्रसार और प्रचार के केन्द्र होनेके विपरीत 'नौकरी-पूजको' या 'पद-आखेटको' के निर्माणके केन्द्र बन गये। उसका ध्येयही यह था कि भारतमे ऐसी शिक्षाका प्रसरण बिलकुल रुक जाय जिससे राजनैतिक जागृतिके पैदा होनेका भय हो[1]।

इससे भी भीषण कार्य कर्जनका १९१२ का 'दर्बार' था। उस समय जबकि जनता एक ओर भूखो मर रही थी, कर्जनने जनताके सारे विरोधोकी अवहेलना कर लाखो रुपया दरबारके 'तमाशे' और आतिशबाजी फूँकने तथा उत्सव मनानेमे बहा दिये[2]। कर्जनके इन कृत्योसे भारतीयोके दिलपर पूरी तरह अंकित हो गया कि ब्रिटिश शासनका लक्ष्य और ध्येय एकमात्र 'आर्थिक शोषण' और 'प्राचीन हिन्द' का मान-मर्दन करना है[3]।'

अतः उसके इन कार्योसे भारतकी मनोदशा बिगड़ चली और लोगो के दिल अंग्रेजी शासनसे क्षुब्ध हो उठे। ऐसी स्थिति में कर्जनने 'बंग-भंग' की घोषणा कर हिन्दुस्तानी हृदय और मस्तकपर एक और वज्र-प्रहार किया। यह घटना उसी समयकी है, जब एशियाकी एक छोटीसी शक्ति जापानने, यूरोप के दानव-स्वरूप रुसको तुसिमाकी लड़ाईमे हराकर गोरी जातियोको कँपा दिया था। एशियाई जापानकी इस विजयने अन्तरीप से लेकर हिमालय तक भारतकी धमनियोंमे भी एक नूतन बल

---

1. Renascent india, Zacharias, p 13
2 Congress, 1903, Ghose, pp 745, ff.
3. Economic History of British india, by Ramesh Chandara Dutt

और रक्तका सचार कर दिया। जापान की विजयने भारतके क्षुब्ध और सत्रस्त हृदयमे यह आशा और विश्वास पैदा कर दिया कि एशियाई और कृष्ण-वर्णके होने पर भी गोरी अगरेज जातिका यदि शक्ति हो तो अवश्य मुकाबला किया जा सकता है। प० जवाहरलालके शब्दोंमे "जापानकी विजय एशियाको ऊपर उठाने वाली थी। इस विजयने भारतीयोंके मनसे अगरेजोंसे अपनेको छोटा समझनेकी भावना बहुत घटा दी ·· । परिणामतः राष्ट्रीय भावनाये बगाल तथा महाराष्ट्रमे तेजीसे फैल उठी[1]।"

इस प्रकार जापानी विजयसे प्रभावित होकर, भारतीय जनताका हृदयभी अगरजी दुर्नीतिका सामना करनेके लिये बल पकड गया। अतः जब बगालपर अपनी कूट-नीतिका चाकू चला कर कर्जनने बग-भग करनेकी तजवीज रखी तो सारा बगाल उसके विरोधमे काप उठा। बग-भगके द्वारा कूटनीतिज्ञ कर्जन बगाली जातिकी एकताको भग करना चाहता था। उसकी यह आन्तरिक इच्छा थी कि पूर्वीय बगाल और आसामको हिन्दू और मुस्लिम दो प्रान्तोंमे बाटकर उनमे प्रतिद्वन्दता उत्पन्न करदी जाय। लेकिन उसके इन घातक ध्येयोको बगालही नहीं सारा भारत एक दम ताड गया। फलत. समस्त भारतमे बङ्ग-भङ्गके प्रति विरोधकी जोरदार पुकार गूँज उठी। सारे बङ्गालमे बङ्ग-भङ्गके विरोधमे करीब ५०० सभायेकी गई। किन्तु कर्जनकी निरकुश सरकारने आखे मूंद लीं और कान बहरे कर दिये। बङ्गाली जनताने तब एक जबर्दस्त अर्जी ६०,००० व्यक्तियोंके दस्तखतोंके साथ पार्लियामेन्टको भेजी। लेकिन उसका भी कोई

---

1 Glimpses of the world History, 44 p

फल न निकला। आखिर १९०५ मे हिन्दुस्तानने यकायक २० जुलाईके सरकारी गजटमे पढा कि सरकारने वङ्ग-भङ्ग स्वीकार कर लिया है, और जनताकी आवाज पूरी तौरपर ठुकरा दी गई है।

कर्जनने जिस धृष्टताके साथ जनताकी अवहेलनाकी, उससे वग-भंगके जन-आन्दोलनकी गति-विधि और भी तीव्र और उग्रतर हो चली। पहलेके आन्दोलनोमे केवल सभा करके प्रस्ताव ही पास किये जाते थे, किन्तु बग-भगने आन्दोलनका वह रूप ही वदल डाला। कलकत्तेमे चीनके उदाहरणको लेकर ७ अगस्त १९०५को एक आम सभा हुई जिसमे यह तै हुआ कि जब तक वग-भग रद्द न कर दिया गया, जनता अगरेजी मालको न खरीदेगी। अगरेजी मालके वाईकाट और स्वदेशीको अपनानेका यह नारा देशको प्रथम वार इसी समय दिया गया था। वंग-भगके आन्दोलनने निःसन्देह भारतमे एक नूतन चेतनता और जागृति की धारा प्रवाहित कर दी।

कर्जनकी सरकारकी ज्यादतियोसे खीजकर वंगालके बाई-काटके निश्चयको १९०५ की काग्रेसने भी स्वीकार किया। लाज-पत रायने मालवीयजीके वाईकाटके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुये देशको नया सन्देश देते हुए कहा "भारतको अव भिखारी-पनसे ही सन्तुष्ट नहीं रहना है । यदि उन्हे वास्तवमे अपने मुल्क की चिन्ता है, तो स्वतन्त्रताके लिये उन्हे अव स्वय सघर्ष करना होगा।" अतः काग्रेसकी नरम नीतिको लोग अव नीची निगाहोसे देखने लगे और तिलक जैसे तीक्षण राजनीतिज्ञकी चाहना करने लगे। लेकिन काग्रेसने अपने वैधानिक प्रयत्नोंको जारी रक्खा और गोखलेको भारतकी तरफसे वग-भगको उठा लेनेकी मॉग करने के लिए इङ्गलैड भेजा। किंतु भारतमंत्री श्री मोरलेने गोखलेको पत्थर-सा कठोर जवाव देते हुए कहा—"वंग-भंग एक निश्चित

फैसला है, और उसे मेटा नही जा सकता।" इसी समय गोखलेने भारतके लिये स्वायत्त शासनकी भी मॉग रखी थी, और उत्तरमे मोरलेने बिगड कर कांग्रेस प्रतिनिधि गोखलेकी भर्त्सना करते हुए कहा था, "इस (स्वायत्त शासन) की मॉग करना, चद्रमाके लिये चिल्लाना है[1]।"

मोरलेके इन व्यवहारोसे भारतीय जनताको अब यह समझनेमे कुछ बाकी न रही कि भारतका हित कांग्रेसकी भिखमगी और नर्म नीतिसे नही हो सकता। और भारत अगरेजोके विरुद्ध अपने पैरों पर खड़े होकर ही कुछ कर सकता है।

कांग्रेस ऐक्यका टूटना १९०७—

भारतने अपना कल्याण अब उत्साह और क्रांतिसे परिपूर्ण बंगालके क्राति पुरुष अरविंद घोष और महाराष्ट्रके महापुरुष तिलकके नये क्रान्तिकारी मार्गके अनुकरणमे अनुभव किया। फलतः सन् १९०७ मे सूरतकी कांग्रेसमे दो विभाग हो चले—नर्म और गर्म अथवा शात और उग्र। उग्र दलकी नई पार्टीमे बंगाल और महाराष्ट्रके उग्रवादी या क्रातिकारी शामिल थे। इस नई पार्टी या दलके प्रधान नेता तिलक तथा विपिन चन्द्रपाल और अरविंद घोष थे। तिलक अपने अनुयायियोंको निर्भीक बननेका मत्र दिया करते थे। वे जनताकी ही शक्ति द्वारा ब्रिटिश राजको जनताके सामने झुकनेके लिये विवश कराना चाहते थे। और उन्हें अपने इस ध्येय पर भरोसा भी था।

नर्म दल अथवा पुरानी कांग्रेसमे इस समय पुराने नर्म दली नेता श्री मालवीय, दिनेश वाचा, फिरोजशाह मेहता,

---

1 Renascent India, p 145

सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और लाजपतराय थे। और इनका नेतृत्व करने वाले सुविख्यात नर्म दली गोपाल कृष्ण गोखले थे।

कांग्रेसपर आधिपत्य तब नर्मदलका ही था, इसलिये तिलकके गर्मदली कांग्रेससे बाहर कर दिये गये। किन्तु नर्म-दल अपनी झुकावकी नीतिसे सार्वजनिक प्रियता खो बैठी और जनताने तिलकही का स्वागत किया। फलतः कुछ समयके लिये कांग्रेस शिथिल होकर पृष्ठ-भूमिमे पड़ गई।

कांग्रेसके इस प्रकार टूट जानेसे ब्रिटिश सरकार खुश थी। कांग्रेसमे भेद पडनेसे निःसन्देह 'स्वराज्य-संग्राम' की शक्तियाँ बिखर गई थीं। सरकारने अवसर देख अब दु-धारी तलवारसे काम लिया, नर्म-दल वालो को शीतल करनेके लिए उनके सामने टुकडे फेंके गये, और गर्म-दलियोको ठढा करनेके लिये बन्दूक साधी गयी।

इधर बगालमे निरंकुश वाइसरायके कारनामोसे जो असन्तोष पैदा हुआ उसने अब बम्ब-बाजी और 'हत्याओ' का रूप ले लिया था[1]। ये घटनाये सूरतमे कांग्रेसके भङ्ग होनेके कुछ ही समय बाद से शुरू हो गई थीं। अतः ब्रिटिश सरकारने गरम दल वालोंको दबानेका यह अच्छा अवसर समझा। श्री तिलक, बिपिन चन्द्र पाल और अरविन्द घोष तुरन्त पकड लिये गये। तिलक को ६ मासकी सजा हुई और उन्हे माण्डले भेज दिया गया। बिपिन चन्द्र पालको भी ६ महीने की सजा हुई, लेकिन घोषको एक सालके बाद बरी कर दिया गया। इसी समय

---

1 International Poltics, by Frederiek L Schuman p 396

मुस्लिम गरम दली नेता हसरत मोहानीको भी एक सालकी सजा हुई थी। इन नेताओंके पकड़े जानेसे जनतामे भयकी जगह असतोष और भडक उठा। फलतः १९०९ मे वाइसराय मिण्टो पर वम डाला गया और नासिकमे कलक्टरकी हत्या करदी गई।

इन उपद्रवोसे डर कर ब्रिटिश सरकारने हिन्दुस्तानको शात करनेके लिये कुछ 'सुधार' देनेका निश्चय किया। किन्तु ये सुधार किसी सच्ची नीयतसे नहीं दिये जा रहे थे। वंग-भङ्गके समयसे नये पूर्वीय वंगाल और आसामके मुस्लिम प्रान्तका गवर्नर वरावर हिन्दू और मुसलमानों मे भेद पैदा करता जाता था और खुले शब्दोंमे हिन्दुओका विरोध करते हुए मुसलमानोको "सरकारके प्रिय पात्र" घोषित कर उन्हे हिन्दुओसे अलग होनेके लिए प्रेरित करता रहता था। इसीसे १९०६ मे जब मिण्टोने सुधारकी योजना बनाई तो मुसलमानोने आगा खॉ के नेतृत्वमे एक डिपुटेशन भेजकर सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व' (communal representaticn) की माग पेशकी। सरकार हिन्दू-मुस्लिम भेद तो चाहती ही थी, अतः मिण्टोने सहर्ष इस मागके पक्षमे अपनी 'हॉ' जाहिरकी, जिसका घातक परिणाम आज तक भारत उठा रहा है। सरकारकी भेद-नीति निःसन्देह विजयी हुई, और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य टूट चला। मुसलमान अव काग्रेसको राष्ट्रीय के वजाय हिन्दू सस्था कहने लगे। फलतः १९०६ मे आगाखॉ ने मोहसिन उलमुल्ककी प्रेरणा पर मुस्लिम अधिकारोंकी रक्षा और अपने खोये हुए वादशाही जमानेके वैभव को पुन प्राप्त करनेके उद्देश्यसे हिन्दू काग्रेसके विरोधमे मुसलमानोंकी 'मुस्लिम लीग' नामसे एक अलग संस्था कायम कर डाली।

१९०९ में आखिर भारतीय असंतोषकी ज्वालाको रोकनेके लिये गर्वनमेन्टने कुछ सुधार दिए जो मिण्टो-मोरले सुधारके नामसे प्रसिद्ध है। इन सुधारोंके अनुसार भारतीयोंको वाइसरायकी कौंसिल तथा प्रान्तीय शासकोंकी कौंसिलोंमे जगह दी गई, और व्यवस्थापक सभाओंको प्रसारित किया गया। इनके अलावा मुस्लिम लीगकी मांगपर भयानक साम्प्रदायिक जातीय प्रतिनिधित्व भी सुधारमें भारतको मिला। इस जातीय प्रतिनिधित्वको स्वीकार कर सरकारने निश्चय ही प्रजातन्त्र विरोधी सिद्धान्तको स्वीकार किया था। सभाओका रूप सुधारोके बाद भी अप्रजातन्त्रात्मक ही रहा, क्योंकि उन्हे शासनमें कोई अधिकार दिया गया था, और उनकी शक्ति केवल 'विवेचना और आलोचना' तकही सीमित रखी गई थी। शासनकी पूरी शक्ति वैसे सरकारने अपने हाथोंमें ही थामके रखी। अतः प्रधानके शब्दोमे मिण्टो-मोरले सुधारोसे भारतीय जनताको लेशमात्र भी शासन मे जिम्मेदारी प्राप्त न हो सकी थी।

किन्तु इन सुधारोंसे कांग्रेसका नर्म-दल खुश हो उठा। इन सुधारोका विरोध करनेके वजाय उन्होने उनका स्वागत किया। केवल गर्म-दलही सुधारोका विरोध कर सकता था, लेकिन उसके नेता तब सींकचोंमे बन्द थे, और नेतृत्व-विहीन अनुयायि कुछ करनेमे असमर्थ थे। परिणामतः भारतका राष्ट्रीय आन्दोलन शिथिल पड गया। केवल बगालमे वङ्ग-भङ्गका आन्दोलन चलता रहा और सौभाग्यसे अन्ततः सफल होकर ही शांत हुआ। १९११ मे जार्ज पचमको वाध्य होकर अपने मुखसे घोषणा करनी पड़ी थी कि बंग-भगको खतम कर उसे पुनः एक कर दिया जायगा। इस के साथ-साथ जार्जने राजधानीको कलकत्तासे हटाकर

दिल्ली लेजाने की घोषणा भी की थी। इस समय हार्डिञ्ज यहाँ पर वाइसराय थे।

१९११ का साल हमारे राष्ट्रीय इतिहासका एक सौभाग्यशाली साल था। वग-भगका आन्दोलन इसी साल सफल हुआ था, और इसी साल हिन्दू तथा मुसलमानोने मिलकर स्वराज प्राप्तिके लिये आपसी ऐक्ट कायम करनेकी गरजसे एक कान्फ्रेस भी बुलाई थी। इस कान्फ्रेससे वेडरवर्न (Wehderburn), वनर्जी (Banejıee), मालवीय, रहीमतुल्ला, हसनइमाम, जिन्ना और अली भाइयोने भाग लिया था। मुहम्मद अली लीगके गर्मदली (Leftwıng) नेता थे। इस दलने ही मुस्लिम लीगको जातीयता और राज-भक्तिके अधकूपसे वाहर आनेको प्रेरित किया था। फलत १९१३ मे अपने वाम पक्षसे प्रभावित होकर लीगने आगे के लिये अपना ध्येय "दूसरी जातियोसे मिलकर भारतके लिये स्वायत्त-शासन की प्राप्ति" स्वीकार किया। काग्रेसने खुश होकर लीगके इस प्रस्ताव और निर्णय का वहुत सरगर्मी एव उत्साहसे स्वागत किया था।

इस घटनाके परिणामसे आगे चलकर हिन्दू और मुस्लिमों मे एक-पेक्ट भी कायम हुआ जो लखनऊ पैक्टके नामसे प्रसिद्ध है।

इसी वीच दुर्भाग्य से कान्ग्रेसके दो वड़े नेता गोखले और फिरोजशाह मेहता स्वर्ग सिधार गये। अतः कांग्रेस उनके नेतृत्वसे वंचित होकर कुछ समयके लिये शिथिल सी पड गई। यह मौका हमारे राष्ट्रके इतिहासमे वडा नाजुक था। और मुल्ककी राजनैतिक हाल डावाडोल थी।

अतः १९१४ मे जव यूरोपमे पहिला महायुद्ध छिडा भारत वडी ही कठिन अवस्थामे था।

महायुद्ध और भारत—

१९०७ मे हमारे देशमें गर्म-दली आन्दोलनने काफी जोर पकडा था, किन्तु १९११ मे वग-भंगके रद किये जानेपर यह आन्दोलन स्वयं शान्त हो गया था। रहा नर्म-दल। वह १९०९ में मिण्टो-मोरले सुधारसे खुश हो उठा था। और रही सही विरोधी शक्तिया तिलक आदि के जेलमे होनेसे बिलकुल दब गई थी। फलतः १९१४ मे यूरोपीय युद्धके छिड़ने पर भारतके राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वतन्त्रताके सघर्षकी लहरे शक्तिहीन हो रही थीं।

इस शक्तिहीनताको खतम करनेके लिये नर्म-और गर्म दलोके पारस्परिक मत-भेद तथा हिन्दू मुस्लिम अनैक्यका दूर किया जाना बहुत जरूरी था। सौभाग्यसे इस बार गर्म और नर्म दलोंको जोडनेमे श्रीमती ऐनी बेसेन्टने प्रशसनीय कार्य किया। श्री बेसेन्टने सन् १९१३ मे इसी उद्देश्य को लेकर भारतीय राजनीति मे प्रवेश किया था। इसी समय सन् १९१४ मे तिलक भी माडलेसे सजा काट कर लौट आये थे।

बेसेन्ट और तिलकने अब साथ मिलकर १९१५ में 'होमरूल लीग' स्थापित की और जोरोसे उसका प्रचार भी आरम्भ कर दिया। इन नेताओने पहले कांग्रेस पर ही इस नये आन्दोलनको उठानेका जोर दिया, किन्तु जब ९ महीनेकी अवधिके बाद भी काग्रेसने होमरूल लीगके सम्बन्धमे कोई जबाब न दिया तो श्री बेसेन्टने पृथक होकर होमरूल लीग की अलगसे स्थापना कर डाली। यह होमरूल लीग मद्रास प्रान्तमे बडे जोरोंसे फैली। इसी समय महाराष्ट्रमे जोजेफ बैपटिस्टा और तिलकके प्रयत्नोसे महाराष्ट्र-होमरूल लीग भी स्थापित हुई और

थोड़े ही समयके भीतर सारे वम्बई प्रान्तमे उसका प्रभाव छा गया। इस प्रकार गर्म दल वालोंकी काग्रेसके विरुद्ध अपनी एक अलग निजी संस्था ही कायम हो गई।

श्री वेसेन्टके प्रयत्नोसे १९१६ की काग्रेसमे सव प्रकारके राजनैतिक विचार रखने वालोंको अपने-अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार भी प्राप्त हुआ। श्री विपिन चन्द्र पालके कथनानुसार १९१६ की काग्रेसने श्री वेसेन्टके नये जागृत राजनैतिक नेतृत्व को स्वीकार किया।[1] इस काग्रेसने तिलक, जिन्हे १९०७ मे काग्रेससे निकाल दिया गया था, का भी वड़े जोरोंसे स्वागत किया। तिलकने इस काग्रेसमे 'स्वायत्त शासन' की मागका प्रमुख प्रस्ताव पेश किया था।

इसी समय लखनऊमे अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी वैठक भी हुई और उन्होने भी तिलककी तरह 'स्वायत्त शासन' की मांग का प्रस्ताव पास किया।

लखनऊमे, हिन्दू मुसलमानोंके वीच इस समय आपसी अनैक्यको दूर करनेका सौदा भी कर लिया गया। इस सौदेके अनुसार मुसलमानोने 'स्वराज' के ध्येयको स्वीकार किया और हिन्दुओंने 'साम्प्रदायिक निर्वाचन' (communal Electorates) की माग स्वीकार की। हिन्दू-मुस्लिमके वीच का यह जातीय सौदा या सन्धि 'लखनऊ पैक्ट' के नामसे प्रसिद्ध है।

इसी समय महायुद्धके छिडनेपर लार्ड हार्डिञ्जकी सरकारने भारतको ससारके राष्ट्रोंमे वरावरी और समानताका पद दिलाने

1 Mrs Besant, a psychological Study. Madras, 1917, p 201

का वायदा देकर भारतीयोंको यूरोपीय युद्धमे सहायता देनेके लिये फुसलाया और वहकाया। भारतके लोगोने इस वायदेका विश्वास किया और हर प्रकारसे इंगलैंडकी मदद करनेको तैयार होगये। भारतको सचमुच यह आशा हो चली थी कि उसे इसवार अवश्य ही ऊँचे दर्जेके राजनैतिक सुधार प्राप्त होगे। किन्तु युद्ध चलता गया और अन्त तक सुधार होते न दिखलाई दिये। फलतः भारतके राजनैतिक दल फिरसे अशान्त होने लगे[1]।

भारतकी नौकरशाही, भारतीय आकांक्षाके प्रति उदासीन थी। अतः उनका अनियन्त्रित शासन भारतके असन्तोषको बढाताही चला गया। सन् १९१४ मे टर्कीसे युद्ध छिड़ने और कुत (अप्रैल २९, १९१५) के शत्रुओंके हाथमे पडने पर, इंगलैंडको भी इस नौकर-शाहीकी अनियन्त्रितता और अयोग्यताका पता लग गया। टर्की के युद्धका पूरा सचालन भारतीय सरकारके जिम्मे था। किन्तु जिस प्रकार युद्धका सचालन किया गया उससे भारतकी नौकर-शाहीकी अयोग्यता पूरी तरहसे साबित हो गई। भारतीय नौकरशाहीकी इस अयोग्यताका प्रमुख कारण १९१७ मे पार्लिया-मेन्ट्री मेसोपोटामिया कमीशनकी रिपोर्टमे भारतीय नौकरशाहीका जन-मतका विरोधी होना बतलाया गया, और इस बात पर जोर दिया गया कि "भारतीयोको नागरिकताके पूरे अधिकारोके साथ अपने मुल्कके शासनमे हाथ वटाने और नौकरशाहीको नियन्त्रण मे रखनेके लिये भरपूर अधिकार दिये जाने चाहिये"[2]।

इस रिपोर्टके फलसे १९१७ मे सर आस्टिन चेम्बरलेन

1. Renascent India, p, 189.
2 Ibid; p 122

भारत-मंत्रीके पदसे हटा दिये गये और उनकी जगह माटेग्यू भारत-मंत्री वनाये गये।

मंत्री पदपर आकर माटेग्यूने २० अगस्त सन् १९१७ को पार्लियामेन्टमे भारतके प्रति सरकारकी नई नीतिकी घोपणा करते हुये प्रकट किया कि सरकारकी इच्छा भारतको 'जिम्मेदार शासन' देनेकी है, और इसके लिये इगलैड कोई प्रयत्न वाकी न रखेगा। इस घोपणाको सुनकर भारतको फिर उम्मीद वंधी और सुलगता हुआ असतोप शात पड़ गया।

'जिम्मेदार शासन' की योजना सफल वनानेके लिये कुछ सुधारोंको देनेका निर्णय कर माटेग्यू स्वय भारत आये और नवम्वर सन् १९१७ से १९१८ की मई तक यहाँका दौरा करते रहे। यहाँ आने पर नये सेक्रेट्रीको मालूम हुआ कि वाइस-राय चेम्सफोर्डसे लेकर निम्न अगरेज पदाधिकारी तक एक भी अगरेज ऐसा नहीं जो भारत को किसी प्रकारके सुधार देनेके पक्षमे हो।

माटेग्यूके आनेके कुछ समय पहिले होमरुल लीगके नेतृ श्री वेसेन्ट भी जेलसे रिहा कर दी गई थीं। अतः १९१७ की कलकत्ता काग्रेसकी वे ही सभानेत्री चुनी गई थीं। वेसेन्ट और तिलकने अवसर देखकर यहाँ आये हुये भारतमत्री माटेग्यूको काग्रेसमे आनेके लिये निमन्त्रण दिया। माटेग्यू वहुत तत्परतासे काग्रेसमे शामिल होनेके लिये तैयार थे, किन्तु नौकरशाहीने उन्हें ऐसा न करने दिया[1]। आखिर वेसेन्टने माटेग्यूसे सुधारोंके वारेमे स्वय मिलकर काग्रेसकी ओर से स्पष्टतया यह जतला दिया कि सुधारोंकी कोई योजना तभी मान्य होगी

1. An Indian Diary, p 122

जब भारतको 'होमरूल' और 'आर्थिक' अधिकार देना स्वीकार किया जायगा। माटेग्यूने 'होमरूल' के ध्येयको तो स्वीकार कर लिया, किन्तु आर्थिक अधिकार देने को तैयार नहीं हुए। काग्रेसका गर्म दल इससे असन्तुष्ट हो उठा, लेकिन नर्म-दल माटेग्यूकी सुधार योजनाको ठीक समझते हुये १९१७ की कलकत्ता कांग्रेससे अलग हो गया। फलतः १९१७ मे कांग्रेस पर, गर्म-दल या वामपक्षका जिससे ९ वर्ष पहिले वे निकाल दिये गये थे, नर्मदलसे बिना किसी संघर्षके पूरा अधिकार हो गया। इस प्रकार १९१७ का साल काग्रेसमे बामपक्षकी विजयके साथ खतम हुआ।

इसी बीच माटेग्यूने भी अपनी रिपोर्ट पूरी की और चेम्सफोर्ड तथा अपने दस्तखतोके साथ उसे लेकर इगलैड चला गया। जुलाई १९१८ मे यह माटेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट पार्लियामेट मे पेश की गई। रिपोर्ट मे निम्न सुधारोको दिये जानेकी सिफारिश की गई थी—

(१) स्थानीय सभाओं (local bodies) पर जनताका अधिकार रहे, (२) प्रान्तीय सभाओमे जिम्मेदारी बरती जाय, (३) केन्द्रीय सरकारपर असर डालनेके लिये साधन बढाये जाय, (४) भारतीय सरकारपरसे पार्लियामेट और भारत-मत्रीका अधिकार हल्का कर दिया जाय आदि।

इस रिपोर्टके प्रकाशित होते ही कांग्रेसके तत्कालीन नेताओं— बेसेन्ट और तिलकने उसका विरोध किया। तिलकने मुल्क को काग्रेस और लीगकी बनाई 'स्वराज' योजनापर टिके रहनेका निर्देश दिया। इसपर विचार करनेके लिए बम्बईमे तुरन्त कांग्रेसका विशेप अधिवेशन बुलानेका निश्चय भी कर लिया गया।

किन्तु दूसरी तरफ नर्म-दल वाले माटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट द्वारा घोषित सुधार के प्रस्तावोंके इर्द-गिर्द एकत्रित होने लगे। अत उन लोगोंने वम्बईमे वुलाये गये काग्रेसके विशेप अधिवेशनमे भाग न लिया, वरन् वम्बईमे काग्रेसके विरुद्ध अपनी अलगसे एक कान्फ्रेन्स वुलाई और इडियन 'लिवरल फेडरेशन' नामसे एक नया सगठन कायम कर दिया।

फलतः १९१८ मे काग्रेसका राजनैतिक ऐक्य पुनः खतम हो चला। नर्मदल, जो महायुद्धके पूर्व काग्रेसमे एक शक्तिशाली दल था, युद्ध-कालमे कमजोर पड चुका था। इसलिये युद्धके अनन्तर जब उन्होंने अलगसे अपनी 'लिवरल फेडरेशन' नामसे एक नयी सस्था कायमकी तो नर्मदल अल्पमतमे हो गया।

काग्रेसकी जव ऐसी स्थिति थी और मत-भेदोमे पडकर भारतीय राजनैतिक दल एक दूसरेसे विलग होते जा रहे थे, महात्मा गाधीने भारतके राजनैतिक मचमे प्रवेश किया। उनके प्रवेशने काग्रेसमे एक नई स्फूर्ति, नया जीवन और नई चेतना पैदा कर दी। संक्षेपमे गाधीजीके कुशल आर नूतन नेतृत्वने काग्रेस-मे एक क्रातिकारी परिवर्तन ला दिया—और राष्ट्रकी विखरती हुई शक्तियॉ तथा टूटते हुए दल उनके शुभ प्रयत्नसे पुनः देशकी एक मात्र 'महासभा' काग्रेसमे आकर मिल गये। परिणामतः गाधीके नेतृत्वको पाकर काग्रेस भारतकी पूर्णतया एकमात्र राष्ट्रीय और राजनैतिक सस्था वन गई। अतः यह कहना उचित और मान्य होगा कि काग्रेसके इस परिवतन, परिवर्द्धन और क्रातिकारी विकासका इतिवृत्तिही महात्मा गाधीके जीवनका इतिहास है, जिसको आगे आने वाले अध्याय और स्पष्ट कर सकेंगे।

महात्मा गांधी का प्रारम्भिक जीवन

अध्याय ३

जन्म—

महात्मा गाधीका पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी है। उनका जन्म आश्विन वदी १२ सवत् १९२५ अर्थात् २ अक्तूबर १८६९ ईसवीको पोरवन्दर अथवा सुदामापुरीमे हुआ था। उनके पिताका नाम कबा गांधी था। कबा गांधीकी चार पत्नियाँ थीं। अन्तिम पत्नी पुतली बाईसे उनके एक कन्या और तीन पुत्र हुये—जिनमें सबसे छोटे हमारे महात्मा गाधी थे।

पिता-माता—

गाधी परिवार यद्यपि मूलतः काठियावाड़के पुरातन पंसारी या बनिया जातमें से है, किन्तु पुश्तोसे यह गाधी परिवार राज-नैतिक कार्यही करता रहा। महात्मा गाधीके दादा और पिता वर्षों तक पोरवन्दरके यहाँ दीवानपद पर रहे। उनके पिता लगभग २५ वर्षों तक पोरवन्दरके राणाके दीवान थे। पोर-वन्दरके अलावा राजकोट और काठियावाड़की अन्य रियासतोंमे भी कबागाधी या कर्मचन्द्र गाधीने दीवानगिरी की थी। कबा-गाधी अपनी न्याय-प्रियताके लिये वड़े प्रसिद्ध थे। दीवान होने पर भी उनमे वड़प्पनका उन्माद न था। राज्यके वे वड़े वफादार थे। एक वार पोलिटिकल एजेन्टके द्वारा राजकोटके महाराजका

राजकोट की पाठशाला में

[सन १८७७]

[पृष्ठ ६९]

अपमान किये जानेपर वे रोषसे तिलमिला उठे थे। स्वामीके अपमानको न सह सकनेसे उन्होंने खुलकर पोलिटिकल एजेन्ट का विरोध तक किया जिसके लिये उन्हे कुछ घटे हवालातमे भी रहना पड़ा था। एजेन्ट उनसे उनकी धृष्टताके लिये माफी मॅगवाना चाहता था। किन्तु कबागाधी सर झुकानेवालोंमे न थे। आखिर लाचार होकर ब्रिटिश एजेन्टको ही झुकना पड़ा और कबागाधी हवालातसे मुक्तकर दिये गये। [1] अन्याय और असत्यके सामने सर न झुकानेकी यह प्रवृत्ति उनके सबसे कनिष्ठ पुत्र-मोहनदास कर्मचन्द्र गाधीमे खूब खिली।

महात्मा गाधीकी माता बहुतही सती और साध्वी स्त्री थीं। वे पक्की हिन्दू नारी और धर्म कर्ममे रत रहने वाली थीं। वे बहुधा कठिन व्रत और उपवास किया करती थीं। धार्मिक होनेके साथ वे पूर्णतया व्यवहार कुशल भी थीं। राज दरबार की सभी बाते वे जानती थीं। वे अपने पत्नी और मातृपदके कर्त्तव्योंको बहुत निष्ठाके साथ किया करती थीं। वे हमेशा इस ओर प्रयत्नशील रहतीं कि उनके लडके लडकी सत्चरित्र और नेक हों। निःसन्देह माताकी यह कामना पूरी होकर रही। उनके कनिष्ठ पुत्र मोहनदास कर्मचन्द गाधीके दिलपर उनकी साधुता, स्वच्छता और धार्मिकताकी ऐसी छाप पडी, जिसने कालान्तरमे उनके इस कनिष्ठ लडकेको 'महात्मा'के पदको पहुचा दिया।

शिक्षा—

मोहनदास गाधीका बचपन पोरबन्दरमे ही बीता। शिक्षा के

---

१ आत्मकथा, अनु हरिभाऊ उपाध्याय, भाग १, अध्याय १. पृष्ठ ४।

लिये पहिले उन्हें पोरबन्दरके एक पाठशालामे भर्ती किया गया। किन्तु कुछही समय बाद पिताके राजकोट चले आने पर वे भी राजकोट चले आये और वहाँकी एक पाठशालामे भर्तीकर दिये गये। मोहनदास गांधी तब ७ वर्षके थे। कुछ वर्ष पाठशालामे रहनेके उपरान्त उन्हें १२ वर्षकी अवस्थामे हाईस्कूलमे रख दिया गया। किन्तु उनका स्कूलका जीवन विशेष प्रतिभाशाली न रहा। वे उस समय इतने झेपू थे कि स्कूलके दूसरे लड़कोंसे सकोचवश मिलना तक पसन्द न करते थे। लेकिन उनके चरित्रमे जो सत्यानुराग आज सबको विमोहित और स्तम्भित किये हुए है, तबभी मौजूद था। दूसरे लड़कोकी नकल करके अपनी गलती सुधारना या दूसरेके कन्धेको पकडकर ऊपर उठना वे कभी पसन्द न कर सके।

बालक मोहनदासके सत्यानुरागको बढानेमे हरिश्चन्द्र नाटक ने बहुत काम किया। इस नाटकको देखनेपर बालक मोहनदास इतने प्रभावित हुए कि उन्हें रातदिन हरिश्चन्द्रके ही सपने आने लगे। वे सोचा करते "हरिश्चन्द्रकी तरह सत्यवादी सब क्यो न हों ?" उनकी सत्यपर अब दृढनिष्ठा और भक्ति हो चली और यह धारणा पक्की हो गई कि 'हरिश्चन्द्रके जैसी विपत्तियाँ भोगना और सत्यका पालन करना ही सच्चा सत्य है।' तब से मोहनदास अपने आचरणका बहुत विचार रखने लगे। यदि उनके आचरणमे, सदाचारमे कभी कोई त्रुटि रह जाती या कोई भूल हो पड़ती तो वे रो तक पडते थे।

विवाह और इगलैंड यात्रा—

मोहनदासने मुश्किलसे १२ वर्ष पार किये थे और अभी हाई-

राजकोट के हाईस्कूल में

[सन् १८८३]

[पृष्ठ ७०]

स्कूलमे ही पढ रहे थे कि माता-पिताने उनका विवाह भी कर दिया। विवाह होनेके बाद सन् १८८७ मे उन्होंने मैट्रिक भी पास कर लिया। मैट्रिक पास करलेने पर मोहनदासको बैरिस्टरी पढने के खातिर इगलैड भेजनेकी तजवीज हुई। उनके इगलैड प्रवास मे माताने अडगा दिया। किन्तु आखिर जैन साधु बेचरजी स्वामीकी सलाहसे बालक मोहनदाससे तीन बातों—मास, मदिरा और स्त्री-सगसे दूर रहनेकी प्रतिज्ञा लेकर माँ ने उन्हे विलायत जानेकी इजाजत दे दी। मोहनदासने माँ को दिये इन तीन वचनो का, लन्दनके भोग और विलासके उन्मत्त वातावरणमे रहते हुए भी पूरी निष्ठाके साथ पालन किया। लन्दन युनीवर्सिटीकी मैट्रिक परीक्षा पास करलेने पर मोहनदासने 'इनर टेम्पल' मे कानूनकी पढाई शुरूकी, और १० जून १८९१ मे वहाँ की पढाई सफलतापूर्वक समाप्तकर बैरिष्टर हो गये। ११ तारीखको उन्होंने इगलैडके हाईकोर्टमे ढाई-शिलिग देकर अपना नामभी रजिस्टर करा लिया, लेकिन वहाँ ठहरे नहीं और १२ तारीखको ही हिन्दुस्तानके लिये रवाना होगये।

लन्दनमे कानूनका अध्ययन करनेसे मोहनदासको कोई आन्तरिक सतोष न मिल सका। लेकिन वहाँ रहते समय उन्होंने अपने तथा विदेशियोके धर्म ग्रन्थोंका जो अध्ययनकर पाया उसने उनके जीवनके प्रवाहकी दिशाही निश्चित कर डाली।

इगलैडमे थियोसोफिस्ट मित्रोकी प्रेरणासे ही गांधीजीने प्रथमबार 'गीता' को पढा। इससे पूर्व गांधीजीके दिलमे पादरी लोगोंके प्रचारसे यह विचार घर किये हुए था कि हिन्दू धर्म केवल अन्धविश्वासोंका एक गढ है, लेकिन गीताके अनुशीलन

ने उनकी इस धारणाको मानो टूक--टूक कर डाला। गीता के उद्‌बोधन से गाधी अपने धर्मके प्रति जागरूक हो उठे। इसी समय उन्हें ऐडविन ऐरनार्ड द्वारा अनूदित बुद्धचरित और 'न्यू टेस्टामेन्ट' को भी पढनेका अवसर मिला। इन तीनोंका गांधी-जी पर बड़ा गहरा असर पड़ा। गीता, बुद्ध और ईसाके वचनोंने उन्हे निष्काम कर्म और त्यागकी भावनाओंसे उद्‌बुद्ध कर डाला। गांधीको प्रतीत हो गया और उनके दिलमे यह बात बिलकुल समा गई कि 'त्याग मे ही धर्म है'। यही कारण है कि उनके आगेके जीवनमे हमे सर्वत्र यही त्याग और कर्म की निर्मल और उज्वल धारा अविरल और अबाध गतिसे बहती हुई दिखलाई देती है।

लन्दन में—कानून के छात्र

[सन् १८९०]

[पृष्ठ ७२]

अफ्रीकामें

अध्याय ४

भारत आगमन—

विलायतसे १८९१ की जुलाईमे मोहनदास गाधी वम्बई पहुचे! भारत पहुचते ही उन्हे अपनी माताके निधनका दुःखद समाचार मिला। इस कुसमाचारसे उनके कोमल हृदयको बहुत व्याघात सा लगा।

इस दुःखके शान्त होने पर गाधीजीने जीवनके क्षेत्रमे प्रवेश करनेके लिए वम्बई और काठियावाडके हाईकोर्टोंमे वकालतका काम करना तय किया। किन्तु इस पेशेसे वे कोई विशेष आमदनी नहीं कर सके। झूठका वे सहारा नहीं लेना चाहते थे और विना झूठके वकालत जोरोंसे चल नहीं सकती थी। फलतः व्यावहारिक रूपसे कुछ समय तक वे अपनी वकालतके धन्धेमें सफल न हो सके।

इसी बीच भाग्यवशात् गाधीजीको दक्षिण अफ्रीका जानेका निमत्रण मिला। काम था, दक्षिण अफ्रीकामे व्यापार करनेवाले एक काठियावाडी मुसलमान व्यापारीके मुकदमे की पैरवी करना! गाधीजीने इस निमंत्रणको सहसा स्वीकार किया, क्योंकि उस समय उनकी स्व-इच्छा भी नई दुनिया देखने और नये अनुभव करनेकी हो रही थी। माताजीके स्वर्गवास होनेसे

भी इनका मन उचटा हुआ था और इसलिये वे जैसे-तैसे हिन्दुस्तानको छोड़ना चाह ही रहे थे। फलतः मुकदमेका काम लेकर १८९३ मे गांधी पहली बार अफ्रीका पहुचे।

नया अनुभव—

अफ्रीका जाते समय गाधीजीकी इच्छा मुकदमेके समयसे अधिक वहाँ रहनेकी न थी। किन्तु अफ्रीका पहुचने पर भारतीयोकी वहा जो दुर्दशा उन्हें देखनेको मिली, उसने उन्हे अनिश्चित काल तक वहाँ रहने और उन कठिनाइयोमे हिस्सा बँटानेके लिए वाध्य कर दिया। नेटालमे उन्होने अनुभव किया कि वहाँके गोरे उन्हे एक अछूतके जैसा समझते है। गोरोके प्रत्येक वर्ताव उन्हे विस्मयकारी मालूम दिये। डरवनकी अदालतमे प्रवेश करने पर वहाँके मजिस्ट्रेटने जब धृष्टता पूर्वक गाधीजीको पगडी उतारनेको कहा, तो वे अभिमानसे कॉप उठे और अदालत छोड़कर बाहर निकल आये। उन्हे आश्चर्य हो रहा था कि भारतीयों और भारतीय आचार-विचारोंके गोरे क्यो इतने विरोधी है। अतः मजिस्ट्रेटके अनैतिक व्यवहारका उन्होंने अखबारोंमे भी विरोध किया।

इस प्रकार गोरोके विरोधमे खड़े होनेवाले गांधी पहले भारतीय थे। उनके इस साहस ने तीन ही चार दिनमे दक्षिण अफ्रीकामे उनकी ख्याति फैला दी। इसी समय एक और ऐसी घटना हो पडी जिसने गाधीजीके आन्तरिक विप्लवको उभाडकर आध्यात्मिक विरोधका मार्ग इंगित किया। गाधी डरवनसे प्रिटोरिया जा रहे थे। रेलका सफर था और वे पहले दर्जेमे बैठे हुए थे। लेकिन मेरित्सवर्ग पहुचने पर रेलवे कर्मचारियो

ने उन्हें पहले दर्जेसे निकल जानेको कहा क्योंकि वे भारतके निवासी और काले थे। पर सरल और विद्वेषहीन गांधी समझ न सके कि पहले दर्जेका टिकट होते हुए किस तरह उनके बैठने पर आक्षेप किया जा रहा है? उन्हें इसमें सरासर अनीति मालूम दी। अतः उन्होंने इस अनीतिके सामने झुकना अस्वीकार कर उतरनेसे इनकार कर दिया, किन्तु रेलवेके अफसरने सिपाहियोंकी मददसे उन्हें बाहर निकालकर ही चैन लिया।

इसी तरह ट्रान्सवाल पहुंचने पर जब गांधीजीने घोड़ा गाड़ी की यात्रा शुरू की तो वहाँ भी उन्हें हिन्दुस्तानी होनेके कारण अपमान सहना पड़ा। उन्हें कुली समझकर गाड़ीमें पहले तो हांकनेवालेके पास जगह दी गई, और बादमें जब गाड़ी पार्दीकोप पहुंची तो एक गोरे अधिकारीने गांधीजीको उस जगहसे भी हटकर अपने पैरोंके पास बैठनेको कहा। अपमानकी यह हद थी। गांधी इस भारी अपमानको न सह सके और उन्होंने अपनी जगह छोड़नेसे कतई इनकार कर दिया। अभिमानी गोरा किसी भारतीयकी अवज्ञाको कैसे सह सकता था। अतः उसने लातों और हाथोंसे गांधीजीको पीटना शुरू कर दिया, और यदि गाड़ी के दूसरे मुसाफिर बीच-बचाव न करते तो गोरा उस दिन गांधीजीको गाड़ीसे गिराकर ही चैन लेता।

इस प्रकार रंग-द्वेषके फलस्वरूप मार्गमें अनेक कष्ट उठानेके बाद गांधीजी प्रिटोरिया पहुंचे। गोरोंके इन आघातों और अनीतियों से उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा। उन्हें प्रत्यक्ष हो गया कि गोरे रंग-द्वेषके कारण भारतियोंको दक्षिण अफ्रीकामें कैसे-कैसे कष्ट

उठाने पड़ते है। तो क्या इसका कोई प्रतिकार नहीं हो सकता? यह विचार आते ही गाधीने निश्चय कर लिया कि चाहे जो भी कष्ट और दुःख सहने पडे, वे अवश्य इन अन्यायों और अनीतियोंका विरोध करेंगे।

प्रिटेरियामे—

प्रिटोरियामे पहुचने पर गांधीजीको और नये अनुभव हुए। सरल-गाधी उस समय गोरी जातियोके रंग-द्वेषसे बिलकुल अपरिचित थे। इसलिये अफ्रीकामें रंग-द्वेषके अपमान-जनक अनुभवोने प्रारम्भमे उन्हें इतना परेशान किया कि यदि भारतीयोंके साथ उनका सम्बन्ध न हो गया होता और काले-वर्ण वालोंके प्रति होने वाले इन अन्यायोंका विरोध करनेकी उनमे भावना जागृत न हुई होती तो वे फौरन ही अफ्रीकासे उल्टे पांव घर लौट आते।

परन्तु जिन भावनाओंने उन्हें लौटनेसे रोका, उन्होंने उनमे आत्म-संयम और विनम्रता भी पैदा कर दी। गोरोंके होटलोंमे स्थान न मिलनेसे अब उन्हे कोई खेद न था। उनका आत्म-संयम इतना बढ गया था कि गोरे सतरी द्वारा फुटपाथ पर पीटे और लातों से ठुकराये जानेपर भी उनमे प्रतिहिसाका भाव न पैदा हुआ। यह घटना प्रेसीडेन्ट क्रूगरके मकानके पास ही हुई थी। गाधीके एक यूरोपियन मित्रने उन्हे उस दुष्ट संतरीपर मुकदमा चलानेकी सलाह भी दी थी, पर अहिंसाकी प्रतिमूर्ति गाधीने 'प्रतिहिसा' से काम लेना स्वीकार न किया। अपनी जातिपर होनेवाले इन

अपमानोको सहना वे सीख चुके थे। वे समझ गये थे कि यह अनीति जाति मूलक है, इसलिये समष्टि रुपसे ही उसका विरोध किया जा सकता है। उन्हे अब हरदम यही चिन्ता सताने लगी कि गोरोंके रग-द्वेपसे भारतीय मान और प्रतिष्ठाकी कैसे रक्षा की जाय, और कौनसा उपाय काममे लाया जाय, जिससे भारतीयोंकी हीनावस्थाको वदला-जा सके।[1]

धर्मोका अध्ययन—

प्रिटोरियामे रहते गाधीजीको विभिन्न धर्मोके अध्ययनका भी मौका मिला। उन्हे मालूम हो गया कि प्रत्येक धर्ममे कुछ-न-कुछ अच्छा जरूर है। उनके इस अनुभवने उन्हें प्रत्येक धर्मके प्रति श्रद्धालु वना दिया। यही कारण हैं कि हिन्दूधर्मके परमभक्त और अनुयायी होते हुए भी वे दूसरे धर्मोके प्रति समादर-भाव रखते हैं। राम और कृष्णकी तरह ईसा और मुहम्मद भी उनके लिये समान श्रद्धा और आदरके पात्र हैं।.

उनकी इस सम-दृष्टिने ही गाधीको विश्व-वन्धुत्वकी भी प्रेरणा दी हे। टॉलस्टायकी 'गोस्पल इन व्रीफ' और 'हाट टु डू' पुस्तकोंके अध्ययन ने उनकी विश्व-वन्धुत्वकी भावनाको और भी प्रज्वलित किया। फलतः वे उत्तरोत्तर विश्व-प्रेमके पुजारी वनते चले गये। विश्व-प्रेम और आत्म-निरीक्षणके भावोंने उनके आगत जीवनका मार्ग भी निर्दिष्ट कर डाला। आत्म-निरीक्षण द्वारा गाधीको यह मालूम हुआ कि सही और सच्चा धर्म तथा ईश्वरकी पूजा या उपासना प्राणिमात्रकी सेवामे सन्नि-

---

१ आत्मकथा, भा २. पृ, १४५–१४६

हित है। फलतः उन्होंने जीव-मात्रकी सेवा को अपने जीवनका एकमात्र लक्ष और ध्येय निर्धारित कर लिया। इस सेवा-धर्मके द्वारा गाधी आत्म-दर्शन करने एवं ईश्वरको प्राप्त करने का विश्वास भी रखते थे।[1]

भारतीय सम्पर्क और मडलकी स्थापना—

सेवा-धर्मके बोधित्वको प्राप्त कर गाधीजीको अब कुछ सोचने-विचारनेको न रह गया। उनका जीवन पीड़ितों के उद्धारके लिये है यह वे तयकर ही चुके थे। वे यह भी कटु अनुभव कर चुके थे कि गोरे-वर्णके लोग अपने रग-द्वेप और हुकूमतके मोहमे फंसकर अफ्रीकामे रहने वाले भारतीयोके साथ किस प्रकार जघन्यता और अनीतिका व्यवहार कर रहे है। भारतके अलावा एशियाकी अन्य काली जातियोंके प्रति भी गाधीजीने यूरोपियनोंको इसी प्रकार दुर्व्यवहार करते पाया। वे इस अनीतिसे उत्तेजित हो उठे और उसका मुकावला करनेकी सोचने लगे। किन्तु गांधीजी एक प्राकृत द्रष्टा और वास्तविकताको समझकर चलनेवाले सुधारक है। अतः उन्होंने निश्चय किया कि यदि मानवता परसे गोरे अभिशापको दूर करना है तो उन्हे पहिले यह कार्य भारतवासियोंसे प्रारम्भ करना चाहिये, क्योकि भारतीय होनेके नाते भारतकी सेवा उन्हे सहज प्राप्त थी और उसमे उनकी रुचि भी थी।[2]

---

१ आत्म कथा, भा २ पृष्ठ १७५

२—वही भा २ पृष्ठ १७५

महापुरुष जो कहते है उसे करके भी दिखलाते हैं। गांधीजी उन्हीं महापुरुषोंमे हैं। अत जबसे उन्होने भारतवासियोंकी सेवा करनेका निश्चय किया, वे तन-मन-धनसे उस ओर प्रवृत्त हो गये। उन्होंने प्रिटोरियामे भारतीयोंसे गाढा सम्बन्ध स्थापित किया और उनके सहयोगसे एक भारतीय मडल स्थापित करने की योजना बनाई। इस मडलमे बिना किसी भेद-भावके हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई सभी धर्मों और वर्णोंके भारतीय शामिल हो सकते थे। मडलको स्थापित करानेमे गांधीजी का ध्येय यह था कि सब भारतीय एक सूत्रमे बॅध जाय और सयुक्त रूपसे अधिकारियोंसे मिलकर, या प्रार्थना-पत्र आदि भेजकर अपने कष्टों और दुःखोंका इलाज किया करे। फलतः गांधीजीके प्रेरणासे मडल स्थापित हो गया और बहुत कुछ नियमित रूपसे उसका कार्य भी होने लगा। मडलके स्थापित होनेसे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंको परस्पर मिलने और विचार विनिमय करनेका एक साधन भी प्राप्त हो गया। अपने ध्येयके अनुसार मडलने अधिकारियोंके पास प्रार्थना पत्र ले जाकर अपने कष्टोंकी फरियाद करना भी शुरू कर दिया। गांधी इस मार्गके अगुवा और पथप्रदर्शक हुए। उन्होंने सरकारी अफसरोंसे मिलकर गोरे कानूनोंकी अनीति और ज्यादतियोंको उनके सामने रखा। इस दिशामे गांधीजीका पहिला कार्य भारतीयों को रेल-यात्रामे सुविधा दिलाना था। उन्होंने रेलवे अधिकारियो से लिखा-पढी की और उन्हे दिखाया कि उन्हींके कायदोंके अनुसार हिन्दुस्तानियोंकी यात्रामे रोक टोक नहीं हो सकती। इस लिखा-पढीके परिणामस्ने आखिर गोरे अधिकारियोंने यह मंजूर

किया कि साफ-सुथरे और अच्छे कपड़े पहनने वाले भारतवासियोंको ऊपर दर्जेके टिकट दिये जायेंगे।

इस प्रकार गाधीजीके हृदयमें अत्याचारो और अनीतियो का विरोध करने वाली जिन प्रवृत्तियोंका प्रथमतः प्रिटोरियामे उदय हुआ, वे आगे भी उत्तरोत्तर विकास करती चली गई। प्रिटोरियामे गाधीजीको भारतवासियोंकी आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थितिका प्रथमतः गहरा अध्ययन करनेका अवसर भी मिला जो आगे चलकर उनके वहुतही कामका साबित हुआ।

डरवन लौटना और वापिस आनेकी तैयारी—

प्रिटोरियामे अपना कार्य पूरा करके १८९३ के अन्तमे गाधीजी घर लौटनेके इरादेसे डरवन चले आये। किन्तु ईश्वर ने कुछ और ही सोचा था। डरवन आने पर उन्हे मालूम हुआ कि वहाँकी सरकार जल्दी ही 'इन्डियन-फ्रेंचाइज' नामका एक विल पास करने जा रही है, जिसके अनुसार नेटालकी धारा-सभाके सदस्योंको चुननेका जो अधिकार हिन्दुस्तानियोंका था छीन लिया जायगा। गाधीजीको यह समझते देर न लगी कि यह विल भारतीयोंके स्वाभिमान और अस्तित्वको मेट देनेके लिये ही वनाया जा रहा है। उनका हृदय इस अनीतिको देखकर विद्रोहसे तडप उठा और उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे भारतीयोंको सगठित कर इस अनीति पूर्ण विलका पूरी शक्तिके साथ विरोध करेगे। अत इस विद्रोहका नेतृत्व करनेके इरादेसे गांधीजीने कुछ समयके लिये अपना घर लौटना स्थगित कर

दिया। अतः आत्म-सम्मानकी रक्षा और न्यायके लिए सक्रिय संघर्ष करनेका यहाँसे गाधीजीके जीवनमे सूत्रपात होता है, और उनका यह सघर्ष आज तक जारी है और तब तक जारी ही रहेगा जब तक संसारसे अनीति और अत्याचार चाहे राज-नैतिक, धार्मिक या सामाजिक, दूर नहीं हो जाते। इन अनी-तियोंको वे पाप और असत्य तथा अमानवीय मानते है, और उनकी जगह सत्य, अहिंसा और प्रेमको स्थापित हुआ देखना चाहते हैं। उनके जीवनका ध्येय ही यह है और इसलिए अपने ध्येय तक पहुचे बिना गाधीको विश्राम कहाँ ?[1]

नेटाल इंडियन काग्रेस—

गाधीजीने अपने इरादेके अनुसार भारतीयोंको संगठित कर मताधिकार बिलके विरुद्ध सयुक्त आवाज उठाई और अफ्री-कन सरकारके पास उसके विरोधमे अर्जियाँ भिजवाई। राज-नैतिक कार्योंमे पडनेका उनके जीवनमे यह प्रथम अवसर था। निष्क्रिय तथा निश्चेष्ट अफ्रीकाके भारतीयोंके जीवनमें भी इस प्रकारकी हलचलका यह समारम्भ था। इस हलचलने वहाँके भारतीयोंके जीवनमे विकास और क्रियाशीलताके नये अकुर पैदा कर दिये। अफ्रीकाके भारतीयोंके जीवनमे एक नये प्रभातका मानो उदय हो चला था, और गांधी उस प्रभातकी अरुणिमाके बालरवि थे। जागृतिके इस नूतन प्रभातको देखकर गोरे और

[1] आज जब हम इन पक्तियों का प्रेस के लिए प्रूफ देख रहे हैं, गाधी जी हिन्दू-सिख और मुस्लिम एकता के लिए १३ ता० जनवरी १९४८ से अनशन कर रहे है।

उनकी सरकार भी स्तम्भित हो उठी। वे मानों जागृतिके उजालेसे चौंधिया उठे थे। साम्राज्यवादके उलूकका नव जागृतिके प्रकाश से चौंधियाना और चिढना अस्वाभाविक न था। वे सतर्क हो इस नवचेतना और नवज्योतिको निरखने लगे। वे सोचमे थे कि यह गाधी क्या करनेवाला है ?

दूसरी ओर गांधीजी भारतीयोंके आगे-आगे चेतनाकी मशाल लेकर बढ़े जारहे थे। उन्होंने मताधिकार बिलके विरोधमे बहुत बडी संख्यामे भारतीयोंके हस्ताक्षर लेकर अफ्रीकाकी सरकारके पास जोरदार अर्जियॉ और विरोध पत्र भिजवाये। अखबारोंमे भी गाधीजीने बिलके विरोधमे विरोधकी आवाजे गूजाई। लेकिन इतना सब करने पर भी अफ्रीकाकी सरकारने भारतीय जनमतकी उपेक्षा करके बिलको पास कर ही डाला! पर तब भी इस विरोधका नैतिक असर तो अवश्य हुआ। विरोधके साहसने भारतीयोको अपने अधिकारोंके प्रति सजग और सचेष्ट बना दिया तथा राष्ट्रके अधिकारो और सम्मानके लिए सम्मिलित होकर उन्हे खड़ा होना सिखला दिया।

बिल पास होगया तो क्या, विरोधको तो वह शात न कर सका था। बिलके पास हो जानेसे गाधीको क्षोभ था, किन्तु निराशा नही। वे जानते थे कि अन्याय भलेही कुछ समयके लिये कानून और तलवारका सहारा लेकर टिका रहे, लेकिन अन्ततः सत्यके विरोधमे उसे पदच्युत होनाही पड़ेगा। अतः बिलके पास होनेके बाद भी गाधीजीने अपने सघर्षको उसी उत्साह और साहसके साथ जारी रखा जिस उत्साह और साहसके साथ उसका प्रारम्भ किया था। उन्होंने अब भारतीयोको बहुत बड़ी

संख्या मे हस्ताक्षर लेकर एक ओर अर्जी नेटालके भारतीय उपनिवेशोंके मत्री लार्ड रिपनके पास भिजवानेकी सलाह दी। तदनुसार बड़े कठिन परिश्रमसे १०,००० हस्ताक्षर लेकर एक अर्जी रिपनको भी भिजवाई गई। इस अर्जीकी प्रतिलिपियाँ पत्र-पत्रिकाओं और भारतके जन-नेताओके पासभी भेजी गई। इस प्रकार गाधीजीके सुयोग्य और कुशल नेतृत्वके फलसे ससार भी दक्षिण अफ्रीकामे रहनेवाले भारतीयोंके दुःख दर्दोंसे परिचित होने लगा और मातृ-देश भारतको भी अपने प्रवासी बन्धुओंकी कष्ट-गाथाये सुननेको मिलने लगीं। परिणाम यह हुआ कि मातृ-देशके और दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय जो अब तक एक दूसरेसे बेखबर हो रहे थे, एकस्नेह सूत्रमे बँध गये। इस प्रकार गाधीजीने सारे जगत और मातृ-देशकी निगाहे दक्षिण अफ्रीकामे भारतीयों पर होने वाली अनीतियोंकी तरफ खींच ली।

गाधीजीने नेटालके भारतीयो की तरफसे जो अर्जी रिपनको भिजवाई थी, चारों तरफसे उसका खूब समर्थन हुआ। भारतके सभी पत्रों और विलायतके प्रभावशाली पत्र जैसे 'टाइम्स ऑफ इडिया' तथा 'लन्दन टाइम्स' ने भारतीयोके पक्ष का खूब समर्थन किया। फलत उक्त बिल अगरेजी पार्लियामेण्ट मे पास होनेसे रुक गया, लेकिन चालबाज ब्रिटिशशाहीने उसकी जगह एक ऐसा बिल पास कर दिया जिसके जरिये अफ्रीकाके गोरे साम्राज्य वादियोंका वह मतलब सिद्ध हो गया जो वे मताधिकार बिलके द्वारा हासिल करना चाहते थे। परिणामतः नेटालके भारतीय अपने अधिकारोंसे आखिरकार वञ्चित कर ही दिये गये।

किन्तु 'अधिकारोका 'योद्धा' और 'अन्यायका प्रतिरोधक' गांधी हार माननेको तैयार न था। उन्होने अब वहाँके भारतीयोंको अपने हको और अधिकारोके लिये लड़नेके वास्ते एक मजबूत सङ्गठन और सार्वजनिक सस्था कायम करनेकी राय दी! वहाँके भारतीयोंने इस सलाहका बड़े उत्साह और सम्मान के साथ स्वागत किया और गाधीजीके नेतृत्वमे मई १८९४ को 'नेटाल इंडियन काग्रेस' नामसे एक लोक-प्रिय सस्था स्थापित कर डाली।

इस कांग्रेसके मुख्य ध्येय निम्न थेः—नेटालमे जन्मे और रहनेवाले भारतीयोंकी सेवा करना, उन्हे शिक्षित करनेके लिये 'इंडियन एजुकेशनल ऐसोसिएशन कायम करना' और भारतीयोंके अधिकारोंके लिए आन्दोलन करते रहना! साथही नेटालके भारतीयों की वास्तविक स्थितिको भारत तथा इंगलैडके सामने प्रकाशमें लाना भी काग्रेसके कार्य-क्रमका एक प्रमुख अंग था! इस उद्देश्य को लेकर गांधीजीने स्वय भारतीयोंकी स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए 'दक्षिण अफ्रिकामे रहनेवाले प्रत्येक अग्रेजसे अपील' और 'भारतीय मताधिकार' नामसे दो पुस्तके लिखीं, जो नेटालके भारतीयोंके प्रति निःसन्देह बहुतसे उदार व्यक्तियों और दलोंको आकृष्ट करनेमे सफल हुईं!

नेटाल कांग्रेसका पहिला कार्य—

नवजात नेटाल काग्रेसने सबसे पहिले गिरमिटिया बिलके विरोधका कार्य हाथमे लिया। अफ्रीकाकी सरकार एक नया गिरमिटिया बिल पास कर भारतीय गिरमिटियों या मजदूरों

पर सालाना ३७५ रु० का कर लगाना चाह रही थी। लेकिन गाधीके नेतृत्वमे भारतीय नेटाल काग्रेसके विरोध करनेसे उनकी यह मशा अधूरी ही रह गई। भारतीय सरकारकी मध्यस्थतासे अफ्रीकाकी सरकारको प्रस्तावित ३७५ रु० का सालाना कर घटा के ४५ रु० कर देना पडा। किन्तु गाधीका न्यायी हृदय इस ४५ रु० के करको भी न सह सका। अन्याय छोटा हो या वड़ा, था तो वह अन्याय ही। अतः गाधी नित्य इसी सोचमे तल्लीन रहने लगे कि किस प्रकार इस ४५ रु० के अन्यायी करको भी दूर किया जाय?

अन्तमे गाधी इस निर्णय पर पहुचे कि इस अन्यायके विरुद्ध अहिंसक धर्म-युद्ध किया जाना चाहिये। उनके इस निर्णय का जागृत अफ्रीकाके भारतीयोंने पूर्ण रूपसे समर्थन और स्वागत किया। फलतः जव अहिसक सग्राम मे शामिल होनेके लिए गांधीजीने 'धर्म-घोप' किया तो लगभग १०,००० अफ्रीकाके भारतीय उनके पीछे हो लिये। इस अहिंसक सेना पर सरकारने भी अपनी तरफसे खूव सख्तिया वरतीं, जुर्म ढाहे, वल प्रयोग किया, किन्तु गाधीके सिपाही वढते रहे, वढते गये। परिणामतः गाधीके धर्म-युद्धके सामने आखिर अधर्मी गोरी अफ्रीकाकी सरकारको नत-मस्तक होकर उक्त अनीतिपूर्ण कर उठाने के लिए मजबूर होजाना पड़ा था। अधर्म पर यह धर्मकी विजय थी, असत्य पर यह सत्यकी विजय थी, और अहिंसाकी वह हिंसा पर विजय थी!

गाधीके शात और तेजस्वी नेतृत्वका ही यह सव प्रतिफल था। उनकी इस तेजस्विता और मन स्विताने अफ्रीकाके भारतीयों को मुग्ध कर डाला। उन्हे मालूम हो गया कि गाधी ही एक

मात्र उनका नेता, उनका गुरु और त्राणकर्ता है। वे गांधीसे चिमट गये। गांधी अब उन्हें छोडकर कही न जा सकते थे। फलतः उन्हे भारत लौटनेके इरादेको स्थगित कर अनिश्चित कालके लिए नेटालमें बसनेको राजी हो जाना पड़ा।

गाधीजीने परिस्थितियोमे पड़कर यह निश्चय किया था। अगर उन्हे पहलेसे इसका पता होता तो वे प्रारम्भमे ही सकुटुम्ब वहा आगये होते। किन्तु उन्हे तब मुकदमेसे अधिक किसी बात का पताही न था, और उसे पूरा कर उन्हे भारत ही लौट आना था। पर अब वहीं बसनेका निश्चय कर लेने पर उन्होने अपने कुटुम्बको भी भारतसे वहा ले आनेका निश्चय किया। इस बहाने थोड़े समयके लिए भारत आकर वे दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंके प्रश्न और समस्याओंको भी भारतीय जनता तथा कांग्रेसके सामने प्रकाशमे ला सकते थे। अतः इन दो उद्देश्यो को दृष्टिमे रखकर गाधीजी नेटालके भारतीयों की मंजूरी लेकर १८९६ को कलकत्ता जाने वाले पोगोला जहाजसे भारतके लिए रवाना हो गये।

कुछ समयके लिए भारत

(२)

गाधीजी अफ्रीकासे हिन्दुस्तान अपने कुटुम्बको ले जानेकी गरजसे ही न आये थे, किन्तु उनका यह भी अभिप्राय था कि यहाँ पहुचकर अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयो और उनपर होनेवाले गोरोंके अत्याचारोंका भेद स्वदेशवासियो पर प्रकट करेंगे, जिससे मातृ-देश अपने इन प्रवासमे पडे हुये दुःखी भाइयोंके प्रति जागरुक हो जांय और उन्हे आवश्यकतानुसार मदद पहुँचाने लगे। इसलिये गाधी अफ्रीकाके भारतीयोंके प्रश्नको भारतकी जनताके सामने पेश करनेके लिये उतवाले हो रहे थे। उनका यह विश्वास था कि अफ्रीकाके भारतीयोका प्रश्न भारतीय प्रश्न है, जिसे हल करनेमे भारतको ही सहयोग देना चाहिये। लेकिन चूँकि मातृ-देशके सामने ऐसा प्रश्न पहले कभी न आया था, इसलिये गाधीने पहले यह उचित समझा कि भारतको प्रवासियोंके बारे परिचित करा दिया जाय, ताकि वे उनकी समस्याओंके प्रति जागृत तो हो जॉय। उन्होंने खुद लिखा है कि अफ्रीकाके प्रश्नकी चर्चा करनेमे उनका विचार यह था कि उससे यहाँके लोगोमे "अधिक दिलचस्पी पैदा हो सकेगी"।[1]

---

१ आत्मकथा भा २ पृष्ठ १२३

अपने ध्येय और धुनके गांधी आरम्भसे ही महान् और पूर्ण रहे हैं। अतः हिन्दुस्तानमे वे पहुंचे भी नही कि प्रवासी भारतीयोंकी समस्याके प्रचारमें तत्परतासे संलग्न हो गये। कलकत्ते से बम्बई जाते समय रास्तेमे प्रयागसे ही उनका प्रचार कार्य शुरु हो गया। प्रयागमे वे वहॉ के 'पायोनियर पत्र'के सम्पादकसे मिले और उससे अफ्रीकाके प्रवासी भारतियोंके बारे 'पत्रमें चर्चा करनेका' आश्वासन मॉगा। गाधीजीको बड़ा सतोष हुआ, जब सपादकने खुशी-खुशी यह कार्य करना स्वीकार किया।

इसके बाद राजकोट पहुचने पर गाधीजीने खुद भी अफ्रीकाके भारतीयोंकी समस्याओं और स्थिति पर प्रकाश डालनेके लिए एक छोटीसी पुस्तिका लिखी जो 'हरी पुस्तिका'के नामसे प्रसिद्ध है। इस पुस्तिकामे नेटालके हिन्दुस्तानियोंके दुःखोंका मार्मिक ढगसे वर्णन किया गया था। इस पुस्तकका देशमें खूब प्रचार हुआ और अफ्रीकाके प्रश्न पर सभी अखबारोंमे चर्चाएँ होने लगीं।

अखबारी चर्चासे ही, लेकिन गांधीजी संतुष्ट न हुए। उन्होंने अब अफ्रीकाके प्रश्न पर लोकमत तैयार करनेके लिए शहरोंमे सभाएँ करनेका निश्चय किया। अतः वे पहले बबई जाकर रानाडे और फिरोजशाह मेहता से मिले, जो उस समय भारतके सर्वमान्य और प्रतिष्ठित नेता थे। फिरोजशाहकी मददसे गाधीजी बंबईमे सभा करनेमे सफलीकृत हुए और अफ्रीकाका प्रश्न भारतीयोंके दिल दिलमे गड गया—गाधी यही चाहते थे। सच्ची लगन और सच्ची चेष्टा क्यों न सफल होती ?

बंबईकी सफलताके बाद गांधीजी पूना गये। यहॉ भी वे गोखले, लोकमान्य तिलक और रामकृष्ण भंडारकर आदिसे अफ्रीकाका प्रश्न लेकर मिले। सौभाग्यसे यहॉ भी उनको

श्री भडारकर की अध्यक्षतामे सभा बुलानेमे आशातीत सफलता मिली।

पूनाके बाद गाधीजी मद्रास गये। मद्रासमे उन्हे बहुत अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ। वहाँकी सभासे मद्रास वालोंका हृदय अफ्रीकाके भारतीयोंके प्रति खूब आकर्पित हुआ। वहाँके दो प्रतिष्ठित अखबारों—'मद्रास स्टैंडर्ड' और 'हिन्दू'ने अफ्रीकाके प्रश्नको बडे उत्साह और सरगर्मीसे अपनाया।

मद्राससे फिर गाधीजी सभा करनेके अभिप्रायसे बंगाल पहुचे। किन्तु वहांके बगाली नेताओं और अखबारोसे गाधीजी को कोई विशेप सहयोग न प्राप्त हो सका। लेकिन इससे वे निराश न हुए। काम करनेवाला आदमियोंके बजाय 'कर्म'को प्रधानता देता है। वहाँके हिन्दुस्तानियोंसे कोई सहायता प्राप्त न होने पर भी वे हिम्मत बॉधे रहे, और बगालियोंका आसरा छोडकर अग्रेजों और अंग्रेजी अखबारो—'स्टेटस् मैन' तथा 'इग्लिश मैन'—से जाकर मिले। इनसे उन्हे काफी सहयोग प्राप्त हुआ, विशेप कर इग्लिश मैनके सपादक मि० सैण्डर्सने तो गाधीजीको अफ्रीकाके मामलेमे हर तरहसे सहयोग दिया। इस स्नेह पूर्ण सहयोगका उल्लेख करते हुए गांधीजीने लिखा है:—
"इग्लिश मैन"के मि० सैण्डर्सने मुझे अपनाया। उनका दफ्तर मेरे लिए खुला था उनका अखबार मेरे लिए खुला था यह भी कहूँ तो अत्युक्ति नहीं कि उनका मेरा खासा स्नेह हो गया।"
अतः इन लोगोकी सहायतासे गाधीजी को कलकत्तेमे भी सभा करनेमे कठिनाई न रह गयी, लेकिन इसी समय उन्हे डरबनसे तार मिला कि तुरंत लौट आओ। इस बुलावेके अनुसार कलकत्तेमे सभाका इरादा अधूरा ही छोडकर गाधीजी पुनः दूसरी

वार अपने बाल-बच्चों सहित दादा अब्दुल्लाके आग्रह पर उनके जहाज 'कुरलैण्ड'से दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गए। इसी समय दादा अब्दुल्लाका दूसरा जहाज 'नादरी'भी डरबनको रवाना हुआ। दोनों जहाजोंमे कुल मिलाकर ८०० यात्री थे, जिनमेंसे बहुतोंको ट्रान्सवाल जाना था।

गाधीजी का डरबन पहुँचना और गोरोंका उत्पात—

(१८९७-१८९८)

भारतमे गाधीजीने अफ्रीकाके भारतवासियोकी हीनावस्था-की जो चर्चा चलाई और उसके सम्बन्धमे जो प्रचार आदि किया, उससे अफ्रीकाके गोरे जल-भुन गये थे। भारतमे गाधीजी जिस समय प्रबलतासे प्रचार कर रहे थे, उसी समय उनकी 'हरी पुस्तिका' पर सबसे पहले 'पायोनियर' मे एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका साराश विलायत गया और फिर रूटरकी मार्फत नेटाल पहुचा। किन्तु यह सार बहुत रगा हुआ था। उसमे सच्चाईकी बू थी, पर वह पूर्ण रूपसे सही नही था। रूटरका भेजा हुआ तार इस प्रकार था :—"सितबर १४, भारतमे प्रकाशित एक पुस्तिकाका कथन है कि नेटालके भारतीयोंको लूटा और खसोटा जाता है, जानवरोंका सा उनसे बर्ताव किया जाता है, और कोई सुनवाई नही होती। 'टाइम्स आफ इण्डिया' इस बातकी जॉच किए जानेके पक्षमे है।"

स्वभावतः इस प्रकारका तार जब नेटाल पहुचा तो वहाके गोरे गाधीके प्रति खूँखार हो उठे। यद्यपि सही तौर पर गांधीजीने गोरोंके प्रति 'उपरोक्त प्रकार' से कोई दोषारोपण नहीं किये थे। वे गाधीजीके शब्द थे ही नही। गाधीजीके वक्तव्यको असलमे

रूटरने रंग चढाकर भेजा था। अतः उक्त वक्तव्यके कुप्रभावसे नेटालमे सर्वत्र गाधीजीके विरुद्ध गोरोकी सभाएँ होने लगी और उनपर तीक्ष्ण शब्दोमे यह आरोप लगाया गया कि हिन्दुस्तानमे उन्होंने नेटालके गोरोकी अनुचित निदा की है। डरवनकी एक सभामे भाषण देते हुए एक गोरे डाक्टरने यहाँ तक कहा कि "मिस्टर गाधीने, नेटालके गोरोपर भारतीयोसे अनुचित व्यवहार करनेका, गालियाँ देने, लूटने और धोखा देनेके (एक आवाज, एक कुलीको क्या धोखा दिया जा सकता है।) आरोप लगाए है। मिस्टर गाधीने हिन्दुस्तान जाकर उन्हे नालीमे ढकेला है, और उन्हे इतना काला और कुरूप चित्रित किया है, जितना कि उसकी खाल खुद है।" (करतल ध्वनि)[1]

इस प्रकारके प्रचारोसे गोरे पूरी गरमी पाकर उबल ही रहे थे, कि गाधीजीका जहाज डरबनके वदरमे आ लगा। उनके साथ दूसरा जहाज नादरी भी आया था। उनको पहुचा देख कर दक्षिण अफ्रीकाके गोरे और भी आगबबूला हो उठे।

गाधीजी और साथ आनेवाले जहाजके ८०० यात्रियोंके डरबनमे पहुचनेका समाचार सुनकर गोरोंने यह मनमाना अदाज लगाया कि गाधी दो जहाजोंमे बहुतसे भारतीयोंको नेटालमे बसानेके अभिप्रायसे भर लाया है। इस विचारसे उनके क्रोधका ठिकाना न रहा। गोरी सरकार भी गोरोका पक्ष ले रही थी। गोरे नहीं चाहते थे कि गाधी जैसा जागरूक व्यक्ति अफ्रीकाके सोये हुए भारतीयोंको जगानेके लिए और उनके मनमाने शासनमे अडगा पैदा करनेके लिए नेटालमे प्रवेश करे। अतः गोरोंने

1, M K Gandhi, An Indian patriot in south Africa, J J Doke P 43

मॉग की और उनकी सरकारने भी उसका समर्थन किया कि गांधी और जो दूसरे भारतीय डरबन पहुंचे है, वापिस चले जायँ, नहीं तो मार डाले जायेगे। किन्तु सत्य और न्यायकी मजबूत चट्टानपर दृढतासे पैर टिकाकर खड़ा हुआ गांधी गोरोंके इस पशुत्वसे घबराकर मुड़ चलनेके बजाय उसका सामना करनेको रौद्र हो उठा। उनकी निर्दोष और अकलुषित आत्मा इस अन्यायके बढावको कैसे सह सकती थी? गाधीजी निर्दोष थे, उन्होंने यूरोपियनोको न वह सब कहा था जो गोरे प्रचारित कर रहे थे, और न वे जहाजोमे लोगोंको नेटालमे बसानेके लिए भरके ही लाए थे। वे साथ आनेवाले दूसरे जहाज 'नादरी' के यात्रियोंसे परिचित तक न थे।

किन्तु रोप और रग-द्वेषसे अंधे हुए गोरोंको कुछ सूझता न था। वे तो तुले थे,—गाधी और उनके साथ पहुचनेवाले भारतीयोको वापिस लौटानेके लिए। अतः गोरोने धमकी देकर गाधीजी आदिको लानेवाले दोनो जहाजोको 'सूतक' के बहाने अनिश्चित समयके लिए 'क्वारटीन'मे रुकवा दिया, ताकि भारतीय तंग और परेशान होकर वापिस जानेको मजबूर हो जाय। परन्तु गाधी अन्यायसे कभी मजबूर न होनेवालोमे से थे—अन्यायसे मजबूर और लाचार हुए तो वह पुरुप ही कैसा? अतः खुद घबरानेके बजाय पौरुपसे पूर्ण गाधीने अपने साथी भारतीयोंके साहसको भी थाम कर रखा, और धमकियों तथा चेतावनियोकी परवाह न कर अपने हक पर अड़े और डटे पड़े रहे। उन्होंने स्पष्ट घोपित कर दिया कि हमे नेटालके बदरमें उतरने का हक प्राप्त है और हम अपने हकपर कायम रहेगे।[1]

---

१ आत्मकथा भा० २ २०९

आखिर अन्यायको न्यायके सामने झुकना ही पड़ा। सत्य को कुछ समयके लिए ढँका जा सकता है, लेकिन चिरकाल तक उसे दबा कर नहीं रखा जा सकता। फलतः गोरी सरकारको मजबूर होकर आखिर तेईस दिनोंके बाद भारतीयोंको उतरने देनेकी आज्ञा प्रेषित कर देनी पड़ी।

गोरे और भारतीयोंमें इस समय खूब कशमकश चल रही थी। गांधी हक पर अड़े थे, तो गोरे पशुबल और सरकारके अस्त्रों पर। चार जनवरीको भारतीयोंको नेटालमें उतरनेके विरोधमें गोरोंने डरबनके टाउनहालमें एक बड़ी भारी सभा भी बुलाई। इसमें लगभग २,००० आदमी शामिल हुए। इस गोरी सभाके दिमागका खाका उनके निम्न प्रस्तावोंमें पूरी तरह अंकित है —

(१) इस सभाकी रायमें अब ऐसा समय आ गया है कि किसी हिन्दुस्तानी या एशियाईको इस उपनिवेशमें उतरने नहीं देना चाहिए, और सरकारसे यह सभा प्रार्थना करती है कि उपनिवेशके खर्च पर उन भारतीयोंको वापिस कर दे जो कुरलण्ड और नादरीमें आए हुए हैं।

(२) इन प्रस्तावोंको सफल बनानेमें प्रत्येक आदमी सरकारकी हर प्रकारसे मदद करनेका पूरा वचन देता है। आदि।

ये प्रस्ताव और व्याख्यान प्रमुखतः गांधीके विरोध में थे, और सब गोरे इस विरोधको सफल बनानेके लिए 'पशुबल'का सहारा लेने को तयार बैठे थे। इन मानवताके विद्रोहियोंको सरकारका सहारा भी प्राप्त होता जा रहा था। श्री एस्कोम्ब (Mr Escombe) ने सरकारकी तरफसे विद्रोहियोंको यह दिलासा दे दिया था कि

वह हर प्रकारसे मामलेको आगे बढ़ायेगी। गोरोंने धमकियोंके असफल होने पर हमलेकी तैयारियों भी कर ली थी। अतः हमला करनेवाले व्यक्तियोंके जत्थे बना लिए गए थे और प्रत्येक जत्थेके 'कैप्टिन' भी नियुक्त कर दिए गये थे। गोरोंमे युद्धका सा उमंग छा रहा था। संक्षेप मे डरबन रंग-द्वेषसे इस समय पागल हो उठा था।[1]

गोरे मनमे यही समझ रहे थे कि उनके इस प्रकार अकड़नेसे घबड़ा कर गाधी और दूसरे भारतीय बिना उतरे ही पूँछ उठा-कर कायरतासे वापिस चले जायेगे। किन्तु उनकी धारणा निर्मूल साबित हुई। गाधी हकोंको नहीं छोड़ सकता, छूट जाने वाली शरीरकी चिन्ता उसे कहाँ?[२] गीताका अनुयायी कर्तव्य और कर्मको देखता है, आत्माके निर्देशोंको सुनता है और जीर्ण एव शीर्ण होकर मिट जानेवाले शरीरके मोहमे पडकर पुरुषार्थ को त्याग नहीं दिया करता।

---

1 An Indian patriot-J J Doke pp 33-45.

२ हिन्दू मुसलिम एकता के लिए १३ ता० जनवरी मे गाधीजीने जो अनशन किया था, वह १७ ता० को सर्वदली नेताओ के आश्वासन पर तोड दिया था। इस के बाद वे पुन हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रचार मे जुट गये। यह प्रचार-कार्य राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ जैसे साम्प्रदायिक सस्था के व्यक्तियो को अच्छा न लगा। फलत: गाधीजी को इस स्नेह प्रचार के लिये धमकियां दी गई। पर निष्कामकर्मी गाधी टस से मस न हुआ! अन्त मे ३० ता० जनवरी १९४८ की शामको सघ के एक सदस्य हत्यारे नाथुराम गोडसेने गोली दाग कर उनका अन्त कर डाला[2]

निर्भीक गांधी इस तूफानमें अटल होकर खडा रहा और अपने भारतीय भाइयोंको भी सहारा देता रहा। गांधीजी जानते थे कि उनके हकों पर अतिक्रमण करनेका प्रयत्न किया जा रहा है, किन्तु कानून वा न्याय उनके साथ है, और इसलिए कानूनके अनुसार उन्हें कोई उतरनेसे इनकार नहीं कर सकता। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वह न लौटेंगे, न अपने भाइयोंको ही लौटने देंगे। अतः गोरोंका पशुबल उन्हें डरानेमें हर प्रकारसे असमर्थ था।

भारतीयोंने गांधीजीके नेतृत्वमें स्पष्टतया नेटाल सरकार और गोरोंको यह जतला दिया कि वे वापिस न लौटेंगे, चाहे उन्हें विद्रोही गोरोंसे कैसा भी खतरा क्यों न उठाना पड़े। गांधीजीकी इस दृढताके सामने नेटाल सरकार कानूनन कुछ करनेमें असमर्थ थी, इसीलिए अतमें मजबूर होकर उसे झुकना पडा। परिणामतः २३ दिनोंके बाद १३ जनवरी १८९७ को सरकार द्वारा उतरने देनेकी आज्ञा प्रेषित कर दी गयी।[1]

गांधीजी गोरोंकी अमानुषिकताके शिकार—

किन्तु जब कुरलैण्ड और नादरीके बन्दरमें उतरनेकी आशा का समाचार गोरी जनताको विदित हुआ तो उनके क्रोधका समुद्रफेन उगलने लगा। १६ जनवरीको नेटाल 'एडवर्टाइजर'के अनुसार सारी गोरी-जनता ढोल पीटकर एकत्रित होने लगी, जिससे प्रतीत होता था कि यदि भारतीयोंने उतरनेका साहस किया तो बेचारोंकी बडी दुर्गति होगी। क्योंकि स्वार्थी और अहंकार गोरे भारतीयोंको किसी भी मूल्य पर उतरने न देना चाहते थे।

---

१ आत्मकथा भा० २ पृ० २०९

उपरोक्त पत्रिकाके अनुसार भारतीयोंके उतरनेके विरोधमें ३,३०० गोरी जनता 'अलेकजेन्ड्रिया स्क्वायर'मे इकट्ठी हुई और उसने निश्चय किया कि चाहे शक्तिसे काम लेना पड़े, पर भारतीयोंको उतरने न दिया जायगा। अतः मौकेपर हमला करनेके लिए बाकायदा कई टुकडियाँ बनाली गयी थीं। यह देखकर जहाजोंके कप्तान सोचने लगे कि न जाने ये विरोधी क्या करेंगे! दोनो जहाजोंमे से कुरलैण्डको प्रथम उतरनेको आज्ञा हुई थी। उसका कैप्टन मिलने (Milne) था। इस साहसी कैप्टनने अपने मुसाफिरोंको विरोधियोंसे बचानेका निश्चय कर, जहाज पर लाल चिन्हके सहित यूनियन जैक चढवा दिया और अपने जहाजके अन्य अफसरोंको हिदायत दी कि हमलावरोंको जहाजपर न चढने दे, लेकिन यदि वे उन्हें रोकनेमे असमर्थ हो जायँ तो यूनियन जैक उतार कर उनके सुपुर्द कर दे। मिलनेने सोचा था कि इस प्रकार आत्म-समर्पण कर देनेसे शायद कोई अंग्रेज या गोरा जहाजके यात्रियोंको तग न करेगा। विरोधियोंकी हलचल और रूखका जहाजके मालिक, भारतीय यात्री तथा गांधीजी गौरसे निरीक्षण करते जाते थे। किन्तु गोरी भीड जिसका भय हो रहा था, सहसा कुछ निर्धारित न कर सकनेसे स्वय तितर-वितर होकर अलेकजेंडर स्क्वायरकी तरफ चल दी और सब कुछ स्वतः ही शात हो गया। इसी बीच नेटाल सरकारके ऐटोरने जनरल मि० ऐस्कोम्बने आकर कुरलडके कैप्टन मिलनेको आश्वासन दिया कि उनके जहाजके यात्री-गण अपने आपको नेटाल सरकारके अधीन इसी प्रकार सुरक्षित समझे जैसे अपने निजी गाँवमे। यही आश्वासन मि० ऐस्कोम्बने 'नादरी'को भी दिया।

इसके बाद एस्कोम्बने यात्रियों पर हमला करनेकी इच्छासे एकत्रित भीड़को यह आश्वासन और विश्वास दिलाया कि भारतीयोंके मामलेको जल्दी ही पार्लियामेंटमें पेश कर दिया जायगा, इसलिये अब वे 'सम्राज्ञी'के नामपर वहाँसे हट जायँ। यह तरकीब कारगर हुई और विराट विरोधका फुकार भरा उफान शांत हो चला। इसके दो घंटे बाद भारतीय यात्री नावोंपर बैठकर थोड़ा-थोड़ा करके किनारे आ उतरे।[1]

गांधीजी पर गोरोंकी चोटें:—

भारतीय मुसाफिर तो उतरे, पर गांधीजीको तब भी न उतरने न दिया गया। मि० एस्कोम्बने जहाजके कप्तानको कहला भेजा था कि गांधी और उनके बाल बच्चोंको अन्य यात्रियोंके साथ उतरने न देकर शामको उतारा जाय। कारण यह दिया गया कि गोरे उनके खिलाफ बहुत उभरे हुए हैं, और उनके प्राणों पर तक संकट आ सकता है। गांधीजी मन मसोसकर इस सलाहके अनुसार काम करनेको तैयार हो गए। किन्तु थोड़े ही समयके पश्चात् जहाजके एजेन्टका वकील मि० लाटन जहाज पर आये और कप्तानसे बोले कि गांधीजीको वह अपनी जिम्मेदारी पर ले जा सकता है। कप्तानसे बातें करनेके पश्चात् मि० लाटनने गांधीजीको अपने साथ आम रास्तेसे पैदल चलनेकी राय दी, लेकिन उनके बीबी बच्चोंको गाड़ीसे निश्चित मुकाम पर सकुशल पहुंचवा दिया गया।

मि० लाटन की सलाह मानकर गांधीजी जहाजसे उतर

---

1 An Indian Patriot By J J Doke, pp 46-48

पड़े। किन्तु ज्योंही गाधीजी उतरे कि कुछ गोरोंके छोकरोंने उन्हें पहचान कर गाँधी-गाँधी चिल्लाना शुरू कर दिया। उनके चिल्लानेसे जल्दी ही एक खासी गोरोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी। भीड़ने गाँधजीको मि० काटनसे छुड़ा लिया, और उन्हें लातों और हाथोंसे इतना पीटा कि वे गश खाकर गिर पड़े। उनकी हालत गोरोंकी मारसे इतनी बुरी हो चली थी कि यदि ठीक मौके पर पुलिस सुपरिण्टेण्डेन्ट अलेक्जेण्डरकी पत्नी अकस्मात् घटनास्थल पर पहुँचकर अपने नारी-सुलभ स्नेहसे प्रेरित होकर उनकी सहायता न करती और गोरोंके प्रहारोंको रोकनेके लिए ढालकी तरह अपना छाता उनपर न उढा देतीं, तो वे उस रोज गोरी भीड़के भीषण प्रहारोंके पूरे शिकार हो गये होते।

सौभाग्यसे इसी बीच एक हिन्दुस्तानी भी गाँधीजी पर हमला हुआ देख, दौड़कर पुलिस थानेको पहुँचा और वहाँके अधिकारियोंको सूचित किया कि गोरोंकी भीड़ गाँधीजीकी जान से खेल रही है। यह सूचना पाते ही पुलिस सुपरिण्टेण्डेन्ट अले-क्जेन्डरने पुलिसकी एक टुकड़ी गाँधीजीकी रक्षाके लिए रवाना की जो मौकेसे घटनास्थल पर आ पहुँची। गाँधीजी तब पुलिस के साथ अपने इच्छित स्थानकी ओर चले। मार्गमें अलेक्जेडरने गाधीजीको पुलिस चौकीमें ही ठहर जानेकी सलाह दी, किन्तु उन्होंने भीड़से त्रस्त न होकर और यह विश्वास करके कि वे लोग शीघ्र अपनी पाशविकता पर खुद शर्माकर शात हो जायेंगे, रुकनेसे इनकार कर दिया। अतः वे पुलिसकी संरक्षतामें सीधे रुस्तमजीके यहाँ, जहाँ पर उनकी स्त्री और बाल बच्चे ठहरे हुए थे, चल दिये।

पारसी मित्र रुस्तमजी के घर यद्यपि गाधीजी विना किसी दुर्घटनाके जा पहुचे, किन्तु रात होते ही जैसा अँधेरा बढा, गोरों की अपार भीडने पहुचकर वेचारे रुस्तमजी के घरको वाहरसे घेर लिया और वुरी तरह हुल्लड मचाते हुए 'गाधी को हमारे हवाले कर दो'[1] की आवजे लगाने लगे। मामलेको तेजी पकडता देखकर सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्जेण्डर खुद वहाँ पहुचे और किसी तरह भीडकी उग्रताको दवाये रहे। उन्होंने गाधीजीको भी सलाह दी कि यदि वे अपने मित्रके मकान व जान-माल और अपने वाल-वच्चोंकी सुरक्षा चाहते हों तो उन्हें चाहिए कि छिपकर तथा भेप वदलकर रुस्तमजीके घरसे निकल जावें।

भेप वदलकर भाग निकले—

गांधीजीने स्थितिकी मजवूरीको समझकर अलेक्जेण्डरकी सलाह पर काम करना स्वीकार कर लिया और एक हिन्दुस्तानी सिपाहीके वेपमे दो जासूसोंके साथ घरसे निकलकर अपार भीडमेंसे गुजरते हुए वाहर चले गये। इस प्रकार किसी तरह वच वचाकर गाधीजीको लाचार हो आखिर उसी पुलिस थानेमे जाकर शरण लेनी पडी, जहाँ पर अलेक्जेण्डरने पहले ही उन्हे कुछ समयके लिये रुक जानेको कहा था। अव गाधीजीको इस थानेमे तवतक रुका ही रहना पडा जव तककि भीडका खतरा पूरी तरह शात न हो गया।

इधर, गाधीजीके पुलिस चौकीमे पहुचने तक अलेकजेण्डर किसी तरह विद्रोही भीडको कावूमे किये रहा, किन्तु जव उसे

1—आत्मकथा भाग ३ पृ. २११

विदित हो गया कि गाधी अब सकुशल थाने पहुच गये है, तो उसने विनोद करते हुए भीडसे कहा कि व्यर्थ क्यो यहाँ खड़े हो, क्योंकि तुम्हारा शिकार गाधीतो कभीका वहाँसे सटक चुका है। भीडने इस कथन पर विश्वास न किया और अपने प्रतिनिधियोंसे रुस्तमजीके घरकी तलाशी लिवाई, लेकिन जब निश्चित रूपसे मालूम होगया कि गांधीजीको सचमुच भगा दिया गया है, तो वे कुढते और बड़बड़ाते हुए अपने-अपने घरो को चल दिये। इस प्रकार अलेक्जेण्डरकी होशियारीसे आखिर यह खतराभी टल गया।

गाधीजीका क्षमादान—

सहिष्णुता और क्षमा भारतीय सस्कृतिके दो महान चिरकीर्ति स्तम्भ है। भारतके महापुरुषोने जान देकर भी कभी इन स्तम्भोंको गिरने नही दिया है। गाधीनेभी वही किया। उपरोक्त घटना और गोरी भीड़के पाशविक कृत्योंसे रुष्ट और क्षुब्ध होकर मि० चेम्बरलेनने इगलैंडसे नेटाल सरकारको तार दिया कि गाधीपर हमला करनेवालो पर मुकदमा चले और गाधीको इसाफ दिया जाय। अतः मि० ऐस्कोम्ब गाधीजीसे मिले आर कहा कि यदि वे आक्रमणकारियोंको इङ्गित करदे तो उनपर मुकदमा दायर कर दिया जायेगा। किंतु गाधीजीकी सहिष्णुता और क्षमाशीलताने मुक्त हृदयसे मुकदमा चलवानेसे इन्कार कर दिया।

गाधीजीका सत्यानुराग—

गाधीजी यह भली प्रकार समझते थे कि नेटालके गोरोंके इस अकाण्ड-ताडवका कारण उनकी गलत धारणा वा भूल है, जो उनमे स्वय सरकार और रूटरके गलत प्रचारसे पैदा हुई। निःसन्देह रूटर ओर नेटाल सरकारके कर्मचारियोनेही यह वात दक्षिण अफ्रिकामे फैलाई थी कि गाधीने हिन्दुस्तानमे 'गोरोकी भरपेट और वढा-चढाकर निन्दाकी है', जिसे सुन-सुनकरही गोरे इतने विगड उठे थे। अतः गाधी उन्हें निरपराध समझते थे, ओर उनका विश्वास था कि सही वात प्रकट हो जानेपर गोरे स्वय अपने किये पर पश्चात्ताप करने लगेगे। निःसन्देह गाधीको मानवकी सद्वृत्तियोंपर हमेशासे आस्था रही है और इसीलिये उनके जीवन और कर्मका ध्येय मानवका नही उसके दुष्कर्मोका विनाश रहा है। उनके 'हृदय परिवर्तन' के अलौकिक सिद्धातकाभी यही आधार ओर मूल है।

तूफान शान्त—गोरोका पश्चात्ताप—

गाधीजीका विचार सही निकला। गोरोंने जब गाधीजीकी हिन्दुस्तानमे प्रकाशित चीजोंको स्वय देखा-भाला तो उन्हे महसूस हुआ कि उनमे कोई खास बुरी वाते नहीं हैं, जिन्हे गाधी पेस्तर डरवनमे प्रकाशित न कर चुके हों। अतः सर्वत्र इस भावना ने जोर पकडना शुरू किया कि उन्हे गलत चीजे वतलाई और सुझाई गई थीं। गोरे अखवार 'नेटाल मरक्युरी' (Natal Mercury) ने, जो अवतक रोपसे प्रज्ज्वलित हो रहा था, एक वयानमे लिखा कि "गाधीजीने अपने और अपने मुल्ककी ओरसे, इछ

भी ऐसा नही किया है जिसका उन्हे हक न था। उनकी दृष्टिसे जिस सिद्धान्तको लेकर वे कामकर रहे है, वह बहुतही सगत और न्यायोचित है। वे अपने स्वत्वों और अधिकारों पर स्थित है, अतः जबतक वे ईमानदारी और सच्चे तरीकेसे काम करते जाते हैं, उन्हे दोष नहीं लगाया जा सकता, न उनके कार्योमे हस्तक्षेपही किया जा सकता है। जहाँ तक हमे मालूम है, उन्होंने हमेशा ऐसाही किया है। अपनी हरी पुस्तिकामेभी सच्चाईके नाते हमे कहना पड़ेगा कि गांधीने अपने दृष्टिकोणके अनुसार भारतीय मामलेको अवैध रीतिसे नहीं पेश किया है। रूटरका तार गांधीजीके कथनोका रंगा हुआ सस्करण है। पुस्तिकामे केवल कई एक दुःखों वा कष्टोंको गिना दिया-गया है, लेकिन इससे कोई सही तौरसे यह नही कह सकता कि उनकी पुस्तक यह घोषित करती है कि नेटालके भारतीयोंको लूटा और आक्रान्त किया जाता है, या जानवरोंका जैसा उनसे वर्ताव किया जाता है, और उन्हें इन्साफ नहीं मिल पाता" [1]

गाधीकी सहिष्णुता, क्षमा और सत्य-निष्ठानेही गोरोंके मनोभावोंमे यह परिवर्तन उत्पन्न किया था। उन्होंने पहलेही कह दिया था कि "जब लोग अपनी भूल समझ लेगे तब शान्त हो जायेगे। मुझे उनकी न्याय बुद्धिपर विश्वास है।" [2] नि सन्देह गाधीके इस 'विश्वास' ने जल्दीही सफलताके केसरी रंगसे सबके हृदयोको रजित कर दिया। गोरोंकी गर्दनें झुकीं, गांधीका मस्तक ऊँचा उठा। गांधीकी क्षमाने रंग-द्वेषसे रगे

1—An Indian Patriot in South Africa J.J Doke,p 50

२—आत्मकथा भाग ३, पृष्ठ २११,

गोरे हृदयोंके मालिन्यको मानो पोंछ डाला था। परिणामतः गाधीकी प्रतिष्ठा वढी और गोरे हुल्लड़वाजोंको दुनियामे 'वुरा-भला' सुननेको मिला। गाधीजीकी प्रतिष्ठा वढनेके अलावा सवसे सुन्दर परिणाम तो यह हुआ कि उनके कार्यके लिए अव आगेका रास्ता विल्कुल साफ और सुगम हो चला।[1] सत्यपर विश्वास करनेके इस अनुभवसे गाधीजीको यह भी मालूम होगया कि सत्यपर किया गया आग्रह अवश्य सफल होता है। यही अनुभूति थी जिसने प्रथमतः २८ वा २९ वर्षके युवक गाधीके हृदयमे दुनियाको स्तम्भित और साम्राज्यशाहीको चकित तथा पराजित करनेवाले 'सत्याग्रह' के उस अकुरको पैदा किया, जिसे उन्होंने दमनको दवानेका अंकुश वनाया!

---

१ —आत्मकथा भाग ३, पृष्ठ २१५

जीवनमें नई कोपलें

(१८९७-१८९८)

अध्याय ५

सार्वजनिक कार्य—

गोरों वाली घटनाके शान्त हो जाने पर गाधीजी ३-४ दिनमे घर जाकर अपने काम-काज पर लग गये। उपरोक्त घटनाको शान्ति पूर्वक सहने और क्षमाभाव दिखानेसे उनके प्रभावके वढनेके साथ उनकी वकालत भी चमक उठी थी। किन्तु गाधीजी अपने व्यक्तिगत फायदेकी ओर कव झुकनेवाले थे ? अतः उनका अधिक समय सार्वजनिक कामो पर ही निछावर होने लगा। गाधीजीने नेटाल पहुचते ही पहिले वहाँकी धारा सभामे पेश होने वाले उन दो विलोका विरोध किया जिनके द्वारा हिन्दुस्तानी व्यापारियोके धधोंको हानि पहुचनेको थी, और हिन्दुस्तानियोंके आने-जानेमे रुकावट पैदा की जानेवाली थी। किन्तु वहुतेरा विरोध करने पर भी धारा सभामे वे विल भारतीयोके विरुद्ध पास कर ही दिये गये।

जागृति फैली—

प्रत्येक असफलताके साथ सफलता भी जुडी रहा करती है। असफल होने पर यदि हम प्रयत्नसे पीछे नहीं हटते, तो

आगे ही बढ़ते जाते हैं, और असफलतासे ही आखिर हम सफलता प्राप्त कर लेते है। गाधीजी अपने विरोधमें यद्यपि सफल न हो सके थे, किन्तु उनकी अन्याय-विरोधी भावनाने उनको एक वीर योद्धा बना दिया था। उनकी इस भावना व नीतिने लोगोंको भी अपने हकोंके प्रति जागरुक बना दिया और उनमें अधिकारके लिए संघर्ष करनेकी प्रवृत्ति पैदा कर दी। इस जागरुकता अथवा जागृतिके अंकुरको फूटता देखकर गाधी सतर्क हो उठे और उसे पनपाने और बढानेमें संलग्न हो गये।

गाधीजीने नेटालकी भारतीय काग्रेसको आर्थिक रूपसे सुदृढ बनानेके लिए खूब चन्दा वसूल किया, और काग्रेसके कोपमें ५,००० पौण्ड डालर जमा करा दिये। कांग्रसकी आर्थिक स्थिति दृढ करनेके लिए गाधीजीने काग्रेसके नाम पर जमीन व जायदाद भी मोल ली और आयका संचालन करनेके लिए एक ट्रस्ट बनवा दिया।[१]

सादगी और सेवा—

गांधीजीका सारा काम अब सुव्यवस्थित रूपसे चलने लगा। किन्तु मन फिर भी उनका बेचैन था। उनका हृदय जीवनमें सरलता और शुचिता खोज रहा था। अतः गाधी अपने सार्वजनिक कामोंसे ही संतुष्ट न रह सके। हृदय उन्हें सरलता और सादगीकी ओर बढनेके लिए इंगित करने लगा। गांधीजी आत्माके निर्देशोंको पकडकर ही तो ऊपर उठ सके

१—आत्मकथा भाग ३, पृष्ठ २१६-२१७

है, इसलिए आत्माके निर्देश पर अब वे सादगी और सेवा कार्य की ओर अधिकाधिक अग्रसर हो उठे !

गांधी नर्सके रूपमे—

आत्माकी पुकार पर गाधीजीने पीड़ितोकी सहायता करने और उनके दुःखमे समभागी होनेकी इच्छासे किसी एक अस्पतालमे भर्ती होकर नर्सका काम करनेका इरादा किया। इस इरादे और बुद्धकी जैसी करुणासे प्रेरित होकर वे डाक्टर बूथके छोटे अस्पतालमे नर्स बनकर काम करने जाने लगे। वे रोज सुबह ही अस्पताल पहुच जाते और दो घंटे पीड़ितोंकी सेवामे मग्न रहा करते। सेवाके लिए अशान्त गांधीके मनको इससे बहुत शान्ति मिली, और अस्पतालमे कराहते हुए दुःखी हिन्दुस्तानियोंसे भी उनका गहरा संबंध हो गया।

स्वावलम्बी—

गांधीजीकी मनोवृत्ति प्रारंभसे ही बाह्य तथा भीतरी दोनों प्रकारकी परतन्त्रताओंसे मुक्ति पानेकी रही है। उनके जीवनका मूल मन्त्र 'स्वावलम्ब' रहा है। उनके जीवनने प्रारंभसे ही इस सत्यको ग्रहण कर लिया था कि यदि मनुष्य सचमुच स्वतन्त्र होना चाहता है, राष्ट्रको उन्नत देखना चाहता है, और परतंत्रताकी बेड़ियोको तोड़कर फेंक देना चाहता है, तो उसे पहले अपने आपको जीतकर हर प्रकारकी परतन्त्रताओंसे स्वय मुक्त हो जाना चाहिए। अतः स्वतन्त्र बननेके लिए गाधीने पहली चीज जो महसूसकी, वह थी—आत्म निर्भरता या

परावलंबिताका निषेध, या आत्म दृढता अथवा आत्म-सुधार। इसीलिये उन्होंने दृढ संकल्प किया कि वे परावलम्बी न होंगे और अपने ही 'आत्म'के ऊपर अपने जीवनका महल खडा करेंगे। सचमुच वह व्यक्ति ससारमे कर ही क्या सकता है जो अपनी हर वस्तुओं और आवश्यकताओंके लिए दूसरोंका मुंह ताकता फिरे? वह व्यक्ति ससारका क्या सुधार करेगा जिसने पहले अपना ही सुधार न किया हो? इस सरल सत्य पर पहुचकर गाधीजीने अब अपने जीवनमे उसका प्रयोग आरभ कर दिया। उन्होंने पहले अपने दाम्पत्य और ग्रहस्त जीवनसे नौकरों और डाक्टरों आदिके 'परावलम्ब'का परित्याग किया। पत्नीके प्रसव कालमे दाई-चारे और बच्चोंको नहाने-धुलाने तक का काम गाधीजीने स्वय अपने जिम्मे कर लिया, और केवल जरूरी तथा विशेष परिचर्याके लिए ही अब दाई और डाक्टरोंको बुलाया जाने लगा।

धोबीको बिदाई—

सुख और आनन्दका प्यासा यौवन मनुष्यको नित्य उनकी ओर खींच ले जाता है। गाधी भी एक बार सुखोपभोगकी तरफ इसी प्रकार आकृष्ट हुए थे। भोगकी लालसा निःसन्देह उनके मनमे भी प्रतीत हुई थी, किन्तु वह अधिक टिक न सकी। गृहस्थी और स्वावलम्बी बननेकी इच्छाने उनको भोगसे पलटकर उपयोगिता और उपादेयताकी ओर मोड दिया। प्राचीन भारत का सादा और मितव्ययी जीवन बितानेकी प्रेरणासे गाधीजीने अपना खर्चा भी घटा दिया और बहुतसी भोगकी चीजोंको अनावश्यक समझकर कम कर डाला। गाधी समझ चुके थे

कि एक तरफ भोग और दूसरी ओर जन-सेवाका व्रत किसी प्रकार निभ नहीं सकता। यह 'भोग'का ही मोह तो है जो राजाओं, नवाबों, तालुक्केदारों, मिल मालिकों, अमीरों और उमरावोंको गुमराह किये है। अपने वैयक्तिक सुख-भोग और स्वार्थों की लालसामें पड़कर ही तो मनुष्य आज मनुष्यता को खो बैठा है, और हिंस्र-पशु बनकर पृथ्वीका बोझ हो गया है। भोगके लिए अधिकसे अधिक धनकी तृष्णा उत्पन्न होती है, और तृष्णा हमे बरबस अनीति, अन्याय और अत्याचारके रास्ते पर खींच ले जाती है। गांधी ने सब समझा और इसलिए जरूरतोंको घटाकर, धनके आकर्षण और भोगके मोह पर आक्रमण बोल दिया। इस आक्रमणका अस्त्र 'स्वावलम्बन' था। गांधीने अब धोबीकी किच-किच और खर्चीले पनको भी विदाई दे दी और खुद कपड़े आदि धोने लगे। मित्रोंने उनके इस 'स्वावलम्ब' और धोबीकी परतंत्रतासे मुक्ति पानेके रहस्य और मूल्यको न समझकर उनकी हँसी उड़ाई, किन्तु इस परिहाससे घबड़ाकर वे दूसरोंके इंगितों पर चलनेको तैयार न थे। श्रेष्ठ मानव सदासे अपनी आत्माके निर्देशोंको ही श्रेष्ठ मानता आया है। आत्मज्ञानी गांधी अमीर मित्रोंके परिहासकी क्यों चिन्ता करते? अतः उन्होंने अपना स्वालम्बन जारी रखा, और धोबीकी गुलामीसे मुक्त हो गये, जिससे उन्हींके शब्दोंमे 'भोगका बोझा भी बहुत कम हो गया'।[1]

१—वही पृष्ठ २२३।

बोअर युद्ध के समय [दक्षिण अफ्रीका में]

[पृष्ठ १०८]

नाई की गुलामी समाप्त—

एक बार गाँधीजी प्रिटोरियामें एक अंग्रेज नाईकी दूकान पर गये और हजामत बनवानी चाही, लेकिन रंग-द्वेष से कलुषित गोरे नाई ने काले वर्णवाले गाँधीके बाल काटने से साफ इनकार कर दिया। समानताके पुजारी गाँधीके हृदय पर इस घटनासे बडा आघात पहुचा। उन्हें फिर यही सूझा कि यदि वे स्वय बाल काटना सीख लें तो वे दूसरेका मुख ताकनेसे मुक्त हो जायेंगे। गोरेके अपमानसे मुक्त होनेका इससे बढकर उपाय क्या हो सकता था कि 'काला' गोरेका आसरा ही छोड देवे ? यह घटना वैसे थी तो साधारण, किन्तु उसकी प्रतिक्रियाने गाधीको स्वावलम्ब, आत्माभिमान ओर आत्मसम्मान एव आत्मप्रतिष्टाकी गभीर शिक्षा दी। उनके लिये इस घटनाने स्वावलम्बन और सादगीके 'वोचित्य' को प्रदान करनेवाली ज्योतिका काम किया। गाधीने अब अपनी आत्म-प्रतिष्टा कायम रखने और परावलम्बनके तिरस्कारसे मुक्ति पानेके लिए खुद बाल बनाने और काटनेका काम भी शुरूकर दिया। गोरे नाईसे तिरस्कृत होतेही वे सीधे बाजार पहुचे, बाल काटनेकी कैंची खरीद लाये, और आईनेके सामने खडे होकर स्वय बाल काट डाले।[1] उन्हें इसकी कतई चिन्ता न हुई कि उनके इस कार्यसे लोग उनकी हंसी उडायेंगे।

बालशिक्षा—

गाधीजीने दक्षिण अफ्रीकामें रंग-द्वेषसे 'भारतीय-प्रतिष्टा' की हर प्रकारसे रक्षाकरना अपने जीवनका एक मुख्य ध्येयही

१—वहीं पृष्ठ २३४–२३५

वना लिया था। पग-पगपर गोरोंके रंग-द्वेषकी अनुभूतिने उन्हें भारतकी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मानके लिए अधिकाधिक सचेष्ट और जागरूक कर दिया था। बालकोकी शिक्षाके संवंधमे भी उनको इस रंग-द्वेषका मुकावला करना पड़ा था। डरबन पहुंचनेपर गांधीजीके सामने अपने दो लड़कों और भानजेकी शिक्षाका प्रश्न आया। वहाँ गोरोंके स्कूल थे, लेकिन उनमें काले हिन्दुस्तानियोंके लड़के भर्ती न हो सकते थे, यद्यपि अपवाद स्वरूप गाधीजी के लड़कोंको उनमे भर्ती होनेकी स्वीकृति दे दी गई थी। पर गांधी अपनेको अन्य भारतीयोसे कभी जुदा न समझनेवालोंमे रहे है। उन्होंने विचार किया कि जब अन्य भारतीयोंके लड़कोंको गोरे स्कूलोंमे नहीं लिया जाता तो वे भी विरोधमे अपने लड़कोंको उनके स्कूलोंमे न भेजेगे। यह भारतीयोंका अपमान था, और गाधी उस अपमानके लिए तैयार न थे। अतः गाधीजीने फिर 'स्वावलम्वन' का आश्रय लिया और खुद ही वच्चोंको पढ़ानेका प्रयत्न करने लगे, किंतु अकेले निभता न देखकर उन्होंने एक अंगरेज महिलाको ट्यूटरके वतौर नियत कर लिया।

गांधीजीमे भारतीयताका अनुराग और अभिमान इतना वढा हुआ था कि वे घर पर अपने वच्चोंको अपनी मातृभापा गुजरातीमे ही शिक्षा दिया करते और वात-चीत भी हमेशा उनसे अपनी मातृभापामे ही करते थे।

विरागकी ओर—

इसी समयसे गाधीके हृदयमे 'महात्मा'के अकुरने भी वल पकड़ना शुरू किया। विपय भोग अव उन्हें बुरी तरह पीडित करने लगे। उनके मनमे दिनों-दिन विरागका उदय होता गया, और इसी कारण कुछ समय वाद १९०६मे उन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी रहनेका व्रत भी ले लिया। उनकी सन्तान भी काफी हो चुकी थी, अतः वे सयम पालनकी ओर अधिकाधिक जागरूक होते चले गये। उन्हें धीरे-धीरे यह भी प्रतीत हुआ कि लोक सेवामे वे तभी लीन रह सकते हैं, जव वे 'पुत्रैपणा' और 'धनैपणा' [1] से मुक्त होकर वान-प्रस्थका सा विरागमय जीवन ग्रहण करें। यही वह विशाल अनुभव था, जिसने उनके जीवनमे 'महात्मा' को विराटताको उत्कर्ष दिया है।

संक्षेपमे आज जो हम गाधीजीको 'महात्मा' के विशाल और विराट नामसे सवोधित करते हैं, उसका हेतु भारतीय श्रद्धालुता के वजाय हमें गाधीजीके जीवनकी उन अनुभूतियों, प्रतीतियों और स्वचिन्तन एवं मन्थनके छोटे-छोटे अंकुरों और कोपलोंमे ढूंढना चाहिए जो उन्हें वरवस ही महानताकी ओर खींच लेगये।

१—आत्मकथा भाग २-अध्याय ७. पृ २२७

गांधीजी और बोअर युद्ध

-(१८९९-१९०१)

अध्याय ६

ब्रिटिश राजभक्ति—

गाधीजी प्रारम्भमे ब्रिटिश राज्यके शत्रु न थे। एक समय था जब कि ब्रिटिश राज्यके प्रति वे बड़ी ही भक्ति और श्रद्धा रखते थे। गाधीजीमे ब्रिटिश राजका द्रोह केवल गोरोके रग-द्वेष और अग्रेजोंके विजातीय वा विधर्मीय होनेके कारणसे नही पैदा हुआ। लेकिन ब्रिटिश राजकी आन्तरिक बुराइयोंने ही जो उनको स्वयं देखने और अनुभव करनेको मिलीं, वास्तवमे उनको विद्रोही बनाया है। ब्रिटिश राजसत्ताकी असत्यता, अधर्म और अनीति यदि गांधीको त्रस्त न करतीं और भारत तथा विश्वके कल्याणके लिए उन्हें वे अशुभकर न प्रतीत होतीं, तो गाधी ब्रिटिश राजसत्ताको खण्डित करनेके बजाय उसे बनाने और संवारनेमे ही अपने जीवनको अर्पित कर देते। और जब तक गाधजीको यह प्रतीत होता रहा कि ब्रिटिश राज्य और शासन कर्ताओंकी नीति समिष्टि रूपसे प्रजा पोपक हैं, वे नि:सन्देह अग्रेजोकी भॉति ही ब्रिटिश राज्यमे बराबर अपनी निष्ठा दिखलाते रहे। अपनी राजनिष्ठाके लिए उन्होंने अंग्रेजोंका राज गीत 'गॉड सेव द किंग' तक बड़े श्रमके साथ कंठ किया, और जहॉ-

तहॉ नेटालकी सभाओंमे अंग्रेजोके साथ मिलकर उसे गाते भी रहे। गाधीकी यह राजनिष्टा किसी स्वार्थ पर आधारित न थी। उनका तब विचार ही यह था कि क्योंकि राजा प्रजाके लिए बहुतसे हितकर कार्य करते हैं, इसलिए प्रजा पर राज्यका ऋण होता है, जिसको एक वफादार प्रजाके व्यक्तिको अदा करना चाहिए। अतः स्वामिभक्ति या वफादारीका गुण उनमे एक स्वाभाविक गुण था, और इसलिए अवसर मिलते ही वे अवश्य उन कार्यों मे हाथ बॅटाने लगते थे, जिससे राज्यकी प्रतिष्ठा बढ़े और उसे लाभ पहुचे। १८९६ ई० सन्मे गाधीजीने भारत लौटने पर जब उस समय महारानी विक्टोरियाकी 'डायमंड जुबली' की तैयारियॉ होती देखी थीं, तो उन्होंने भी अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करनेके लिए राजकोटकी एक समितिमे मिलकर 'जुबिली' मे सहयोग दिया था।[1]

बोअर युद्ध—

इस ब्रिटिश राजनिष्ठासे ही प्रेरित होकर सन् १८९९ मे जब अफ्रीकामे बोअर युद्ध छिडा तो गाधीजीने तुरन्त ब्रिटिश राज्य को सहयोग देनेका निश्चय किया, यद्यपि उनके निजी मनोभाव खुद बोअरोंके पक्षमे थे। गांधीजीने लिखा है कि "जब यह युद्ध छिडा तब मेरे मनोभाव बिल्कुल बोअरोके पक्षमे थे, पर मै यह मानता था कि ऐसी बातोंमे व्यक्तिगत विचारोंके अनुसार काम करनेका अधिकार अभी मुझे प्राप्त नहीं हुआ है इतना ही कहना काफी है कि ब्रिटिश राज्यके प्रति मेरी वफा-

१—आत्मकथा, भाग २ पृष्ठ १९०-१९१

दारी मुझे उस युद्धमें योग देनेके लिए जबर्दस्ती घसीट ले गई।"
उनका यह भी विचार था कि ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे जब वे
हकोकी चाहना रखते है तो ब्रिटिश-प्रजाकी हैसियतसे उन्हे
ब्रिटिश-राज्यकी रक्षामे सहायक भी होना चाहिए। साथ ही
गाधीजी अग्रेजोमे फैली हुई इस आम धारणाको कि हिन्दुस्तानी
जोखमके कार्योमें नही पड़ते, स्वार्थके अलावा उन्हें और कुछ
नहीं सूझता, अपने सेवा कार्यसे खतम कर देना चाहते
थे। वे चाहते थे कि हम अग्रेजोंको जतला दे कि हम जितना
अपनी रक्षा और सुखके लिए तत्पर रहते हैं, उतना ही ब्रिटिश
राज्यके सुख-दुःखकी भी चिन्ता किया करते है।

स्वय-सेवक-दल —

अतः इन भावनाओसे प्रेरित होकर गाधीजीने रणक्षेत्रमे
घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेके लिए हिन्दुस्तानी स्वयं-सेवकोंकी
एक टुकड़ी तैयार की। स्वयं-सेवक दल तैयार कर लेनेपर गाधीजी
ने नेटाल सरकारको लिखा कि उन्हें लड़ाईमे सेवा करनेका
अवसर दिया जाय, किन्तु सरकारने धन्यवादके साथ उनकी
सेवा लेनेसे इनकार कर दिया। पर गांधीजी किसीकी 'ना' से
कभी घबराये और विचलित नहीं हुए है, उनकी आत्माने उन्हें
जो निर्देश दिये, उनको कार्यान्वित करनेके लिए उन्होंने ससारके
'हा'—'ना' की कभी कोई चिन्ताकी ही नहीं।

सरकारसे 'ना' मिलनेपर गाधीजी लेजिस्लेटिव कौसिलके
सदस्य श्री जेमसनसे मिले। किन्तु उसने भी गांधीको निराश
किया। जेमसनको भारतीय सहायताका उल्लेख ही हास्यास्पद सा
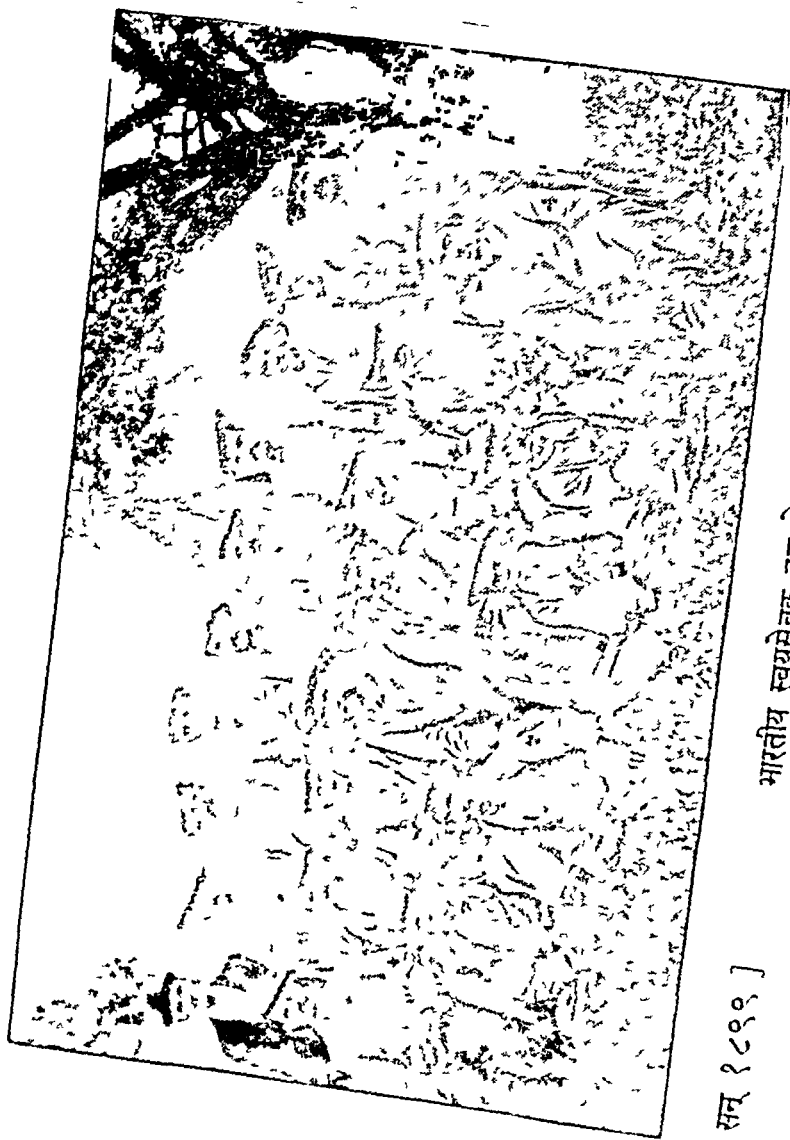
[सन् १८९९]

भारतीय स्वयंसेवक दल के साथ

[पृष्ठ ११४]

मालूम हुआ। उसने गाधीजीसे रूखे शब्दोंमे कहा, "तुम हिन्दुस्तानी युद्धसे विलकुल अपरिचित हो। तुमतो खुदही सेनापर एक भार वन जाओगे, वजाय तुम लोगोसे मदद मिलनेके हमे ही तुम्हारी रक्षाकी चिन्ता करनी पड़ जायगी"। "किन्तु", गाधीजीने विनम्र होकर कहा "क्या कोई ऐसा कार्य नहीं जो हम कर सके? क्या हम अस्पतालमे मामूली नौकरोंका कामभी नहीं कर सकते? उसमे तो निःसन्देह कोई अधिक अक्लकी जरूरत न पडेगी।" लेकिन अहसे फूले हुए जेमसनने फिर भी "ना" कहते हुए उत्तर दिया कि "उस सवके लिए भी शिक्षाकी आवश्यकता है।"

गाधी यह उत्तर पाकर निरुत्साहित तो हुए, किन्तु वे निराश न थे। उन्होने तव अपनी योजना अपने मित्र श्री लाटनके सामने पेश की। उसने वडी उष्णताके साथ गाधीकी योजनाका समर्थन करते हुए कहा, 'यही चीज है, इसे अवश्य करो, यह तुम्हारे लोगोको हमारी सवकी निगाहोंमे ऊँचा उठा देगी, और उनका हित साधेगी। जेमूसनकी चिन्ता न करो।' अतः लाटनकी सद्सलाह पर गाधीजीने दुवारा सरकारको प्रार्थना-पत्र भेजा, किन्तु वह भी वेकार सावित हुआ। [१]

इस निराश स्थितिमे एक और अंगरेज श्री वूथसे केवल गाधीको प्रोत्साहन मिल सका। डा० वूथने उन्हें पहले घायल सनिकोंकी शुश्रूषा करना सिखलाया। शुश्रूपाकी योग्यता हासिल कर लेने पर डा० वूथकी मददसे गाधीजी नेटालके विशपसे

1—An indian patriot in south Africa, J J Doke pp 52-53

मिले। विशपको गाधीजीकी योजना बहुत पसन्द आई, और उसने सहायता देनेका पूरी तरह वचन दिया।

इसी वीच घटना-चक्रने भी गाधीके लिए एक सुयोगकी स्थिति पैदा कर दी। वोअरोके युद्धकी तैयारी, दृढता और वीरता ऐसी विकट सावित हुई, जिसके फलस्वरुप सरकारको अधिकाधिक रंगरूटोंकी आवश्यकता होने लगी। प्रत्येक व्यक्ति जो मिल सकता था, सरकार उसकी चाहना करने लगी थी। व्रिटिश और वोअर इस समय गार्डन कॉलिनीके लिए जीवन और मरणके सग्राममे उलझे हुए थे।

घटनाएँ तेजीसे वढ रही थीं। "सर जार्ज व्हाइट २० अक्तूवरको लेडी स्मिथकी ओर धकेल दिये गये थे। नवम्बरको नगरकी तार लाइन भी काट डाली गई थी। तीसरी नवम्वर को रेलवे लाइन भी टूट चुकी थी। नवम्वर दस तक वोअरोका कोलिन्सो और तुगेला की लाईन पर भी कब्जा हो गया था। नवम्वर अट्ठारहको दुश्मन इस्टकोर्ट तक आ पहुचा था। नवम्वर २१ को वे मोई नदी तक वढ गये थे। नवम्वर २३ को हिल्डयार्ड ने दुश्मनो पर विलोग्रेजके पास हमला कर दिया था। दूसरी ओर सर रेडवर्स वुलर सिविले मे अपनी सेनाको एकत्रित करने पर लगा हुआ था, और किसी-तरहसे नदीको पारकर लेडी-स्मिथको दुश्मनके दवावसे मुक्त करनेके लिए फिक्रमे था।"

अतः लडाई इस समय अत्यन्त सकटावस्था पर थी। डर-वनमे वोअरोंके वढावसे खलवली मची हुई थी, और अग्रेज सत्रस्त हो रहे थे। ऐसी अवस्थामे अग्रेज जनता वा सरकार जाति और रंगका विचार त्यागकर मदद पानेको स्वय ही आतुर

हो रहे थे। वे अब परिस्थितिसे लाचार होकर सबको अपनाने और अंगीकार करनेको तैयार थे। सरकारको मोर्चे तथा घायलोंकी सेवाके लिए आदमियोंकी भूख-सी हो गई थी।

अतः स्पष्ट है कि इसी घटना-चक्र और विषमावस्थासे मजबूर होकर नेटाल सरकारने भारतीयोंकी मदद लेना स्वीकार किया था, अन्यथा वह कभी मदद लेनेको तैयार न होती। यही कारण था कि डा० बूथ और बिशप वेल्स ने गांधीजीकी योजनाको जब पुन. सरकारके सामने पेश किया, तो उसे तब तक मंजूर न किया गया जब तक कि बिशपने कर्नल जाहन्सटनसे मिलकर उन्हें युद्धकी तेजी और भीषणताका भान कराकर यह विश्वास न दिला दिया कि घायलोंकी सेवाके लिए उन्हें खुद ही अधिकसे अधिक आदमियोंकी आवश्यकता पड़ेगी। फलतः अपनी ही बेबशीके विचारसे अन्तमें नेटाल सरकारने गांधीजीकी योजनाको स्वीकार किया और उन्हें एक भारतीय सेवादल कायम करनेकी आज्ञा दे दी गई।[1]

इस प्रकार गांधीजीके नेतृत्वमें उनका सेवादल अब कार्य-क्षेत्र में उतरा। उनके सेवादलमें लगभग १,१०० व्यक्ति थे। इस दल में लगभग ३,००० स्वतंत्र हिन्दुस्तानी और शेष गिरमिटिया (कुली) थे। दलमें लगभग ४० मुखिया थे। डा० बूथ भी मेडिकल सुपरिन्टेण्डेन्टके रूपमें इस टुकड़ीके साथ थे। गांधीजी और उनके सेवादलने इतनी सक्रियता और तत्परतासे काम किया जिसके फलस्वरूप जनरल बुलरने खुश होकर जल्द ही गांधीजी को आसिस्सटेण्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट बना दिया।

---

1. Ibid pp 53-54-

गाधीजीके इस सेवादलका कार्य-क्षेत्र प्रारम्भमे युद्धके क्षेत्र से बाहर रखा गया था और उनकी रक्षाके लिए ख़ास चिन्ह भी लगा दिया गया था। किन्तु आवश्यकता पड़ने पर प्रत्यक्ष युद्ध क्षेत्रकी हदके अन्दर भी काम करनेका उन्हे अवसर मिला।[1] यद्यपि सरकारकी इच्छा यह थी कि जहाँ तक हो सके भारतीय सेवा-दलको जोखिममे न डाला जाय, किन्तु विकट स्थितिमे पडकर सरकारने कॉलेन्सोके युद्ध प्रारम्भ होनेके अगले दिन हिन्दुस्तानी सेवा-दलकी टुकड़ीको युद्धक्षेत्रमे पहुचनेका आदेश दिया। इस आदेशके मिलते ही एक हजार भारतीय उपयुक्त समय पर युद्धक्षेत्रमें घायलोको हटानेके लिए जा पहुचे। बड़े जोश और तत्परतासे काम करते हुए वे ऐन आवश्यकताके समय पर चीवली भी पहुचे, और सेवाके कार्यसे अनुप्रेरित होकर तथा मार्गके खतरोकी परवाह न कर आगे बढते-बढते कॉलेन्सी तक चले आये और रातो दिन घायलोंकी सेवा करने मे लगे रहे।

युद्ध इस समय काफी भीषणता पर था। मैदान और नदी के तट पर सर्वत्र घायल और मृतक ही छितरे पड़े थे। अनुमानतः लगभग १५० उस युद्धमे मरे थे, और ७२०के करीब घायल हुये थे। ऐसे कड़े मौके पर अगरेजोंको मदद की सचमुच नितान्त आवश्यकता थी, जिसकी पूर्तिमे भारतीय सेवादलने अपने प्राणोको भी लगा दिया और तुल्यानुरागके साथ अँगरेज साथियोंसे मिलकर निष्ठा और आत्मीयतासे अन्त तक उनकी सेवा करते ही रहे।

१-आत्मकथा-भा ३ पृ २३६-२३७

युद्धकी एक मधुर स्मृतिका गांधीजीने बडे उत्साह और चाव से उल्लेख किया है। युद्धमे बहादुरीसे लडते हुये लार्ड रावर्टसके पुत्र लेफ्टीनेन्ट रावर्टसको मर्मान्तक गोली लगी थी। उनके शव को ले जानेका कार्य-भार हिन्दुस्तानी सेवा-दलकी टुकडीको मिला था जिसके अगुआ गाधीजी थे। गाधीजी लिखते है, इस दुःखके समय गोरे और हिन्दुस्तानियोंके दिल इस तरह पिघल कर एक दूसरेके लिए सहानुभूतिसे भर गये थे कि रास्तेमे थके और प्यासे होने पर जब उन्हे पानीका एक झरना मिला तो हिन्दुस्तानी टामियो और टामी हिन्दुस्तानियोंसे देर तक यही मधुर आग्रह करते रहे कि पहिले तुम पीओ और पहिले तुम पीओ।[1]

स्पियान्कोप (Spionkof) की लड़ाई—

कॉलिन्सो (Colenso) की लडाईके उपरान्त गाधीजीके 'भारतीय सेवा दल'को युद्ध कार्योंसे मुक्तकर डरबन वापिस भेज दिया गया। किन्तु उन्हे साथ ही यह बतला दिया गया कि दूसरा बुलावा भी उनके लिये जल्द आ सकता है। और यह दूसरा बुलावा एक महीनेके पश्चात् स्पियान्कोपकी लडाईके समय मिला। लेकिन इस एक महीनेके अवकाश-कालमे भी गाधीजी और उनका सेवा दल चुप हो कर न बैठा रहा। इस बीचमे सेवा दलके लगभग ३६ भारतीय नेताओंने अस्पतालमे रहकर कुशल डाक्टरोंकी देख-रेखमे चिकित्साका भी थोडा बहुत काम सीख लिया, क्योकि वे युद्ध क्षेत्रमे घायलोंकी सेवाके लिये

१—वही भा–३ पृष्ठ २३८।

अपनेको हर प्रकारसे योग्य बना लेनेको उत्सुक थे। स्पियान्कोपके युद्धमे गाधीजीके सेवा दलने लगभग तीन सप्ताह तक घायल सैनिकोकी डटकर सेवाकी थी। सेवा दलवालोंको युद्धमे घायल हुये सैनिकोंको उठाकर गोली बारूदकी हदसे वाहर पच्चीस-पच्चीस और तीस-तीस मील दूर तक ले जाना पडता था। यह सारा इन्तजाम गाधीजीकी देख-रेखमे होता था। इस युद्धमे जनरल उडगेट (General Woodgate) को मर्मान्तक चोट आई थी। उडगेटको रण क्षेत्रसे वाहर अस्पतालमे पहुंचाने का कार्य गाधीजीको ही सौपा गया था। हिदायत यह थी कि घायल जनरलको इतनी शीघ्रता और सावधानीके साथ अस्पताल पहुचाया जाय कि रास्तेमे ही उनके प्राण न निकल जाय और मार्गमे कोई कष्ट भी न होने पावे। गाधीजी और उनके साथियो ने वडी खूबीके साथ इस कार्यको निभाया। बड़ा ही हृदय विदारक वह दृश्य था। वेचारा घायल जनरल वेदनाके मारे तड-पड़ाता था और गाधी तथा उनके साथी वडी शालीनता और शीलताके साथ कडी धूप और लूमे उसे सावधानीसे लिये चले जाते थे।

स्पियान्कोपकी लड़ाईका सबसे विकट अवसर वह था, जबकि धूप कड़ाकेदार पड रही थी और गर्मीसे व्याकुल हुये सैनिक धडा धड़ नदीके उस पार गिरते जा रहे थे और कोई वहाँ उनकी खबर-सार लेने वाला या देख भाल करने वाला तक न था। अतः इस जरूरतके अवसर पर गाधीजीमें ही एक सहारा अनुभव कर मेजर वापतेने उस समय उनके पास पहुच कर उन्हें स्थितिकी भीषणता और उस पार सहायताकी आवश्य-

कता दर्शाते हुये कहा कि 'उन्हें मालूम है कि भारतीय सेवा दलको गोली बारूदकी हदके भीतर काम करनेसे मुक्त रखा गया है। किन्तु इस समय तीव्र आवश्यकता आ पड़ी है, और यद्यपि मैं इसके लिये जोर नहीं डाल सकता, तथापि यदि तुम्हारा सेवा दल नदीके उस पार जाकर काम कर सके तो बड़ी सराहना उस कार्यकी होगी।' नदीके उस पार जाना अवश्य खतरेसे खाली न था। दुश्मनकी गोली बारूद भीषणतासे चल रही थी। लेकिन गांधीका निर्भीक हृदय असहायोंकी सहायता लिये पीछे नहीं, हमेशा आगे रहा है। कृष्ण और गीताका भक्त असहायोंकी पुकार पर शान्त कैसे बैठे रह सकता था। अतः बापतेका इशारा पाते ही गांधीजी तुरन्त अपने साथियोंके पास पहुंचे और आतुरता भरे शब्दोंमें उनसे पूछा "क्या वे चलेंगे" और योग्य सेनापतिके योग्य सैनिकोंने तेजीसे उत्तर दिया 'जरूर"। गांधीजी खिलखिला उठे। उन्होंने एक दम अपने साथियोंको लिया और मार्गके खतरोंकी परवाह न करते हुये पुलको पार कर नदीके दूसरी तरफ जा पहुंचे, जहाँ आनेके लिए आर्तोंकी नाद उन्हें पुकार रही थी। निर्भीक गांधी और उनके साथियोंके आत्म-त्याग, सेवा और परिश्रमसे कई ब्रिटिश सैनिकोंकी जानें उस दिन अकाल ग्रस्त होनेसे बच गईं। श्री जे० डोकने भारतीय सेवा दलके इस कार्यकी प्रशंसा करते हुये लिखा है कि "उस दिन भारतीयोंकी निष्काम और सामयिक सेवा तथा प्रयत्नसे ही हमारे कई सैनिकोंके प्राण बच पाये।"

स्पियान्कोपके अलावा वालक्रॉझके युद्धमें भी गांधी और उनके सेवा दलने असीम त्याग और उत्साहसे घायल सैनिकोंका

सेवा की। वालक्रॉञ्जाके युद्धमें गोली वारूदकी वौछारोंके चलते हुये भी भारतीय तत्परता और निर्भीकतासे घायलोंको युद्ध क्षेत्रसे हटानेमे तल्लीन रहे। श्री डोक लिखते है कि "भारतीय अस्पतालके अर्दली, पानी भरनेवाले, घायलोंकी सेवा करनेवाले, तथा वीमारोको ढाने वाले कुली सवके सव इस विपत्तिमे सहायता पहुचानेको कटिवद्ध थे। कई वार उन्हे गोरे सैनिकोके हाथ तिरष्कार भी सहना पडा और गोलियोकी वौछारोका भी मुकावला करना पडा, किन्तु तिस पर भी वे बड़ी शान्ति और शालीनताके साथ सव कुछ सहते हुये अपने कर्तव्य और टेक पर दृढ रहे और अंतमे सैनिकोंकि की अपरिमित सराहनाके पात्र वने।"[1]

गांधीजीके नेतृत्वमे भारतीय सेवा दलने अंगरेजोकी जो सेवाएँ की, उनकी उस समय खूव प्रशंसा हुई। जनरल वूलरने खुद अपने खरीतेमे भारतीय सेवा दलके कार्योंकी प्रशंसाका उल्लेख किया। सेवा दलके नेताओंको उनकी इन सेवाओंके उपलक्षमे तमगे भी प्रदान किये गये। इन सेवाओंके फलसे हिन्दुस्तानियोंका गौरव भी अगरेजोकी नजरमे वहुत वढ गया। हिन्दुस्तानियोंके प्रति गोरोंने अपनी आन्तरिक प्रतिष्ठा और स्नेह जतलानेके लिये "आखिर हिन्दुस्तानी है तो साम्राज्यके वारिस ही" जैसे अभिप्राय रखने वाले गीत गाये।

युद्ध क्षेत्रमे जो भारतीय काम आये थे, सरकारकी तरफसे उनको पूर्ण सम्मान दिया गया और उनकी यादगारमे जौन्स वर्गमे एक विशाल स्मारक खडा किया गया। यह स्मारक पूर्वीय

1 M K Gandhi by J J Doke pp 55-56.

साम्राज्यके उन बच्चोंकी सच्ची सेवाओंके प्रति, जिन्होंने गांधीजी के साथ मिलकर अंगरेजोंको उनके महान संकटमें मदद पहुचाई थी, उत्पन्न हुई सद् भावनाओंका एक सुरभित पुष्प उपहार था।[1]

किन्तु युद्धकी सेवाओंसे गोरोंके साथ जो मधुर संबंध कायम हुआ, और युद्ध कालमें गोरों द्वारा हमारे जो प्रशंसाके गीत गाये गये, वह सब क्षणस्थाई साबित हुए। वास्तविक रूपमें हमारी स्थिति जरा भी न बदली और पहलेकी ही जैसी बनी रही। इतनी सेवाओंके बाद और प्राणोंको संकटमें डाल दक्षिण अफ्रीकाकी रक्षा करने पर भी वहाँके भारतीयोंको ब्रिटिश नागरिकोंके हक न मंजूर किये गये। अपितु हकोंके लिये आवाज उठाने पर उन्हें जेलोंमें ठूस कर सड़ाया और बर्बाद किया गया, और आज तक किया जा रहा है। आज १९४६-१९४७ में भी गोरी अंगरेज जातिका रंग-द्वेष भारतीयोंकी बर्बादी पर तुला है। आज भी श्री स्मट्सकी गोरी सरकार २१,०००० भारतीयों—हिन्दू, मुसलमान और सिख—के हकोंको छीनकर उन्हें पद दलित करने पर तुली है। भारतीयों एवं सम्पूर्ण एशियाईओंके विरुद्ध स्मट्स सरकारने 'दी ऐसियाटिक लण्ड टिनियोर बिल', (The Asiatic Land Tenure Bill) यूनियन पार्लियामेंटके सामने पेश किया है। यह बिल श्री एम० ए० मिर्जा, जो साउथ अफ्रीकन इन्डियन डेलिगेशनके एक मेम्बर हैं, के अनुसार उन भारतीयोंके न्यायपूर्ण अधिकारोंको कुचलनेके लिये है, जिन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके साम्राज्य निर्माणमें मदद पहुचाई थी।[2] किन्तु स्मट्सकी गोरी

1 Ibid pp 57

2 Amrita Bazar patrika March 23, 1947.

सरकार भुलावेमे है कि वह भारतीयोंको तोप और गोलोसे त्रस्त और आतकित कर उन्हे झुकाने और पददलित करनेमे सफलता प्राप्त कर सकेगी। भारतीय स्वाभिमान इस अत्याचार को न सहन करेगा। भारतीय मिटना पसद करेगे, किन्तु अन्याय के सामने झुकना नही। खबरें आ रही है कि दक्षिण अफ्रीकाके दो लाख भारतीय, यदि भारतीयोंको बर्बाद करने वाले ऐशियाटिक लैन्ड टेनिओर व इन्डियन रेप्रिसेन्टेशन विल पास किये गये, तो प्राणोकी बाजी लगाकर सत्याग्रह करेगे। भारतीय सम्मान, गौरव, और हकोकी रक्षाके लिये और दूसरा उपाय हो क्या हो सकता है ?[1]

हमने यह पुस्तक लिखी थी १९४६ मे ही और यह छप रही है कारण वस१९४७के अतमे, अतः हम यहाँ पर पाठकोंकी सूचना के लिये यह नोट कर देना चाहते है कि दक्षिण अफ्रीकाका मामला कुछ समय पहिले संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा संघमे पेश हुआ था और वह पास भी हो गया था, लेकिन १९४७ मे नवम्वरकी सुरक्षा सभामे यूरोपियन गुटने उस प्रस्तावको गिरा दिया है। इसलिये दक्षिण अफ्रीकामे अपने अधिकारोके लिये भारतीयोका सघर्ष जारी है और सुरक्षा सभामे भारतीय मामलेको पेश करने वाली मास्को स्थित भारतीय राजदूत श्री विजय लक्ष्मी पंडितने १ डिसम्बर १९४७ को न्यूयार्कसे नैटाल भारतीय काग्रेसकी प्रधान मत्रीको एक सदेश देते हुये यह कहा है कि दक्षिण अफ्रीकामे जो सत्याग्रह होरहा है, वह तवतक चलता रहे, जवतक व्यक्तियों, और राष्ट्रोंमे भेद-भाव समाप्त नही कर दिया जाता। ससारमे

1 Ibid March 21, 1946

मानव अधिकारोंके लिये जो लडाई चल रही है, दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह उसका मुख्य अंग है। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय धैर्य न छोडे और प्रसन्नतासे सत्याग्रह करते रहे।

इस जनवरी (१९४८) से 'इमीगेरेन्ट रेगुलेशन एक्ट' (१९१३) के विरुद्ध वहाँ सत्याग्रह चल रहा है और सत्याग्रही नेटालसे ट्रान्सवालकी सीमाओंका निर्भीकतापूर्वक अतिक्रमण कर रहे हैं। दक्षिण अफ्रीकाकी सरकार कठिनाईमे पड गयी है। सत्याग्रहियोंको रोकना उसे मुश्किल पड रहा है, जैसा कि वहाँ से आनेवाले समाचारोंसे पता चलता है।

मातृभूमिको

(१९०१-१९०२)

अध्याय ७

बोअर युद्धमे सेवादल बनाकर काम करनेसे गांधीजी हिन्दुस्तानियो वा गिरमिटियोके निकटतम सम्पर्कमे चले आये थे। लड़ाईसे हिन्दुस्तानियोंमे सगठन और जागृति भी वढ चली थी। गाधीजीने उनमे 'हिन्दुस्तान' या मातृभूमिके प्रति भी आकर्षण पैदा कर दिया था। इससे पहिले विदेशोंमे वसे प्रवासी भारतवासी, अपनी मातृभूमिके प्रति अपना कोई विशेप कर्त्तव्य वा उत्तरदायित्व न समझा करते थे। लेकिन गाधीजीके प्रयत्नो ने उनमे अपने मातृदेशका प्रेम प्रवलतासे सचारित कर दिया। इसीका फल था कि जव १८९७ और १८९९ मे भारतवर्षमे अकाल पड़े, तो दोनो समय दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंने भारतवर्षको खूब मदद पहुचाई। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय अब निःसन्देह अपनेको पूरी तरह भारतकी ही सन्तान मानने और समझने लगे और परिणामतः भारतवर्षकी विपदाओंमे तबसे अपनी तरफसे सहायता पहुचानेको हमेशा तैयार रहा करते है।

दक्षिण अफ्रीकासे भारतको—

गाधीजी प्रारम्भमे दक्षिण अफ्रीका इस विचारसे आये थे

कि वहाँके भारतीयोंका काम निपटाकर वे एक महीनेके भीतर भारत लौट आयेंगे, किन्तु वहाँके मामलोंमे उन्हे लग गये ६ वर्ष। इस लम्बे अरसेमे वे हर प्रकारसे वहाँ भारतीयोंकी सेवा करते रहे और भारतीय मान और गौरवको वढानेमे संलग्न रहे, लेकिन तिसपर भी वे क्षणभरको अपने मुल्ककी याद न भूला सके और हमेशा इसी चिन्तामे घुलते रहे कि भारतभूमिकी सेवा करनेका कव उन्हें अवसर मिल सकेगा?

वे हमेशा इसी अवसरकी ताकमे रहते कि अफ्रीकाका काम समाप्त हो और वे स्वदेश सेवाके लिये भारतको लौट आये। उनका अन्तर हमेशा उन्हे यही इगित किया करता कि उनका काम और उनकी आवश्यकता दक्षिण अफ्रीकासे अधिक भारत-वर्षमे है। अतः १९०० के लगभग जव वोअर युद्ध समाप्त हो गया और वोअरों द्वारा दवाये गये प्रदेशों—लेडीस्मिथ, किंवरली, मेफिंग, ट्रान्सवाल और फ्रीस्टेट आदिपर फिरसे अँगरेजोंका कब्जा हो गया, तो गाधीजीने सोचा कि दक्षिण अफ्रीकामे उनका काम अव समाप्त हो गया और इसलिए उन्हे भारतकी सेवाके हित स्वदेश लौट जाना चाहिये। उनके दिलमे स्वदेश सेवाकी कामना निःसन्देह वहुत प्रवलहो उठी थी। गाधी-जीने अपनी यह अभिलाषा दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय मित्रों और सहयोगियोंको भी जतला दी। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय अपने सुख-दुःखके साथीसे इस प्रकार विलग होना पसन्द तो न कर सके, परन्तु गाधीजीकी निःस्वार्थ इच्छाके विपरीत भी वे कैसे जा सकते थे! अतः वडी मुश्किलसे अन्तमे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय मित्रोंने यह वचन लेकर कि यदि 'एक सालके अन्दर लोगोंको

उनकी जरुरत मालूम हुई तो उन्हे वापिस बुला लिया जावेगा, गाधीजीको लौटनेकी अनुमति दे दी।' गाधीजीने इस निःस्वार्थ शर्त और प्रतिबन्धको खुशी खुशी स्वीकार किया और १६०१ के अन्तमे देश लौटनेको तैयार हो गये।

गाधीजीकी विदाई—

अपनी सेवाओके फलसे गाधीजी दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयो के कठहार हो गये। अतः अपने प्यारे गाधीजीकी विदाईमे अपने हृदयके प्रेमके साथ अपने खजानोके रत्न भी उडेल दिये। भारतीयो द्वारा उनकी प्रतिष्ठामे कई महत्त सभाएँ की गई और अपना अतुल स्नेह जतलानेके लिए लोगोंने गांधीजीको सोना, चादी और हीरेकी बहुमूल्य भेटोंसे ढक दिया। उनकी लोक सेवाका यह विमल पुरस्कार था। किन्तु गाधीजी उन भाड़े और किरायेके सुधारको वा सेवकोंमेसे नहीं है, जो अपनी सेवाओका एहसान मानते और उसका मूल्य चाहते हैं। गाधीजीका तो प्रारभसे ही यह निश्चित मत रहा है कि सेवा वेचनेकी चीज नहीं, जो उसका किसीसे दाम लिया जावे। अतः अपनी पत्नी कस्तूरावाईकी अनिच्छा होते हुए भी गाधीजीने अपने तथा स्व० कस्तूरवाको भेटमे मिली तमाम चीजे जिस समाजसे मिली थीं, उसी की सेवाके लिए वापिस लौटा दी।

उनके निर्देश पर उपहारकी वस्तुओका एक ट्रस्ट बना दिया गया और घोषित कर दिया गया कि उसका उपयोग आवश्यकतानुसार लोक-सेवाके लिए किया जावेगा। गांधीजीकी इस

निःस्वार्थ प्रवृत्तिने लोगोंको और भी मोहित कर डाला, उन्हें ताज्जुब था कि एक व्यक्ति इतना निःस्पृह और स्वार्थ रहित भी हो सकता है? किन्तु तब किसे मालूम था कि गांधी 'लोकसेवा' के लिए ही पैदा हुआ है, और जिसे आगे चलकर महात्मा होना है—वह भला लोभ और मोहके निचले स्तरमे कैसे विचर सकता है? गांधीजीके इस ऊंचे त्यागकी महत्ताका कस्तूरबाने भी अपने आगेके जीवनमें प्रत्यक्ष अनुभव किया और समझ लिया कि सुवर्णका प्यार मनुष्यको गिराता है, और भवका प्यार भगवानसे बिछुड़ाता है। 'बा'की इसी अनुभूति और प्रतीतिने 'बा'को गाधीकी पूर्ण छाया और राष्ट्रकी माताके पदको पहुँचाया है। यह भी स्मरण रहे कि गाधीकी इस निःस्पृहताका ही परिणाम है कि जब कभी अपने रचनात्मक कार्योंके लिए वे धन चाहते हैं तो उनके मुख खोलतेही सारा देश अपनी थैलियोंके मुख खोल दिया करता है।

भारतकी राष्ट्रीय महासभामे प्रथम बार—

विदाईका समारोह खतम होतेही सन् १९०१ के अन्तमे गाधीजी दक्षिण अफ्रीकासे सपरिवार भारत लौट आये। उस साल दिसम्बर १९०१ को भारतकी राष्ट्रीय महासभा कांग्रेसका कलकत्तामे अधिवेशन बुलाया गया था। अधिवेशनके सभापति दीनशा एदलजी वाच्छा थे। गाधीजीको भी महासभा की कार्यवाहियोंमे भाग लेनेकी इच्छा थी। इसके दो कारण थे, एक तो यह कि कांग्रेसकी कार्यवाहियोंका प्रत्यक्ष अनुभव कर अपनेको वे हिन्दुस्तानकी सेवाके लिए तैयार करना चाहते थे,

और दूसरे भारतीय महासभामें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके हकोंके बारे वे एक प्रस्ताव रखवाना चाहते थे। अतः इन अभिप्रायोंसे अनुप्रेरित होकर गांधीजी भी बम्बईसे उसी ट्रेनसे कलकत्ताको रवाना हुए जिससे तत्कालीन महासभाके कर्णधार 'बम्बईके विना ताजके बादशाह' फिरोजशाह मेहता और महासभाके मनोनीत सभापति दीनशा वाच्छा आने वाले थे। गांधीजी अपने दक्षिण अफ्रीकाके प्रस्तावके लिए इतने बेचैन हो रहे थे कि वे मार्गमें ही फिरोजशाहसे; मिले और उनसे महासभामें प्रस्ताव पेश करानेका वचन ले लिया।

फिरोजशाहकी इस भेंटसे गांधीजीको एक नया अनुभव भी हाथ लगा। फिरोजशाहने अफ्रीकाके प्रस्ताव पर उदासीनताके साथ कहा था "प्रस्ताव तो हम जैसा तुम कहोगे पास कर देंगे, पर पहिले यही देखो न कि हमारे ही देशमें हमें कौनसे हक मिल गये हैं ? मैं मानता हूं कि जब तक अपने देशमें हमें सत्ता नहीं मिली है, तबतक उपनिवेशोंमें हमारी हालत अच्छी नहीं हो सकती।"

गांधीजीको यद्यपि तब यह वक्तव्य सुनकर परेशानी-सं. हुई थी, किन्तु मेहताके कथनकी सच्चाईमें उन्हें कोई त्रुटि न मालूम दी। बात सही थी, गुलाम मातृभूमि अपने उपनिवेशोंमें बसे भाईयोंको स्वतन्त्रता दिलानेमें समर्थ हो ही कैसे सकती थी ? गांधीजीने अपने अमूल्य जीवनके प्रारंभिक २१ वर्ष अफ्रीकाकी सेवामें ही लगाये, और यद्यपि बहुतसे अन्यायोंको उन्होंने मिटवाया भी, परन्तु आज १९४६-४७ में भी वहां ऐसे एशियाटिक लेन्ड टिनियोर बिल आदि पेश किये जा रहे हैं, और ऐसी

असमानता बरती जा रही है जो भारतीयोंके मान और मर्यादा एवं स्थितिको मेट देनेवाले है। यह सब हुआ, क्योंकि भारतवर्ष तब परतंत्र था। पर यदि उस समय भारत भी स्वतंत्र होता तो उसके राष्ट्र-जनोंके साथ विदेशी उपनिवेशोंमे कोई ऐसा अपमानका व्यवहार न कर सकता था! अब भारत स्वतंत्र है और इसलिए हमें आशा है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार दक्षिण अफ्रीका के भारतीयोंके हक और सम्मानको जब तक प्रतिष्ठित नहीं कर लेगी, चैन न लेगी।

१६०२ की महासभाका स्वरूप—

कलकत्ता पहुंचनेपर गांधीजीको उसी रिपन कालेजमे ठहराया गया जहाँ पर लोकमान्य भी ठहरे हुए थे। गांधीजीको महासभाके प्रबन्धको देखकर दुःख और आश्चर्य हुआ। हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय महासभा, जिसे वे हिन्दुस्तानके त्राणका स्रोत और एकमात्र साधन समझते थे, की आन्तरिक अव्यवस्था और शिथिलतासे उनका स्तम्भित और दुःखी होना स्वाभाविक ही था। ऐसी महासभा क्या कुछ कर सकेगी, वे यही सोचने लगे।

स्वयंसेवक—

महासभाके स्वयंसेवक भी उन्हें ढीले-ढाले मिले। उनमे गांधीजीने सेवाकी कामना तो देखी, किन्तु उस प्रकारकी शिक्षा और सेवाके अभ्यासका उनमें बिलकुल अभाव पाया। निःसन्देह, केवल इच्छा होनेसे ही कोई सेवक बनकर सेवा थोड़े ही कर सकता है। सेवक होनेके लिए तो पहले 'सेवा करना' जानना जरूरी है,

और सेवा धर्म कहते किसे है, इसका भी मर्म जानना आवश्यक है! लेकिन १९०१ की महासभाके स्वयंसेवक इन भावो और विचारोंसे अनभिज्ञ ही नहीं,अपरचित भी थे। अतः वे क्या सेवा किसी की कर पाते ? हाल यह था कि उन्हे जो भी काम सौंपा जाता, वे एक दूसरे पर टालते फिरते, और परस्पर लड़ भी लिया करते थे। इस तरह परस्पर विरोध रखनेवाले और काममे टालटूली करनेवाले देशकी सेवाके कैसे योग्य हो सकते थे। उनसे आशा ही क्या की जा सकती थी ? परन्तु गांधीजी की पैनी दृष्टिको यह मालूम करते देर न लगी कि दोष असलमे स्वयसेवकोका नहीं–महासभाका है। वे लिखते है कि सेवाके लिए "एक तो इच्छा होनी चाहिए और फिर अभ्यास। इन भोले भाले स्वय सेवकोंमें इच्छा तो बहुत थी, पर तालीम और अभ्यास कहाँसे हो सकता था ?" क्योकि जिस महासभाको उन्हे शिक्षा और दीक्षा देकर और अभ्यास कराकर सेवाके योग्य बनाना था, वह "सालमे तीन दिन होती और फिर सो रहती।" अतः गांधीजी इसी निष्कर्ष पर पहुचे कि "हर साल तीन दिनकी तालीमसे कितनी बाते सीखी जा सकती है ?"

प्रतिनिधि—

जो हाल गांधीजीने स्वयसेवकोका देखा, वही हाल उन्होंने कांग्रेसके प्रतिनिधियोंका भी पाया। देशके ये प्रतिनिधि सेवाका धर्म वा मर्म कुछ न समझते थे। अपना सारा काम वे दूसरोंके हाथोंसे ही किया करते थे। तब भला वे दूसरोकी क्या सेवा करते ? किन्तु इसका कारण भी यही था कि महासभासे उन्हे

कोई नियमित और स्वतन्त्र तालीम नहीं मिला करती थी, "उन्हें भी" गांधीजी लिखते हैं, "तीन ही दिन तालीम मिलती थी।"

छूआ-छूत—

महासभामें भाग लेने वाले प्रतिनिधियोंमें गांधीजी को जाति-पातिके भेदभाव भी बड़े जटिल और गहन रूपमें देखने को मिले। उन्होंने देखा कि लोगोंमें छुआ-छूतकी बीमारी बड़े उग्र और भयङ्कर रूपमें घर किये हुए है। यह जाति-भेद और विषम वर्ण-धर्म उन्हें असहनीय प्रतीत हुआ। गौतम बुद्धकी भांति उन्हें भी भासित हुआ कि यही 'भेद' हमारे दुःखोंका मूल है। समाजकी इस दुरावस्थाको देखकर सहसा उनके मुँहसे "ओफ" की मार्मिक पुकार निकल पड़ी। उनका यह ओफ जितना मार्मिक और करुणार्द्र था, उतना ही सारगर्भित भी। गांधीजीके हरिजन आन्दोलनका महान वृक्ष उनकी वेदनाके इस 'ओफ' से ही तो उगा और विकसित हुआ है।

गन्दगी—

गंदगी भी गांधीजीको महासभाके अधिवेशनमें विराट रूपमें देखनेको मिली। उन्होंने बतलाया है कि गंदगीकी वहाँ कोई हद ही न थी और पाखाने तो इतने गंदे थे कि वे लिखते हैं, "उनकी बदबूसे आज भी रोंगटे खड़े हो उठते हैं।" इस गन्दगीकी ओर गांधीजीने वहांके स्वयंसेवकोंका ध्यान आकर्षित भी किया, लेकिन वे कब ध्यान देनेवाले थे? अपितु वे गांधीजीके उस इशारेसे चकित ही हुए, और इसलिए उन्होंने गांधीजीको

उत्तर दिया कि "यह तो भंगीका काम है।" गाधी भी यह प्रत्युत्तर पाकर अवाक् हो उठे और उन्होंने तुरन्त ही झाडू मँगाकर खुदही अपना पाखाना साफ कर लिया।[1] अपने 'स्व' पर स्थित रहने वाले स्वावलम्बी गाधीको दूसरेके मुँह ताकनेकी आवश्यकताही क्या थी? वरन् अपने इस कार्यसे उन्होंने अज्ञान और अहकारके टीले पर खड़े स्वयसेवकोको अवश्य ही उनके थोथे वड़प्पनका आभास करा दिया होगा। एक बात यहाँ पर याद रखनी चाहिये कि महासभाके इन दृश्यो—स्वयं सेवकों और प्रतिनिधियो की अज्ञानता, महासभाकी क्षणिक-चेतनता, छूआछूतकी वीमारी और गन्दगी आदिको देखकर गाधीजीको तभी पता चल गया था कि भारतीय राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये उन्हें क्या-क्या न करना होगा? उन्हे यह भी मालूम हो गया था कि भारतको उठाने, जगाने और महान वनानेके लिये किन साधनों तथा उद्देश्योको सामने रखकर उनको देशके राष्ट्रीय आन्दोलनको उत्थित करना है? इसीलिये गाधीजीने जव आगे चलकर इस देशका कार्यभार अपने कन्धो पर लिया, तो जो साध्य और साधन उन्होने महासभा और देशके सामने रखे, वे सव हमे इन्हीं अनुभूतियो पर आधारित मिलते है।

अनुभवकी भूख—

गाधीजीका अपने भविष्य जीवनमे भारतकी महासभामे मिलकर देश की सेवा करनेका प्रारम्भसे ही-पूरा इरादा था, इसलिये वे महासभाको हर प्रकारसे समझ और बूझ लेना चाहते थे। वे चाहते थे कि महासभाके अन्दर पैठ कर उसकी

१—आत्मकथा, भाग ३ पृ २४६–२४७

वास्तविकताको वे निरख और परख ले। अतः महासभाके अधिवेशनको देखने भरसे वे तृप्त न हुए। उनकी इच्छा हुई कि वे महासभाके दफ्तरमें घुसकर और सेवाका कुछ भार अपने ऊपर लेकर सार्वजनिक कार्यका अनुभव भी प्राप्त कर ले। इस इच्छाके साथ दफ्तर में जानेपर उनको महासभाके सेक्रेट्रीने चिट्ठियोंके उत्तर लिखनेका काम दिया। सेक्रेट्रीको प्रारम्भमें आशा न थी कि यह युवक इस मामूली काम करनेको तैयार हो जायेगा। लेकिन जब गांधी सहर्ष उस छोटे कार्यको करनेके लिये, अफ्रीकाके भारतीयोंके नेता होते हुए तैयार होगये तो सेक्रेटरीको भी मालूम हो गया कि यह कोई 'सच्ची सेवा भावका युवक' है। निःसन्देह जो देश, समाज या राष्ट्रके सेवक होते है, उनमें अहंकार क्योंकर प्रवेश कर सकता है—वे तो दूसरोंकी सेवाके लिये हमेशा झुककर चलते है, निम्नको महान समझते हैं और कामको देवता मानते हैं, और इसीलिए ससार भी इन झुकनेवालोंको झुककर सिर पर रखता है।

महासभाके दफ्तर या आफिसमें काम करनेसे गांधीजी उसके तन्त्रसे परिचित हो गये। दफ्तरमें घुसनेसे उस समयके बड़े नेताओं—गोखले, तिलक, सुरेन्द्रनाथ आदिके भी वे निकट सम्पर्कमें आ सके। महासभाकी विशालता और भव्यताको देख-कर वे खूब प्रभावित हुये, किन्तु उन्हें साथ ही यह अनुभवकर दुःख भी हुआ कि महासभामें समयका बड़ा अपव्यय किया जाता है। उन्होंने देखा कि एक तरफ तो वहाँ एक आदमीके करनेके काममें उससे अधिक आदमी लगाये जाते हैं तो दूसरी तरफ बहुतसे जरूरी कामोंको कोई भी नहीं किया करता।[1] उन्हें इससे भी दुःख

---

1 वही पृष्ठ २४९

हुआ कि महासभामें राष्ट्रीय भाषाकी जगह केवल अंग्रेजीका उपयोग किया जाता है। पर उदार-गांधी इससे निराश न हुये। उन्हें महासभामें भविष्यके एकमात्र विशाल राष्ट्रीय संगठनके अंकुर स्पष्ट दीखते रहे, और तत्कालीक कमियोंके बारे उन्होंने यही सोचा कि शायद तबकी परिस्थितियोमें उससे अधिक सुधार होने संभव ही न होंगे। यही कारण है कि महासभामें जब गांधीजीका दक्षिण अफ्रीका का प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ तो उन्हें यह महसूस करके खुशी ही हुई कि 'महासभामें पास हो जानेसे उनके प्रस्तावको सारे भारतवर्षका, समर्थन प्राप्त हो गया है।'[1]

गोखलेके साथ एक मास---

कलकत्तेमें महासभा समाप्त होनेके बाद गांधीजीने एक महीना यहीं ठहरनेका विचार किया। गोखलेको जब मालूम हुआ कि गांधीजका विचार कलकत्तेमें रुकनेका है, तो उन्होंने गांधीजीको अपने ही साथ रहनेका आग्रह किया। गोखलेकी दूरदर्शी पैनी निगाहोंने मालूम कर लिया था कि गांधी वह युवक है, जिसके जरिये भविष्यमें महासभाका बहुत काम होगा।

लेकिन गोखलेसे निमंत्रण मिलनेपर भी गांधीजी अपनी स्वाभाविक संकोचशीलताके कारण दो दिन तक भी उनके यहाँ न जा सके। अन्तमें गोखले स्वयं इण्डिया क्लब पहुंचे (जहाँ गांधीजी ठहरे हुये थे) और उन्हें अपने साथ लेते आये। गोखलेने प्रेमभरी झिडकीके साथ गांधीजीको इस संकोचशीलताको त्याग देनेके लिये कहा, और इस बातके लिए उन्हें प्रेरित किया कि "जितने लोगोंके

१ वही, पृष्ठ २५२

सम्पर्कमें आ सको, तुम्हें आना चाहिये। मुझे तुमसे महासभाका काम लेना है।"

गोखलेके साथ गांधीजीकी यह मित्रता बढ़ती ही चली गई। गोखले उन्हें अपने छोटे भाईकी तरह प्यार करते और अपनी कोई बात उनसे गुप्त न रखते थे। गांधीका हृदय उनके इन व्यवहारों पर मुग्ध हो उठा। किन्तु गोखले गांधीजीके जीवनकी नियमितता, उद्योगशीलता और स्वावलम्बनकी आदतको देखकर खुद भी बहुत प्रभावित थे। उन्हें तभी विश्वास हो गया था कि गांधीमें महान् व्यक्ति छिपा है। इसी कारण गोखले बड़े प्यारसे गांधीजीका उन सब बड़े आदमियोंसे परिचय करा दिया करते जो उनसे मिलने आया करते थे। प्रोफेसर डा० प्रफुल्लचन्द्र रायके साथ भी गोखलेने ही गांधीका प्रथम परिचय करवाया था जो अन्त तक कायम रहा।

गोखलेके सपर्कने गांधीजीके लिए एक सिद्धहस्त गुरुका काम किया। गांधीजी गोखले की कार्यपद्धति से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि गोखलेके समयका कोई भी क्षण व्यर्थके कामोंमें नहीं जाता, और उनके समस्त कार्य और बातें केवल देशके सबंधमें ही हुआ करती है। हिन्दुस्तान की गरीबी और पराधीनता उन्हें सर्वदा बेचैन किये रहती है, तथा देश की स्वाधीनता ही उनके सामने एक और निश्चित लक्ष है। निःसन्देह गांधीजीका यह बड़ा ही सौभाग्य था कि उन्हें अपने मुल्कके एक ऐसे महान और राष्ट्रनिर्माताके चरित्र और गुणोंको देखने तथा समझने या अध्ययन करनेका इतने निकटसे अवसर प्राप्त हुआ। उन्हें प्रत्यक्ष हो गया कि अपने मुल्क की सेवा

करने के लिए जिसका कि वे दृढ इरादा कर चुके थे, किन गुणो और उपायोका अवलम्ब लेकर उनको कार्यक्षेत्रमे उतरना और आगे बढना है।

वडे आदमियोसे भेट—

गोखलेके साथ रहते हुए गाधीजी कलकत्तेके कई ईसाई और ब्रह्म समाजके नेताओ एवं गणमान्य व्यक्तियोसे भी मिलते रहे और सबको दक्षिण अफ्रीका की स्थितिसे परिचित कराते गये। गाधीजीने इन भेटोंका जिक्र करते हुए लिखा है :—"इसी महीनेमे मैने कलकत्ते को एक-एक गली की खाक छान डाली। प्रायः पैदल ही जाता था। इसी समय मै न्यायमूर्ति मित्रसे मिला। सर गुरुदास वनर्जीसे भी मिला। इन सज्जनो की सहायता दक्षिण अफ्रीकाके कामके लिए जरूरी थी।"[1] इन भेटोके साथ साथ गांधीजीने धार्मिक स्थानोका भी भ्रमण किया। एक दिन गांधीजी काली मदिर भी गये। मंदिरको जाते समय रास्तेमे उन्होने वलिदानके वकरोके कतारको जाते हुए देखा। गांधीका वैष्णव हृदय निरीह वकरोंकी भोली सूरतोको देखकर भीतर ही भीतर कराह उठा। मंदिरमें पहुंचने पर उनका हृदय वहाँ आनेकी भूलपर और भी क्षुब्ध हुआ। वे हत्याके उस निर्मम और करुण दृश्यको देख न सके। वे लिखते हैं:—"हम मन्दिरमे पहुँचे। सामने लहूकी नदी वह रही थी। दर्शन करनेके लिए खड़े रहनेकी इच्छा न रही। मेरे मनमे वडा क्षोभ उत्पन्न हुआ। मै छटपटाने लगा।" क्यो-

---

1 वही पृष्ठ २५८

न उनका विश्व प्रेमी करुण हृदय छटपटाता,—वह हृदय जो सब जीवोंके प्रति समान स्नेह रखता है, जो जीवोंमे कोई अन्तर नहीं मानता, जो बकरेके प्राणोंका मूल्य मनुष्यके प्राणोंके मूल्यसे कम नहीं आँक सकता। उन्हें इस बातसे और भी खेद हुआ कि "ज्ञानी, बुद्धिमान, त्याग वृत्ति और भावना-प्रधान बगाल क्योंकर इस हत्याको सहन कर रहा है।" उन्हें दुःख हुआ कि मनुष्य देवताओंके बहाने अपने शरीरके पोषण और जिह्वाके स्वादके लिए असहाय बकरोंकी हत्या किया करता है, और अपने पापसे देव मन्दिरको भी कलंकित करता फिरता है।

गांधीजीका विश्वास है कि बकरोंको इस क्रूर होमसे बचानेके लिए बहुत आत्म-शुद्धि और त्यागकी आवश्यकता है, और यद्यपि उस हदकी आत्म-शुद्धि और त्याग उन्हें अपनेमे नहीं प्रतीत हुई जिससे वे स्वय इस काम को उठा सके, लेकिन उनकी आशा है कि 'कोई ऐसा तेजस्वी पुरुष अथवा सती नारी अवश्य कभी न कभी भूतल पर अवतरित होगी जो इस महापातकसे मनुष्य को बचायेगे, निर्दोष जीवोंका त्राण करेंगे और मन्दिरको शुद्ध करेंगे।'[1]

काली मन्दिर को देखनेके बादसे बगाली जीवनका अध्ययन करनेके निमित्त गांधीजी वहाँके लोगों और धार्मिक सस्थाओंका बारीकीसे निरीक्षण करने लगे। गोखलेकी कृपा और सहयोगसे वहाँके बड़े लोगों और बड़े परिवारोंके साथ उन्हें सम्बन्ध स्थापित करनेमे देर न लगी। वे कई प्रमुख ब्रह्मसमाजियोंसे, ईसाइयोंसे तथा स्वामी विवेकानन्द और बहन निवेदितासे भी मिले। गांधीजी

१—वही पृष्ठ, २५९-२६०।

बहन निवेदिताके रहन-सहनके ढङ्ग और उनकी शानको, देखकर भौचक्के रह गये, पर साथ ही उन्हे यह देखकर बडी खुशी भी हुई कि निवेदिताका 'हिन्दू धर्मके प्रति अगाध प्रेम है।'

इस प्रकारसे गोखलेके साथ रहते हुए सारा महिना गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकाके प्रचार-कार्य और धार्मिक संस्थाओंके अध्ययन करने तथा लोगोंसे भेट करनेमें व्यतीत किया। उनके जीवनका यह एक मास जितना सुखप्रद रहा उतना ही शिक्षाप्रद भी। निःसन्देह यह महीना उनके जीवनका 'चिरस्मरणीय' महीना था।

इसी वीच गांधीजीने पहले पहल ब्रह्मदेशकी भी यात्राकी। वहॉ की अवस्था भी उन्हे हिन्दुस्तानकी ही भॉति गिरी हुई दिखाई दी। लेकिन वहॉ की स्त्रियोमे उन्होने पुरुषोंसे भी अधिक उत्साह और शौर्य पाया। ब्रह्मदेशसे गाधीजी जल्दी ही लौट आए। उनका वंगालका काम भी पूरा हो चुका था, इसलिए गाधीजीने अव गोखलेसे राजकोट लौट जानेके लिये आज्ञा मॉगी।

प्रथम वार तीसरे दर्जे मे--

वगालसे राजकोट आते समय गाधीजीने प्रथम वार रेलके तीसरे दर्जेमे सफर करनेका निश्चय किया। उन्हे गरीवों और दुःखियोके दुःखोका इलाज करना था और इसीलिए वे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंकी हालत और दुःखोको स्वय देख और समझ लेना चाहते थे। गोखले पहले तो उनके इस विचार पर हॅसे, किन्तु उनकी आन्तरिक भावनाओंको समझ लेनेपर उनके विचारको खूब पसन्द किया और सहराया। गोखलेने उन्हे

सफरके लिए एक पीतलका डिब्बा भी भोजन ले जानेके लिए भेट किया। इस प्रकार थोडासा जरूरी सामान साथ लेकर गांधीजी राजकोटके लिए गाडीके तीसरे दर्जेमे सवार हो चल दिये। तीसरे डब्बोमे प्रथमतः गांधीजीको अपार गंदगी ही देखनेको मिली। गांधीजीके इस अनुभव करनेके ४०,४५ वर्षके बाद अब भी तीसरे दर्जोंकी हालतमे गंदगीके लिहाजसे कोई सुधार नही हो सका है। गांधीजी खुद कहा करते हैं कि अब भी हालत करीब वैसी ही है। उन्होंने लिखा है कि—"तीसरे दर्जेके यात्रियोको भेड़ बकरी-सा माना जाता है, और उनके बैठनेके डब्बे भी भेड बकरियोंके लायक होते है।"

गांधीजीकी इस यात्रामें काशी, आगरा, जयपुर और पालनपुर आदि नगर मार्गमे पडते थे। इन सब नगरोंमे वे अनुभव करनेके लिए एक-एक दिन रुके। प्रत्येक नगरमे वे बहुधा साधारण यात्री की तरह धर्मशालाओं या पण्डोंके घरपर ठहरे। ऐसा करनेके दो कारण थे। एक तो ऐसी जगहोंपर ठहरनेसे साधारण लोगोंके सम्पर्कमे आनेसे उनकी अवस्था या स्थितिका अध्ययन किया जा सकता था, और दूसरे इन जगहोमे ठहरनेसे खर्च भी कम पडता था। उनकी मितव्ययता इसीसे साबित है कि कलकत्तासे राजकोटकी इस लंबी यात्रामे रेल किराये सहित उनके कुल इकतीस रुपये खर्च हुए। अल्प-व्यय और अल्प-संचयके सिद्धांतो का मर्म गांधीजीने पूर्ण रूपसे समझ लिया था। वे अच्छी तरह जान गये थे कि ऐश्वर्यका पूजारी और धनका लोभी होकर समाज और संसारकी सेवा नहीं की जा सकती। निःसन्देह ऐश्वर्य और धनका प्रेम हमें जन-उत्पीड़क तो बना सकता है, जन-रंजक मुश्किल ही।

काशीमे एक दिन—

अपनी यात्रामे एक दिनके लिए, जैसा कि गाधीजी इरादा किये थे, काशीमे भी रुके। यहाँ भी वे एक पण्डेके घरही ठहरे। यथा विधि गंगा स्नानकर और पूजासे निवृत्त होकर गाधीजी दिनमे विश्वनाथके दर्शन करने गये। वहाँ जाकर और वहाँकी गदगी तथा अशान्तिको देखकर गाधीके भावुक हिन्दू हृदयको गहरी चोट लगी। उन्हे आशा थी कि ऐसे स्थान-भगवानके निकेतनमे पहुचकर, मनुष्यको कुछ देर ध्यानावस्थित होकर आत्मचिन्तन करनेका अवकाश प्राप्त हो सकेगा, किन्तु यह आशा दुराशा ही सावित हुई। अशाति और मलिनताके सिवा उन्हे मन्दिरमे कुछ हाथ न लगा। इस दुर्दशाका कारण निःसन्देह मन्दिरके सचालकोकी कर्तव्यहीनता है। गाधीजीने स्वय लिखा है—"संचालकोका कर्तव्य यह है कि काशी विश्वनाथके आस-पास शान्त, निर्मल, सुगंधित, स्वच्छ वातावरण-क्या वाह्य और क्या आन्तरिक-उत्पन्न करें, और उसे वनाये रखे।" पर संचालक जो केवल अपने फायदेके सिवा कभी कुछ सोचतेही नहीं ऐसा क्यो करने लगे। भारतकी स्वतंत्र सरकार जव मन्दिरोंका राष्ट्रीयकरण करे तभी ऐसा होना संभव होसकता है। मदिरोंका संचालन जव राष्ट्रीय सरकार अपने हाथमें ले और मदिरकी पूजाके लिये केवल वेतन भोगी पण्डे नियत कर शेष मंदिरकी देखरेखका कार्य सरकारी अधिकारियोंके सुपुर्दकर देवे तभी हमारे देव-मंदिरोकी अवस्थामे सुधारकी कल्पनाकी जा सकती है।

विश्वनाथके मंदिरके बाद गाधीजी 'ज्ञान-वापी' गये, पर वहाँ भी उन्हे निराश होना पड़ा। वही गदगी वहाँ भी थी। अपने देवस्थानोंकी ऐसी भ्रष्टावस्थासे गाधीका मन अपनेहीमे घुटने सा लगा। वे यहाँ ईश्वरकी खोजमे आये थे, पर मिली गंदगीका वलमप! लेकिन इस 'गंदगी' से भी गाधीके महान हृदयको एक महान अनुभवकी प्राप्ति हुई। उन्हे इससे ईश्वरकी महान करुणाका ज्ञान हुआ। वे लिखते है—"परमात्माकी दयापर जिसे शंका हो, वह ऐसे तीर्थ क्षेत्रों को देखे। वह महायोगी अपने नामपर होनेवाले कितने ढोग, अधर्म और पाखण्ड इत्यादिको सहन करते है।"[1] सच है, महानको सर्वत्र और सब वस्तुओंमे—शुद्ध अथवा अशुद्ध, मलिन या अमलान. महानता और श्रेष्टताकी ही झलक देखनेको मिला करती है।

मिसेज ऐनी बेसटके दर्शन—

यह भी सही है कि दूसरेको महान समझकर पूजनेवाला ही खुद महान होता है। झुकनेवाला ही ऊँचा उठता है, और दूसरेका आदर करनेवाला ही जगतमे आदर पाता है। गांधीजी जब काशीमे आये मिसेज बेसंट भी वहीं थीं। अतः मंदिरोंकी सैर करनेके बाद गाधीजी उस महान नारीके भी दर्शन करने गये, केवल दर्शन करनेको, क्योंकि बेसेंट एक उच्च भावनाओं और कर्मकी महिला जो थीं। और बेसंटने भी उन्हें फौरन दर्शन दिये, यद्यपि वह बेचारी तब अस्वस्थ थीं। यह देख गाधी उनका बडा एह-सान मानते हुए झुककर बोले—"तबीयत खराब होते हुए भी आपने

१ वही पृ २६७

मुझे दर्शन दिये, केवल इसीसे मै सन्तुष्ट हू।[1] अधिक कष्ट मैं आपको नही देना चाहता," और इतना कहकर विनम्र गाधी उनसे विदा लेकर राजकोटको चल दिये।

राजकोट और वम्वईमे—

गाधीजी जैसा कि उनका इरादा था, पहले राजकोट आये। राजकोटमे पहुँचते ही उन्हें वकीलीका काम तो मिल गया, किन्तु उनकी अधिक इच्छा वम्वईमे वसनेकी थी। गोखलेने भी उन्हें यही सलाह दी थी क्योकि वम्वईमे वैरिस्टरीके कामके साथ-साथ गाधीजी सार्वजनिक जीवनमे भी भाग ले सकते थे, और महासभाका भी वहा पर कुछ न कुछ काम कर सकते थे। उनके सच्चे हितैषियोको भी उनकी चेष्टाओंसे यह विदित होगया था कि गाधी अवश्य 'लोकसेवा' के लिए पैदा हुए है, और इसलिए वे भी चाह रहे थे कि गांधीजीको इसकी साधनाके लिए वम्वईमे ही रहना चाहिए। अतः गाधीजी कुछ दिन राजकोटमे ठहरनेके पश्चात् वम्वई चले आये और मार्च १९०२ मे वहाँ पर पेईन गिल्वर्ट और सयानीके आफिसमे "चेम्वर्स" किराये पर लेकर रहने लगे। यह तो उनका आफिस हुआ, और रहनेके लिए उन्होने चिरगाँव और वादमे साताक्रुजमे एक सुदर वगला किराये पर लिया। इस प्रकार गाधीजी अव जमकर वैरिस्टरी करनेके लिए तैयार हो गये। किन्तु उन्हें तव यह न मालूम हो सका कि वे दो चार मुवक्किलोंकी ही नही, पूरे राष्ट्रकी वकालत करने और राष्ट्रकी तरफसे लड़ने वा पैरवी करनेको ईश्वर द्वारा भेजे हुए देवदूत हैं। उनको तव यह भी

---

१ वही पृष्ठ, २१०

नहीं मालूम था कि उन्हे तो जहाँ कही भारतीय राष्ट्र और भारतीयोंकी पुकार आमंत्रित करेगी वहाँ ही दौड़ते रहना पड़ेगा। अतः अभी गाधीको मुश्किलसे बबईमे स्थिर हुए तीन चार महीने हुए होंगे कि यकायक दक्षिण अफ्रीकासे तार आगया—"चेम्बरलेन यहाँ आरहे है, तुम्हे शीघ्र आना चाहिए।" और वचनानुसार गाधीजीने लिख भेजा—"खर्च भेजिये, मै आनेको तैयार हू।"[1] तुरतही रुपये पहुँच गये, और गाधीजी एकदम आफिस-वाफिस समेटकर, अपने परिवारको बबईमे ही छोड़ दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना होगए।

इस यात्राके साथ गांधीजीके दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासका तीसरा प्रकरण शुरू होता है।

१—वही, पृष्ठ, २७६।

१०

फिर दक्षिण अफ्रीकामें

अध्याय ८

आशा विफल गई—

बोअर युद्ध के खतम होने पर गाधीजी सन् १९०१ में यह आशा लेकर हिन्दुस्तान लौटे थे कि दक्षिण अफ्रीका मे अब उनका काम समाप्त हो चुका है। उन्होने समझा था कि युद्ध के सकट काल मे अगरेजो को हिन्दुस्तानियो ने जो मदद पहुचाई, और उससे भारतीय और अंगरेजोके बीच जो मधुर संबध स्थापित हुआ, उसके परिणामस्वरूप भविष्य मे वहाँ (दक्षिण अफ्रीका) भारतीयो पर गोरी सरकारकी तरफसे किसी प्रकार का अत्याचार नही हुआ करेगा। उनका यह विश्वास इतना दृढ था कि यकायक दक्षिण अफ्रीकासे तार द्वारा बुलावा आने पर भी वे समझ न सके कि दक्षिण अफ्रीकाका किया कराया सब साफ हो चुका है। तार मिलने पर गाधीजीने यही समझा था कि शायद थोडी बहुत गडबडी होगी ट्रान्सवालमे, और उसे ४-६ महीनेमे ठीक-ठीक कर वे पुनः जल्दी ही बबई लौट आयेगे। इसीलिये १९०२ के आखिर मे बुलावे के आने पर वे अकेले ही दक्षिण अफ्रीका को गये और परिवार को बंबई मे ही रहने दिया। उन्हे तब इस बात की कुछ खबर ही न थी कि वहाँ उन्हे अनिश्चित समय तक रहना पड़ेगा।

गांधीजी स्तब्ध हुये—

लेकिन जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका पहुचे तो उन्हें मालूम हो गया कि उनकी आशा और कल्पना भ्रमपूर्ण थीं। उन्होंने देखा और वे स्तब्ध थे कि बोअरो के हटानेके बाद ब्रिटिश सरकार भारतीय प्रजाके साथ अकथनीय निन्दा और अत्याचारसे पूर्ण वर्ताव कर रही है। युद्धके उपकारोंसे पसीज कर उस समय गोरोंने जो गीत गाये "आखिर हिन्दुस्तानी है तो साम्राज्यके वारिस ही" भूला दिये जा चुके थे। गोरी सरकार के एजेण्ट जो उस समय यह कहते थे कि बोअरोंके निकाल देने और हटा देनेके बाद भारतीयोंकी दशा बिलकुल सुधर जायगी, नितान्त असत्य साबित हुआ। गांधीजीको वहांकी स्थितिका निरीक्षण करने पर अब यह समझते देर न लगी कि ब्रिटिश सरकार बोअरोकी सरकारसे भी गई बीती है, और उन्हें भारतीयोंके गौरव और अधिकार-लाभके लिये फिरसे संघर्ष करने पड़ेंगे। फलतः गांधीजी अब भावी संघर्षकी चिन्ता में संलग्न हो गये।

नेटाल डिप्युटेशन—

भारतीयोंने गांधीजीको अपना त्राता और सच्चा सलाहकार समझ कर ही अपने दुःखोंके निवारणार्थ नेटाल बुलाया था। उस समयके औपनिवेशिक मंत्री मि० चेम्बरलेन तब अफ्रीकामें आये हुये थे। उनका उद्देश्य वहांके अंग्रेजों और बोअरोंसे पाण्ड एकत्रित करना था। जिस समय गांधीजी नेटाल पहुंचे, चेम्बरलेन भी वहीं थे और वहांसे फिर ट्रान्सवाल जाने वाले थे।

भारतीयोंने तै किया था कि अपने हकों और दुःखोंकी सुनवाईके लिये चेम्बरलेनके पास एक डिप्युटेशन भेजा जाय और गांधीजी उसका नेतृत्व करें। उक्त निश्चयके अनुसार गाधीजी भारतीयों की अर्जी लेकर साथी प्रतिनिधियोंके समेत नेटालमें चेम्बरलेन से मिले। चेम्बरलेन जैसा कि ऊपर कहा है ३॥ करोड़ पौण्ड लेनेके हित दक्षिण अफ्रीका आये हुये थे, और यह रुपैया अंग्रेजों तथा बोअरोंको खुश रखकर ही वे ले सकते थे। अतः अंग्रेज तथा बोअरोंको इस समय नाखुश करना उन्हें अभीष्ट न था। फलतः भारतीयोंकी अर्जीको अनसुनी कर श्री चेम्बरलेनने ठकुर सुहातीका सा उत्तर देते हुये भारतीयोंको नेक राय दी कि "जिस तरह हो सके आपको यहाँके गोरोंको राजी रखकर ही रहना है[1]।" इस नेकनीयतीकी अंतरनिहित भावनाको समझनेमें गांधीजीको देर न लगी। वे चेत गये कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरे निःसन्देह हिन्दुस्तानियोंके हकोंको नष्ट करनेपर तुले हैं, और इसलिए उन्हें फिरसे भारतीय स्वत्वोंकी रक्षाके लिये स्वार्थी, मदान्ध और रंग-द्वेषी अँगरेजी सरकारसे मजबूतीके साथ भिड़नेके लिये कमर कस लेनी चाहिये।

ट्रान्सवाल को—

नेटालसे श्री चेम्बरलेन ट्रान्सवाल पहुचे। वहाँ के हिन्दुस्तानियोंने भी गाधीजीको ट्रान्सवाल आने और उनके हकों की अर्जी तैयार कर भारतीय पक्षको श्रीचेम्बरलेनके सामने उप-

---

१—आतमकथा–भा० ४ पृ० २७९

स्थित करनेको आमन्त्रित किया। गाधीजी तैयार हो गये लेकिन प्रिटोरिया पहुचना तबकी परिवर्तित स्थितिमे सरल काम न रह गया था।

गाधीजीकी दिक्कत—एशियाटिक महकमा—

बोअर युद्धके समय लोग ट्रान्सवालको उजाड छोड़कर भाग खड़े हुए थे। अतः जब उस पर पुन. अगरेजोंका कब्जा हुआ तो उन्होने यह हुक्म निकाला कि भागे हुए ट्रान्सवालवासी सरकारी परवाना लेकर ही वहा आ सकते हैं। इन भागे हुओ मे गोरे भी थे और हिन्दुस्तानी भी। किन्तु नेटालकी रग-द्वेषी गोरी सरकार गोरोको तो तुरन्त परवाना दे देती थी, पर हिन्दुस्तानियोंके लिये परवाना पाना बहुत ही विकट बात थी। असलमे वहाके गोरे अधिकारी काले हिन्दुस्तानियोंको ट्रान्सवालमे पुनः बसने और लौटने न देना चाहते थे। यही कारण था कि हिन्दुस्तानियोको तंग करने और उनके प्रवेश पर रोक थाम लगानेकी हर प्रकारसे कोशिशकी जाने लगी थी। इस ध्येयकी पूर्तिके लिये अफ्रीकाकी सरकारने एक एशियाटिक महकमा खडा कर दिया था। इस महकमेके पास ट्रान्सवाल आने वाले भारतीयोंको पहिले अर्जी देनी पडती थी और जब यह महकमा इस बातकी पुष्टि कर देता कि हा उक्त हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालका पुराना बाशिन्दा है तभी परवाना देने वाला अधिकारी उस हिन्दुस्तानीको परवाना देता था। अत. हिन्दुस्तानियोंको इस कारण परवाना मिलने मे बहुत दिक्कत पडने लगी। हिन्दुस्तानी होनेसे गाधीजीको भी इस महकमेसे परवाना

मिलना सहज बात न थी। किन्तु प्रिटोरिया पहुचनेकी जल्दीसे उन्होने आखिर एक उपाय ढूंढ ही निकाला। वे डरबनके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टसे मिले, जो उनके पुराने मित्रोंमेसे था, और उसकी मददसे परवाना देने वाले अधिकारीसे इच्छित परवाना हासिल कर नियत समय पर १ जनवरी १९०३ को प्रिटोरिया आ पहुंचे। वेचारा ऐसियाटिक महकमा जो गाधीजीको उलझानेके फेरसे था, देखता ही रह गया। उन्हे ताज्जुब था कि विना उनकी अनुमतिके गाधीको परवाना मिल कैसे गया? वे सोचने लगे कि गांधी ऐसे ही तो नहीं चला गया है? यदि ऐसा हो तो उसे फॅसालिया जावे? लेकिन जब वेचारोंको डरबनसे यह सूचना मिली कि गाधीके पास आवश्यक परवाना है तो वे दिल मसोस कर चुप हो गये। लेकिन उनकी कुचेष्टाओका जाल फिर भी चलता ही रहा।

एशियाटिक विभागकी दुष्टता—

गाधीजीसे गोरे पहलेहीसे चिढते थे, क्योंकि गांधी ही वह व्यक्ति था जिसने गोरी निरकुशताके खिलाफ प्रथमतः धर्मयुद्ध छेडा और भारतीयोको पश्चिमी पशुवलसे न डरनेका मन्त्र पढा कर सीना खोलकर चलना सिखलाया था। गोरे एशियाटिक विभागके कर्मचारी वड़े दुष्ट, क्रूर, रिश्वतखोर एव उद्दड थे। इसमे वे लोग घुसे हुए थे जो लडाईके समय भारत और लंकासे फौजके साथ वहॉ आये थे और लड़ाई समाप्त होने पर दक्षिण अफ्रीकामे ही वस गये थे। इस प्रकार एशियासे आये हुये ये अगरेज अफसर वडे ही निरंकुश ढगसे हिन्दुस्तानियोके साथ वर्ताव किया करते थे। उनकी इस निरंकुशताने गाधीजीके

शब्दोंमे हिन्दुस्तानियोंकी हालत "सरौतेमे सुपारीकी तरह कर दी थी"।[1]

यह एशियाटिक महकमा वस्तुत हिन्दुस्तानियोंको दबानेके लिए ही खोला गया था। इसलिए उसके अधिकारियोंको यह सह्य न था कि गाधी जैसा तेजस्वी और निर्भीक व्यक्ति दक्षिण अफ्रीकामे घुसकर उनके सुखका कॉटा बने। वे खूब समझते थे कि यदि गाधी दक्षिण अफ्रीकासे चला जाय तो बाकी भारतीयोंको भयातुर करके मनचाहे और मनमाने ढगसे दबाया और कुचला जा सकता है। इसीलिए प्रिटोरियाके भारतीय डेप्युटेशनमे जब एशियाटिक महकमेके अफसरने गाधीका नाम देखा तो उसके बदनमे आग-सी लग गयी। उसने दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय नेता सेठ तैयबको बुलाकर इस बातके लिए बुरी तरह कोसा कि क्यो उन्होने अभिज्ञ गाधीको वहाँ बुलाया है जब कि एशियाटिक महकमा उनकी रक्षाके लिए वहा पर मौजूद था। इस उदण्ड अफसरने गाधीजीके साथभी बहुत निन्दनीय व्यवहार किया। गाधीजीको आफिसमे बुलाकर उसने बडी धृष्टताके साथ उन्हें देश लौट जानेकी धमकी दी और कहा—"आप मि० चेम्बरलेनसे नहीं मिल सकते।" गाधीजीको इस प्रकार अपमानित करनेके पश्चात उसने वहाँके भारतीयोंको भी धमकाते हुए आगाह किया कि "गाधीको ट्रान्सवालसे बिदा कर दो।" इस तरह हर प्रकारसे पूरा जोर लगाकर उक्त अफसरने गाधीजीका नाम डेप्युटेशन (शिष्टमंडल) से अलग करवाके ही छोडा। पर इस प्रकार बुरी तरहसे अपमानित किये जानेपर भी गाधीजी

---

१ वही पृष्ठ २८३

अपनी कौम और अपने भाईयोंकी खातिर चुपचाप शिवकी भाँति शांतिके साथ अपमानके सारे कालकूटको पी गये। दक्षिण अफ्रिकाके भारतीय नेताओंको भी गाधीके अपमानमे 'कौम' का अपमान प्रतीत हुआ। इसलिए उन्होंने सोचा कि जब उनके प्रतिनिधि गाधीजीको इस बुरी तरहसे अपमानित किया गया है तो उन्हें डेप्युटेशन (शिष्टमडल) ही न ले जाना चाहिए। किन्तु धीर-वीर गाधी जोशमे आकर अथवा रोपमे पडकर क्यों काम बिगाड़ने देते ! उन्होने भारतीयोको समझाया और बुझाया तथा कौमके हित हर प्रकारके व्यक्तिगत अपमानोको सहनेके लिए प्रेरित कर अन्तमे उन्हें शिष्टमण्डल लेजाने के लिए तैयार कर लिया। निःसन्देह गाधी वह निरभिमान व्यक्ति है, जो व्यक्तिगत 'अहँ' और स्वाभिमानके आवेग और आवेशमे पड़कर कर्तव्यको नहीं भुला दिया करते। उन्होने हमेशा तटस्थ रहकर काम किया है। मि० जिन्ना द्वारा लाख अपमानित किये जाने पर भी देशके खातिर वे १८ बार उनसे मिलने गये है।

गाधीजीको शिष्टमण्डलमे न आनेको चेम्बरलेनने भी कहलवा दिया था। इससे स्पष्ट है कि गांधीजीसे वहाँके गोरे कितने सत्रस्त और चिढ़े हुए थे। गाधीकी मानो उन्हे छूतसी लगती थी।

अन्तमे गाधीजीकी सलाहपर भारतीय शिष्टमण्डल श्री जार्ज गाडफ्रेके साथ मि० चेम्बरलेनसे मिला। लेकिन उनसे मिलना न मिलना बराबर था। गाधीजी स्वयं उनसे न्याय पानेकी कोई उम्मीद नहीं रखते थे। क्योकि उन्हे मालूम हो चुका था कि

मि० चेम्बरलेन दक्षिण अफ्रीकाके ब्रिटिश सचिवोंके पजेमे है और गोरोको असतुष्ट करनेवाली कोईभी बात करनेको तैयार नहीं है। ऐसी स्थितिमे उनसे कहाँसे न्याय मिलता, लेकिन फिरभी गाधीजीने उनके पास डिप्युटेशन भिजवाया था, केवल इसलिए कि उनसे और भारतीयोसे 'भूलसे या स्वाभिमानके कारण न्याय प्राप्त करनेमे एक भी योग्य कदम लेनेमे भूल न हो।'[1] अत डिप्युटेशन चेम्बरलेनको मिला लेकिन हुआ वही जैसा गाधीजीने सोचा था। न्यायकी दुराशाको खोकर भारतीय डिप्युटेशन आखिर निराश होकर खाली-खाली लौट आया।

गाधीजीकी प्रतिज्ञा --

शिष्टमण्डल भलेही निराश हुआ हो, लेकिन गाधीजी न निराश हुए और न गोरे मंत्रियो एवं एशियाटिक महकमेकी नृशसता से ही भयभीत हुए। किन्तु चेम्बरलेनके व्यवहारसे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोका यह सोचकर दुःखो होना ठीक ही था कि गत बोअर युद्धमे मदद पहुँचानेके पुरस्कारमे उन्हे ब्रिटिश सचिवसे केवल 'अन्याय' ही हाथ लगा। पर गाधीजी मुडकर पीछे देखना पसन्द नहीं करते। उन्हें तो एक ही चिन्ता रहा करती है— आगे कैसे बढे? अतः उन्होंने यह सब देखकर यही महसूस किया कि दक्षिण अफ्रीकामे हकोंको प्राप्त करने और गोरे अफसरोके अत्याचारोंको छिन्न-भिन्न करनेके लिये उन्हे अब ट्रान्सवालमे ही डट जाना चाहिए, और तब तक डटे ही रहना

---

१ दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह, सस्ता साहित्य मण्डल, प्रथम सरकरण पृष्ठ १२२

चाहिये जब तक कि उनका उद्देश पूरा नही हो जाता। फलतः इस भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने अपने 'करो या मरो' के सिद्धान्तानुसार उक्त उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिए अपनेको होम तक कर देनेका पक्का इरादा कर लिया। गाधी अब धीरे धीरे भीतर ही भीतर 'ऑधी' का रूप ग्रहण करने लगा था, लेकिन गोरे अपने मदमें भूले वेखबर थे। परन्तु मन उनके सशंक अवश्य थे।

ट्रान्सवालमे वसनेका निर्णय कर लेने पर गाधीजीने तदनुसार वहाॅ वकालतके लिए अर्जी पेश कर दी। गाधीजीको आशा न थी कि उनकी अर्जी मजूर होगी, लेकिन उनकी आशा के विरुद्ध ट्रान्सवालकी वड़ी अदालतने उनकी अर्जी स्वीकार कर उन्हे वकालतकी सनद प्रदान करदी। सनद प्राप्त हो जाने पर गाधीजीने जोहान्सवर्गमे अपना आफीस खोला, क्योंकि यहाॅ पर भारतीय सबसे अधिक संख्यामे रहते थे और इसलिए कौमकी सेवाके लिए वही अनुकूल केन्द्र पड़ता था। इसके अलावा बुराईके केन्द्र जिस एशियाई महकमा और उनके कर्मचारियोंसे गाधीजीको लोहा लेना था, उसका सबसे वडा थाना भी जोहान्सवर्गही मे था।

गाधीजीने यहा पर आते ही भारतीयोको सगठित कर उन्हे एक सूत्रसे वाधनेके लिए भी प्रयत्न करना शुरू कर दिया। अतः इस उद्देश्यको लेकर वे विभिन्न जातियोंके नेताओं (Communal leaders) से मिले और ट्रान्सवालमे जल्दी ही 'ट्रान्सवाल ब्रिटिश-इण्डियन एसोसियेशन' नामसे भारतीयोकी एक सस्था स्थापित करवा दी। इस सस्थाके वे स्वय अपने दक्षिण अफ्रीकाके

प्रवासकालके अन्त तक आनरेरी सेक्रेटरी और प्रधान कानूनी सलाहकार बनकर रहे।

एशियाई महकमेकी करतूत—

जोहान्सबर्गमे रहते हुए गांधीजीको एशियाई महकमेकी अनेक काली-करतूतों और गंदगीका रोजही कटु अनुभव होने लगा। एशियाई महकमा, जो अपनेको भारतीय हकों वा एशियाई लोगोंके हकोंका हितू बतलाता था, वास्तवमें उनका एक जबर्दस्त शोषक और भक्षक था। इस महकमेके अफसर खूब घूस लेकर जेब गरम किया करते थे, और अपनी मौजमें जिन लोगोंको आनेका अधिकार होता, उन्हे तो दाखिल न होने देते, लेकिन जिन्हे प्रवेशका अधिकार न था, उनसे सौ-सौ पौण्ड घूस लेकर अन्दर कर लिया करते थे। गांधीजी यह सब देख और सुनकर बेचैन हो उठे। वे इस बुराईको दूर करनेकी चिन्तामें पड़ गये। अतः उन्होंने बडी मेहनतके साथ एशियाई महकमेके उन अफसरोंका पता लगाना शुरू किया जो उक्त प्रकारसे घूस लिया करते थे। इस कार्यमें उन्हें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई। दो ऐसे अफसरोंका गांधीजीने आखिर पता लगा ही छोड़ा और उन्हे पुलिस द्वारा गिरफ्तार भी करवा दिया। किन्तु 'रंग-द्वेष' के केन्द्र दक्षिण अफ्रीका मे गोरे न्यायाधीशोंसे न्यायकी आशा करना बालूसे तेलकी धार चुआना था। फलतः उन अभियुक्तों पर यद्यपि न्यायका अभिनय करनेके लिए मुकदमा अवश्य चलाया गया लेकिन जान बूझकर गोरी ज्यूरीने अन्तमें उन गोरे अपराधियोंको बरी भी कर दिया। पर तब भी गांधीजीका यह प्रयत्न कतई बेकार न गया। उन अफसरोंके बदनाम होनेसे

एशियाई महकमेके अन्य अफसर कमसे कम सतर्क जरूर हो उठे, और घूस खानेसे ठिठकने भी लगे। इससे निश्चय ही एशियाई थानेकी गदगी कुछ न कुछ कम हो गई। लेकिन सबसे बडा फायदा इस मुकद्दमे से यह हुआ कि एशियाई लोगोको भी अपने ऊपर भरोसा करने और साहससे काम लेनेकी हिम्मत आ गई। एशियाइयो और भारतीयोके टूटते धीरज और बिखरते साहस को थाम लेनेका यह कार्य गाधी जैसा निश्छल और निर्भीक व्यक्ति ही कर सकता था। निःसन्देह उनके नैतिक साहस और आत्मबलसे ही यह चमत्कार संभव भी हो सका। उनके इस पौरुषका लोगोंपर यथार्थतः बड़ा प्रभाव पडा और उनकी प्रतिष्ठा पहलेसे दूनी हो गयी। यहाँ पर हम पाठकोंको यह भी स्मरण करा दे कि गाधीजीसे गोरे जो चिढते थे और एशियाई महकमेके अधिकारी उन्हें जो दक्षिण अफ्रीकामे न घुसने देना चाहते थे, वह इसीलिए कि उनकी पौरुषता और नैतिकतासे वे बहुत घबराए हुए थे। गोरे यह भी खूब समझते थे कि गाधी जैसे कानूनके विज्ञाता और चरित्रके धनीके रहते हुए उनकी धाधली और पशुता ज्यादा दिन नहीं चल सकेगी। श्री डोकने बहुत ही सही और सत्य लिखा है कि 'अधिकारी लोग गाधीसे भय खाया करते थे। वे जानते थे कि वे स्वय उनसे कमजोर और क्षुद्र है। अतः यह स्वाभाविक ही था कि वे उनका मच पर आना पसन्द न करते।'[1]

गोरोंकी भयातुर कल्पनानुसार नि.सन्देह गाधीजी ऐशियाटिक महकमेकी बुराइयोंको रोकनेमे प्राण-पणसे जुट गये। उन्होने अब

1—An Indian Patriot, by J J Doke pp 59

तमाम भारतीय समाजका पूरा वल उस गदगीको दूर करने पर लगा दिया। एशियाटिक महकमेकी वुराइयोंसे त्राण पानेकी आशामे गाधीजी वहाके वड़े वडे अफसरोंसे भी कई एक वार मिले और उनके पास यदा कदा भारतीयोंकी तरफसे डेप्युटेशन भी भेजते रहे। लेकिन इस सवका कोई विशेप परिणाम न निकला।

'इडियन ओपीनियन' पत्रकी स्थापना--

इसी समय गाधीजीको यह प्रतीत हुआ कि भारतीयोंको एक दूसरेके निकटस्थ सम्पर्कमे लानेके लिए, तथा उनको उनके अधिकारोका ज्ञान कराने एव उनकी कष्ट कथा वहाँके अधिकारियों तक पहुँचानेके लिए एक समाचार पत्रकी नितान्त आवश्यकता है। इसलिए जव श्री मदनर्जातने गाधीजीके सामने 'इण्डियन ओपिनियन' नामसे एक पत्र निकालनेकी तजवीज रखी तो वे एकदम सहमत हो गए। फलतः १९०४ मे इण्डियन ओपिनियनकी स्थापना हुई और नामके लिए यद्यपि मनसुखलाल उसके सम्पादक हुए किन्तु सम्पादकत्वका वास्तविक और असली भार गाधीजी पर ही पडा।

यह पत्र साप्ताहिक था और प्रारम्भमे गुजराती, हिन्दी तमिल तथा अग्रेजी इन चार भापाओंमे प्रकाशित किया जाता था। पर वादमे हिन्दी और तमिलकी उपयोगिता न देखकर उन भापाओंमे पत्रके सस्करण निकालने वन्द कर दिये गये। आर्थिक दृष्टिसे यह पत्र अपना व्यय न सम्हाल सका और कई वक्त वन्द होने तककी नौवत आ पहुची। किन्तु भारतीय प्रतिष्ठा

और गौरवके रक्षक गांधीजीने उसके बन्द होनेमें भारतीय समाजकी बदनामीका खयाल कर अपने तनके साथ अब धन भी होम करना शुरू किया और अपना सब कुछ लगा कर भी पत्रको बन्द न होने दिया। पत्रके भरण-पोषण के लिए उन्हें कभी-कभी निजी जेबसे ७५ पौण्ड मासिक तक खर्च करना पड़ता था। इस प्रकार अपनी कमाईका काफी अधिक भाग (लगभग १६,०० पौण्ड) उन्होने पत्र पर खर्च किया, लेकिन गाधीको इसका कभी कोई अफसोस न हुआ, क्योंकि यह पत्र उन्होंने धन उपार्जन की दृष्टिसे नही, वरन् भारतीय समाजकी सेवाके निमित्त ही प्रेपित किया था। और सच्चे त्याग तथा लगनसे उनका यह 'निमित्त' पूरी तरहसे सफल भी हुआ।

'इण्डियन ओपीनियन' के द्वारा गाधीजी अपने हृदयगत विचारोको भारतीय जनता तक पहुचानेमे भी समर्थ हुए, और उन्हे आनेवाले 'सत्याग्रह'के लिए शिक्षित तथा दीक्षित भी कर सके। वे बरावर उसमे लेख लिखा करते थे, और उनके प्रत्येक लेखोंकी पंक्तियोंमे उनकी 'आत्मा' तिरा करती थी। अपने हृदय की उथल-पुथल और भावनाओंको वे खुलकर अखबारके पन्नोंमे बिखेर देते थे। फलतः भारतीयोंको उनके हृदयगत विचारोंके मुक्ताओंको चुगने तथा पसन्द करनेका अच्छा साधन प्राप्त हो गया। वे गाधीके निर्मल विचारोंको पाकर अपनेको धन्य समझने लगे। परिणामतः भारतीय समाज पर गाधीका प्रभाव और नियंत्रण विराट रूपसे छा गया। इसी कारण जब आगे चलकर उन्होंने सत्याग्रह आदोलन छेड़ा तो उसमे

१—आत्मकथा भाग—४ पृष्ठ ३१६-३२७

उन्हे कल्पनासे भी विपुल सहयोग प्राप्त हुआ। पत्रके जरिये गाधीजी देश विदेशके लोगोंको भी सत्याग्रह संग्राम तथा दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिको सही रूपसे समझानेमे समर्थ हुए और अपने कार्योंके प्रति दुनियाकी सहानुभूति और श्रद्धा भी आकृष्ट कर सके।

कुली लोकेशन पर विपत्ति---

जोहान्सवर्गमे हिन्दुस्तानियों, जिन्हे दक्षिण अफ्रीकाके गोरे घृणा और तिरस्कारके साथ कुली कहा करते थे, के लिए एक अलग लोकेशन नियत था जिसे 'कुली लोकेशन' कहते थे। इस लोकेशनमे हिन्दुस्तानियोंके नाम जमीनका ९९ सालके लिए पट्टा कर दिया गया था। इस लोकेशनके सिवा उन्हे अन्यत्र न रहने दिया जाता था। अतः आवादी फैलनेके लिए क्षेत्र न होनेसे वहाँ पर हिन्दुस्तानी खचाखच भर गये थे। हिन्दुस्तानी वस्ती होनेसे गोरी म्युनिसीपैलिटीकी तरफसे लोकेशनकी कोई देख-भाल भी नहीं की जाती थी। इस वस्तीके हिन्दुस्तानी विशेषकर गरीब, दीन-दुखी मजदूर ही थे। अतः स्वयं भी वे लोग अपना सुधार और उद्धार करनेकी योग्यता न रखते थे। फलतः म्युनिसीपैलिटी की निष्करुण अन्यमनस्कता और भारतीय जनताके अज्ञानके फल से लोकेशनकी स्थिति स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत ही खराब हो चली। पर इस खराबीको दूर करनेके बजाय उनका वहाना लेकर म्युनिसी-पैलिटीने लोकेशनको ही मेट देनेका निश्चय कर डाला और धारा सभासे उस जमीन पर, मुआवजेमे कुछ नजर देकर, कब्जा करने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। इस साथके साथ यह भी निश्चय

किया गया कि लोकेशनके बदलेमे हिन्दुस्तानियोंको कोई दूसरा उपयुक्त स्थान दे दिया जायगा।

किन्तु अभी हिन्दुस्तानी वहाँसे हटने भी न पाये थे कि 'लोकेशन'की गन्दगी और मौसमकी खराबीके कारण वहाँ भीषण रूपसे भयकर 'काला प्लेग' फैल उठा। बीमारीके फैलनेसे पूर्व १७ दिनतक बादल बराबर पानी बरसाते रहे थे, इसलिए बरसाके बन्द होते ही महामारीका प्रकोप उग्ररूपसे हुआ। यह बीमारी असलमे जोहान्सबर्गके आसपास सोनेकी खानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंसे शुरू हुई थी। बीमारीके फैलनेसे लोकेशनमे त्राही-त्राही मच उठी। किन्तु यह सब देखते हुए भी गौरांग म्युनिसिपैलिटी दूरसे ताकती ही रही। उसे पहले तो बीमारीका ही पता न चला और जब पता भी चला तो उसने रोक-थामके लिए कोई समुचित उपाय नहीं किये।

इसी समय इण्डियन ओपीनियन के प्रकाशक मदनजीत भी अखबारके सिलसिलेमे जोहान्सबर्ग आये हुए थे और लोकेशनका भ्रमण कर रहे थे। बीमारीसे पीडित और त्रस्त लोकेशनके मजदूरोंकी स्थितिको जब उन्होंने दिनोंदिन बिगडते पाया तो लाचार होकर उन्होंने १८ मार्च १९०४ को गाधीजीको भी इस विपत्तिकी सूचना भेजी और साथ ही त्रस्त जनताके हितार्थ तुरन्त वहाँ पहुचनेका आग्रह किया।

दरिद्रोंके नारायण गाधी तुरन्त ही पीडितोंकी सेवाके लिए तैयार हो उठे। उन्होंने स्वास्थ्य विभागके मेडिकल आफीसर डा० पेकस और टाउन क्लर्कको भी इसकी इत्तला भेजी और जल्दीसे स्वयं लोकेशनमें पहुचकर मृत्युके साथ जूझ पड़े। श्री

मदनजीत और डा० विलियम गाडफ्रेके साथ साथ गांधीजीने लोकेशनके निःसहाय बीमारोंकी परिचर्या और सेवामे रात-दिन एक कर दिये। उनकी देवतुल्य सेवाओंसे प्रभावित और लज्जित होकर अन्तमे टाउन कौंसिल और म्युनिसिपैलिटीने भी हिन्दुस्तानियोंकी सहायतामे हाथ बॅटाना शुरू कर दिया। बीमारीको रोकनेके लिए आखिर गांधीजीकी सलाह पर लोकेशन खाली भी करा दिया गया और हिन्दुस्तानियोंको रहनेके लिए 'क्लिपफ्रुट फार्म' (जोहान्सबर्गसे कुछ दूर एक खुला स्थान) मे इन्तजाम कर दिया गया। हिन्दुस्तानियोंके हटते ही 'लोकेशन'को जला दिया गया, और परिणाम स्वरूप बीमारी लोकेशनसे आगे न बढ सकी।

यह भयकर महामारी लगभग एक महीने तक रही थी। इसमे लगभग ११३ आदमी कालग्रसित हुए थे[1]। लेकिन बीमारीके फैलनेके तुरन्त बाद ही अगर गांधी और उनके कुछ एक साथी लोकेशनमे पहुंच कर तत्परता और अदम्य साहसके साथ उसके रोकनेके कार्यमे प्रवृत्त न हुए होते तो संभव था कि मृत्यु संख्या इससे कहीं अधिक बढ जाती। अपनी इन सेवाओंके फलसे स्वभावतः गांधीजी भारतीय जनताके और भी प्यारे और आराध्य हो गये।

डरबन जाना और फिनिक्सकी स्थापना—

महामारीके शान्त होनेपर १९०४ मे गांधीजी इन्डियन ओपिनियन पत्रके हिसाब-किताबकी व्यवस्था ठीक करनेके लिये

---

1 An Indian Patriot, by J J Doke—p 65

डरबन गये । डरबन जाते समय जोहान्सबर्गमें उनकी 'क्रिटिक' के सम्पादक मि० पोलकसे भेंट हुई । यह भेंट बहुत ही परिणाम युक्त निकली। मि० पोलकने गाधीजीको रस्किनकी 'अन्टू दि लास्ट' नामक पुस्तक भेंटकी जिसे उन्होंने आगे चलकर 'सर्वोदय' नामसे गुजरातीमे अनुदित कर प्रकाशित कराया। रस्किनकी पुस्तकने गांधीजीको बहुतही प्रभावित किया। पुस्तकके अध्ययनने उनके जीवनमे एक क्रान्तिसी ला दी । उन्होने अब सर्वोदयके विचारोंका अनुसरण करते हुए मजदूर और किसानका जैसा सादा और सरल जीवन यापन करनेका इरादा बना लिया। गाँधीके तपोपूर्ण आश्रम जीवनका यह उदयारम्भ था ।

अतः डरबन पहुचते ही गाधीजीने इण्डियन ओपीनियनके कार्यकर्त्ताओं श्रीवेस्ट आदिसे आश्रम स्थापित करनेके सम्बन्धमे बाते शुरू कर दीं। सबने गाधीजीकी सलाह पसन्दकी और अखबार तथा प्रेसको भी आश्रममे ले जानेका निश्चय कर लिया गया। आश्रमके लिये अब डरबनके पास १३ मीलकी दूरीपर फिनिक्समे १००० पौड देकर१०० एकड़ जमीन खरीद करली गई, और एक महीनेके अन्दर तुरन्त ही वहा प्रेस तथा रहनेके लिये मकान आदिका भी प्रबन्ध हो गया। फलतः आपने कई एक स्वजनो तथा सहयोगियोके संग गाधीजी अब वहीं रहने लगे। इस तरह१९०४मे गाधीजीके सद्प्रयत्नसे फिनिक्समे पहिला गाधी-आश्रम स्थापित हुआ।

फिनिक्स जैसी संस्थाको स्थापित करनेमें गांधीजीका ध्येय था कि वहाँपर रहनेवाले आश्रमवासी ससारके छल-कपट और अशान्तिसे दूर रहकर, प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियोंके

आश्रमोंका जैसा सरल और सादा तथा परिश्रमका जीवन यापन करना सीखें, और हमेशा दूसरोंकी भलाई एवं सेवा-कार्यमें निरत रहा करें। इस उद्देश्यसेआश्रमके नियमोंमें स्वावलम्ब और परिश्रम पर बहुत जोर दिया गया। इन नियमोंके अनुसार प्रत्येक आश्रमके निवासीको तीन-तीन एकड़ जमीन खुद काश्त करके अपनी रोटी अपने आप उगानेके लिये दे दी गई। स्वयं भी जमीनका इतना ही एक टुकड़ा गांधीजीने लिया, और दूसरे संगी-साथियोंकी तरह वे भी बड़े परिश्रम और तपस्याके साथ खेती-बारीका काम करने लगे। इस कामके लिये आश्रमकी तरफसे प्रत्येक व्यक्तिको ३ पौंड मजदूरी मिलती और अवकाशके समय उन्हें प्रेसमें भी काम करना पड़ता था। यह सब काम आश्रम-वासी बड़े उमंग और चावसे किया करते थे। परिणामत: गांधीजीके प्रयत्नोंसे थोड़े ही समयके अन्दर फिनिक्समें इतने घर और परिवार बस गये कि वह आश्रमके बजाय एक बस्ती अथवा गाँव जैसा मालूम पड़ने लगा। फिनिक्सके रहनेवालोंके बच्चोंके लिये जल्दी ही वहाँ पर एक स्कूल भी खड़ाकर दिया गया। गांधीजीके लिए तो फिनिक्स एक बहुत ही प्रिय स्थान और घर सा हो गया। इस-लिए जब कभी उन्हें समाज-सेवाके कार्योंसे फुरसत मिलती, वे सर्वदा आरामके लिये वहीं चले आते और आश्रमके साथियोंके साथ हिल मिलकर खेतोंपर किसानकी तरह काम किया करते। अपने परिवारको भी वे यदा-कदा वहाँ रहनेको भेज दिया करते थे।

हिन्दुस्तानियोंके अलावा गांधीजीके कई एक अंग्रेज मित्र और प्रशंसक—जैसे श्री वेस्ट, श्री पोलक आदि भी फिनिक्सके जीवनसे आकर्षित होकर वहाँ रहने लगे। फिनिक्सके रहने वालोंमें परस्पर भाई-चारेका पूरा-पूरा भाव था और सब लोग

ऊंच-नीच तथा जात-पातके भेद भावोंसे रहित होकर एक ही परिवारके मनुष्योंकी भांति रहा करते थे। यह आदर्श जीवन फिनिक्सके अनुकूल था, क्योंकि उसकी स्थापना ही जीवनको सरल, सत्य और स्नेहपूर्ण बनानेके लिये हुई थी। उसकी स्थापनाके मूलमें गांधीजीकी यह कामना निहित थी कि लोग नगरके अशान्त और कोलाहलपूर्ण वातावरणसे हटकर गांवोंका सेवा और तपोमय जीवनयापन करना सीखे और जाने। क्योंकि वे भली प्रकार यह समझ चुके थे कि देश और विश्वका कल्याण सेवाके साधकोंसे ही हो सकता है, न कि भोगके उपासकोसे। अतः यह कहना नितान्त सत्य है कि गांधीजीके 'आश्रम' जन-सेवक और साधकोंके केन्द्रस्थल है—वैरागी और तटस्थोके निश्चेष्ट और गतिहीन समाधि-स्थल नहीं।

जोहान्सवर्गमे——

लेकिन १९०४ में गाधीजी अभी फिनिक्सकी स्थापना कर ही सके थे और उसके कामको आगे बढानेमे लगे थे कि यकायक कार्यवश उन्हे अपने इस नये रचे हुए कुटुम्बको छोडकर जोहान्सवर्ग चला जाना पडा। जोहान्सवर्ग पहुचनेपर उन्होंने हिन्दुस्तानसे अपना परिवार भी वहीं बुलवा लिया। किन्तु जोहान्सवर्गके घरमे भी गाधीजीने आश्रमकी सरलता और सादगीका वातावरण कायम रखा। घरमे हर काम वे और उनके परिवार वाले अपने ही हाथोंसे किया करते थे। पाखानेकी सफाई तक वे और उनके कुटुम्बीय स्वयं ही अपने हाथोसे
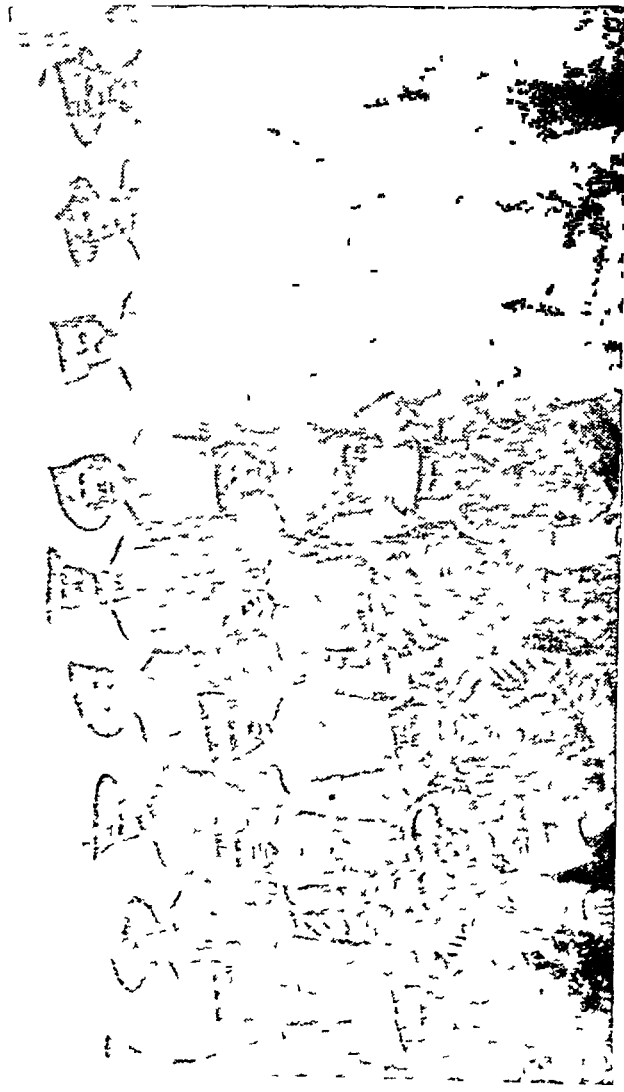
[सन् १०. ६] जुलू विद्रोह के समय [पृष्ठ १६५]

करते थे[1] इस प्रकार जोहान्सबर्गमे गाधीजी घरमे रहते हुए भी एक आश्रम-वासी तपस्वीका सा सरल और सादा जीवन ही यापन करते रहे। किन्तु इस घरमें भी वेचारे जमकर बहुत दिनों तक न रह सके। ईश्वरके सकेतोंका अनुसरण करनेवाले का निःसन्देह कोई निजी ठौर और निजी कार्य होता ही नहीं—वह जाता है जहाँ भगवान ले जाता है, वह करता है जो परमेश्वर चाहता है। और गाधीके कार्य-कलापोंकी यही कुंजी है—वे स्वयं कुछ नहीं उनका तो ईश्वर ही वे है।

जुलू विद्रोह—

१९०४ में जुलू लोगोंने नेटालमे विद्रोह कर दिया था। इस विद्रोहकी खबर जब जोहान्सबर्ग पहुची तो बोअर युद्धके समय-की तरह इस समय भी अंग्रेजोंकी मदद करनेके लिये गाधी व्यग्र हो उठे, क्योंकि उनका अभी भी यही विचार था कि 'अंग्रेजी सल्तनत' संसारके लिए कल्याणकारी है, जिसकी रक्षा की जानी चाहिए। अतः वे हृदयसे अभी भी अंग्रेजोंके भक्त बने हुए थे और उनके राज्यका विनाश नहीं देख सकते थे। यद्यपि यह सही है कि उस समय तक अंग्रेजोंकी दुर्नीति और दुर्व्यवहारोंका भी वे कई प्रकार से परिचय पा चुके थे, लेकिन उनके विश्वासपूर्ण हृदय से तब तक यह विश्वास निष्कासित न हुआ था कि आखिर अंग्रेज मनुष्य ही है, और एक न एक दिन अवश्य अपनी गल्तियों और अनीतियोंको जान जायेंगे, और उनका सुधार तथा परिमार्जन भी कर लेंगे।

१—आत्मकथा-भाग, ४ पृष्ठ–३४८

अतः जुलू विद्रोहमें अंग्रेजोको मदद पहुंचाने के खयालसे गांधीजीने नेटालके गवर्नरको पत्र लिखा कि यदि जरूरत हो तो वे हिन्दुस्तानियोंका सेवादल लेकर उनकी मददको पहुंच सकते है। इस पत्रका तुरन्त ही 'हॉ'में उत्तर मिला। यह स्वीकृति पाकर गाधीजीने तुरन्त जोहान्सबर्गका घर तोड़ दिया, परिवारको फिनिक्स भेज दिया, और स्वयं सेवादलका सगठन और नेतृत्व करनेके लिये डरबन चले गये।

डरबन पहुचने पर नेशनल इंडियन कांग्रेसकी तरफसे गाधीजीको सेवादलमे काम करनेके लिये २४ आदमी तैयार मिले। चिकित्सा-विभागके मुख्य अधिकारीने गाधीजीको 'सारजेन्ट मेजर' का पद दिया, और उनके अन्य तीन साथियोमे से दो को सारजन्ट और एक को कारपोरलका पद प्रदान किया। पर विद्रोहके स्थलपर पहुचकर गांधीजीको पता चला कि वहा विद्रोह जैसी कोई चीज न थी—वह केवल 'कर' न देनेका आन्दोलन था। अतः जब चिकित्सा विभागके अधिकारी डा सवेज (Dr Savage) के द्वारा भारतीय सेवादलको विशेषकर जुलू-घायलोंकी सेवाका काम सुपुर्द हुआ, तो गाधीजीको इससे बहुत ही खुशी हुई, क्योकि उन्हे पीडित और निरपराधोंकी सेवाका मौका हाथ लगा था। गोरे लोग जुलूओंसे घृणा करते थे और उनकी सेवाके लिये कतई तैयार न होते थे। इससे बेचारा डा सवेज—जो गोरा होने पर भी मनुष्यका हृदय रखते थे—अकेला जुलूओकी सेवा न कर सकनेसे परेशान हो रहे थे। इसलिये जब गाधीजी और उनके दलने जुलूओंकी सेवा करनेका भार सहर्ष उठाना

स्वीकार किया, तो डा० सवेजको भी हार्दिक प्रसन्नता हुई। डा० सवेजने हर्षातिरेकमें तव गांधीजीसे कहा था, "मैं अकेला क्या करता? इनके घाव खराब हो रहे हैं। आप आ गये अच्छा हुआ। इसे मैं इन निरपराध लोगोंपर ईश्वरकी कृपाही समझता हूं।"[1] डा० सवेजकी यह आशा संपूर्णरूपसे पूरी हुई। गांधीजीके सेवादलने बड़े उत्साह, प्रेम और निःस्वार्थताके साथ अन्त तक जुलूओंकी सेवाकी। ऐसी निष्काम सेवा पाकर जुलूओंके आनन्दकी तो सीमा ही न रह गई, लेकिन दूसरी ओर गोरे यह सब देखकर जलके खाक होते जाते थे—क्योंकि वे निर्दयी न चाहते थे कि उनके दुश्मनोंकी कोई इस प्रकारसे सेवा-टहल करे। किन्तु गोरोंकी दुश्चिन्ता न कर गाधीका सेवादल अपने सेवाकार्यमें डटा ही रहा। बुद्धकी तरह वे घायल जुलुओंके सड़ते हुये घावोंको धोते और प्रेमसे नित्य उनपर पट्टी बाँधा करते। फौजके साथ-साथ वे घायलोंको लेजाने वाली डोलियोंको कंधे पर रखकर चला करते। कई वार एक-एक दिनमें वे चालीस मील तक चले जाते। युद्धस्थल परसे घायल जुलूओंको डोलियोंमे उठाकर पडाव पर लाते और वहाँ उनकी शुश्रूषा किया करते। इस प्रकार लगभग ६ सप्ताह तक गांधीजीके सेवादलने बड़े परिश्रम और करुणाके साथ घायलोंकी निरन्तर सेवा की। इसके वाद वलवा शान्त हो गया और गांधी अपने दलके साथ युद्धस्थलसे फिनिक्सको वापिस लौट आये।

गांधी और उनके दलकी इस तपस्या और त्यागपूर्ण सेवाकी प्रशंसा करते हुये श्री डोकने लिखा है—"यह एक महीना

---

१ वही—पृष्ठ ३५२

(भारतीय सेवादलका) बड़े कठिन परिश्रममें वीता, जिसमे उन्हे अत्यधिक आत्म त्याग करना पडा। ये लोग उस जातिमे से है, जिनकी रग-रगमे प्राचीन सस्कृति लहराती है, और जिनके पूर्वजोंसे दुनियाको सर्वोत्तम साहित्य तथा महानतम् विचार प्राप्त हुये है। ऐसे लोगोका स्वेच्छासे निकृष्ट दशामे पड़े असभ्य लोगोकी सेवा करना यथेष्ट आत्मत्यागका कार्य था।"[1]

इस विवरणको समाप्त करनेसे पहिले यहाँपर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि जुलू विद्रोहके समय ही सेवा कार्य करते हुए गाधीजीको यह प्रतीत हुआ कि सेवाके लिये 'ब्रह्मचर्य' की वहुत आवश्यकता है। निःसन्देह सेवामे रत रहनेके लिये जरूरी है कि हम भोग-विलास और इन्द्रिय सुखसे अपनेको विलग रखे, क्योकि इन रोगोंमे फॅसा हुआ आराम-तलव एवं विलासी-व्यक्ति निश्चिन्त और निर्भीक होकर सेवाके कठिन कार्योमे कूदनेका साहस भी नहीं कर सकता। विलास जर्जर होनेसे हममे सेवाके लिये अपेक्षित वल हो भी कैसे सकता है। अतः इन विचारों से उद्वेलित और प्रेरित होकर १९०६ के मध्यमे फिनिक्स पहुंचने पर गाधीजीने ब्रह्मचर्यका व्रत ग्रहण किया जिसे उन्होंने महाभारतके यशस्वी रणधीर भीष्मकी तरह ही निभाया है। गाधीजीके त्यागका यह उज्वल विटप था। इस त्यागके विरवेकी वृद्धि और विकासके लिए आगे चलकर गांधीजीने उपवास और अल्पाहार भी शुरू कर दिये और स्वाद तथा तृष्णाको तिलाजलि दे दी। 'भोजन' अब केवल आरोग्य और सयमकी दृष्टिसे किया जाने लगा। भोजनमे से चाय, दाल और नमक तकका परित्याग कर दिया गया। सयमका

1 An Indian patriot, by J J. Doke, pp 71

खातिर गाय व भैसका दूध तक छोड दिया गया लेकिन वादमें आवश्यक होजानेसे 'वा' के दवाव पर गाधीजी को वकरी का दूध पीना स्वीकार कर लेना पडा। संक्षेपमें स्वादु भोजन और अन्न आदि का गांधीजीने परित्याग कर दिया था, और ज्यादातर अव वे मामूली फलोंके आहार पर ही रहने लगे।

इस प्रकार ससारकी सेवाके लिये अपनेको योग्य, सवल, और सशक्त वनानेके हित ऐहिक सुखों और ऐन्द्रिक भोगोंको तुच्छ, हीन एव अवरोधक समझकर त्याग देना और ठुकरा देना हर एकके अधिकारकी चेष्टा नहीं हो सकती। इसीलिए हम कहते है, गाधी 'हरएक'के जैसा नहीं, अपने ही जैसा एक है।

सेनापति गांधी

महान् सत्याग्रह-युद्धका उदयारम्भ

अध्याय ९

गांधीजीको कब मालूम था कि प्रथमतः दक्षिण अफ्रीकामे ही उनको राष्ट्रका सेनापति होकर महान् सत्याग्रह युद्धका सचालन करना पड़ेगा ? सत्याग्रहके अहिसात्मक युद्धमे पड़नेकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी ? यह केवल परिस्थितियोंके प्रभावका परिणाम था कि उन्हे पश्चिमी पशुबलसे भारतीय प्रतिष्ठा और भारतवासियोंके स्वाधिकारोंकी रक्षाके लिए सेनापति बनकर भारतीय स्वभाव और सस्कृतिके अनुरूप, स्नेह और सत्यके शस्त्रको लेकर जूझनेको बाध्य होना पडा । ये परिस्थितियाँ क्या थी ?

रगद्वेष—

पश्चिमकी गोरी जातियाँ एशियाकी काली जातियोंसे हमेशासे घृणा करती रही है। आज भी यही हाल है और जिस समयका हम उल्लेख कर रहे है, उस समयमे तो रग-द्वेष अपनी सीमा पर पहुचा हुआ था। अतः इस घृणाके कारण दक्षिण अफ्रीकाके गोरे एशियावासियों से चिढते वा कुढते रहते थे और जिस किसी प्रकारसे उन्हे दबानेकी सोचा करते थे। उन्हें

एशिया और भारतके लोगोंसे एक,प्रकारकी घृणायुक्त चिढसी होगयी थी। इन लोगोंके संपर्कको वे अपनी सभ्यता और संस्कृतिक लिए अत्यन्त भयानक और खतरनाक समझने लगे थे। इसलिए गोरे नहीं चाहते थे कि भारतीय एक 'स्वतन्त्र जाति'के रूपमे दक्षिण अफ्रीकामे वास करें। लेकिन भारतका 'आत्मगौरव' क्या यह स्वीकार कर सकता था ? कभी भी नहीं! जिस भारतका इतिहास अपने गौरव, सम्मान और प्रतिष्टाकी रक्षाके लिए 'जौहर' के अनुपम वलिदानोसे परिपूर्ण है, उससे 'सम्मान' के मूल्य पर भला कैसे सौदा वा समझौता हो सकता था ? अतः दोनोंमें झगडा वढना अनिवार्य था।

अकेला-व्यापार—

काले रंगसे द्वेष रखनेके अलावा गोरे वा अंग्रेज-व्यापारी यह भी नही चाहते थे कि भारतीय दक्षिण अफ्रीकामे रहकर उनके एकमात्र व्यापारमे विघ्न उपस्थित करें। भारतीयोका व्यापार गोरे अपने व्यापारिक हितोंके लिए हानिकारक समझते थे। इसलिए वे नहीं चाहते थे कि भारतीय लोग दक्षिण अफ्रीकामे घुसे और अपना मनमाना व्यापार किया करे। वे तो दक्षिण अफ्रीकामे अपना ही अकेला सार्वभौम व्यापार चाहते थे, जिससे वे स्वय विना किसी रोक टोकके आसानीसे अधिकसे अधिक धन इकट्ठा कर सके। अतः उन्हे यह कैसे सहन होता कि अफ्रीकाके इस स्वच्छन्द व्यापारमे भारतीय भी हिस्सा ले।

फलतः प्रमुखतया रग-द्वेष और स्वच्छन्द व्यापार ये ही दो कारण थे, जिनके हित ब्रिटिश सत्ताधारियोंने यह निर्णय किया

था कि भविष्यमे ट्रान्सवालसे नये आनेवाले भारतीयोंको प्रवेश न करने दिया जाय और जो पुराने भारतीय वहाँ पहिलेसे मौजूद है, उनकी स्थिति ऐसी दीन-हीन और कंटकाकीर्ण बना दिया जाय कि वे खुद बखुद ऊबकर, घबड़ाकर, और भयातुर होकर ट्रान्सवाल छोड़कर भाग खड़े हों और अगर इतने पर भी भागे नहीं तो न्यूनाधिक रूपसे मजदूर बनकर ही वहाँ रहने पावे।

ज्यादती और धोखा—

इतिहास बतलाता है कि अपने ऐच्छिक उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए पश्चिमके सत्ताधिकारी सर्वदासे अमानुषिक नियमों वा कानूनोंका सहारा लेते रहे है। दक्षिणके गोरोंने भी अफ्रीकामे यही किया। सन् १८८५ मे वहाँ एक ऐसा कानून बनाया गया जिसके अनुसार यह तय हुआ था कि जो ऐशियावासी दक्षिण अफ्रीकामें व्यापार करें, वे पहिले एक निश्चित फीस देकर अपनी रजिस्ट्री करा ले और नगरोंके कुछ विशेष भागोंमे ही निवास किया करें जिससे कि उनके संसर्ग और संपर्कके दूषणसे गोरोंमे किसी प्रकारकी व्याधि न फैलने पावे। इस कानून तथा अन्य प्रकारकी ब्रिटिश सत्ताधारियोंकी ज्यादतियोंसे भारतीय बहुत असन्तुष्ट हो रहे थे, लेकिन मुक्तिका उन्हे कोई भी मार्ग सूझ न पड़ रहा था।

बोअर युद्ध आया, और समय ने ऐसा पलटा खाया कि जिन्हे घृणित समझा जाता था, उन्हीं भारतीयोंके सहयोगकी अंग्रेजों को आवश्यकता हो आई! भारतीयोंने भी परम उदारताके साथ गांधीजीके नेतृत्वमे बिना किसी हिचकके उन्हें मदद

पहुंचाई। भारतीयोंकी इस मददसे खुश होकर ब्रिटिशशाहीके उच्चाधिकारियोंने तब उछल-पुछल कर यहां तक कहना शुरू किया कि भारतीयोंकी दुर्दशाका असली कारण यह लड़ाई ही है, और इसलिए जहां विजय हुई और ट्रान्सवाल पुनः ब्रिटिश कॉलोनी हुआ कि भारतीयोंके तमाम दुख-दर्द दूर हो जायेंगे, और पुराने समयके बने कानून भारतीयोंपर आगे कभी नहीं लागू किये जायेंगे आदि।

किन्तु अन्त में मालूम हुआ कि यह सब धोखा था, प्रतारणा थी। रंग-द्वेषी और अर्थ-लोभी गोरोंने लड़ाई जीतनेके बाद अपने सारे कायदोंको भूलाकर भारतीयोंकी सुखद भविष्यकी सुन्दर कल्पनाओं और आशाओं पर एकदम पानी फेर दिया। जिस १८८५ के अन्यायी कानून को तोडनेका मुक्त-ध्वनिसे वायदा किया गया था, वह फिरसे भारतीयों पर निर्दयताके साथ लाद दिया गया तथा ट्रान्सवालमें भारतीयोंके प्रवेश पर रोक भी लगा दी गई। इस प्रतिबन्धके परिणामसे भारतीय अब बिना सरकारी 'परवाने' के हासिल किये ट्रान्स-वालमें प्रवेश न पा सकते थे। दिखानेके लिए 'परवाने' का नियम गोरोंके लिए भी था, किन्तु उन्हें तो मांगते ही परवाना मिल जाता था, लेकिन भारतीयोंके लिए परवाना पाना एक नितान्त कठिन समस्या थी। भारतीयोंको दिक और परेशान करनेके लिए तथा प्रतिबन्धको सख्तीसे बरतनेके लिए भारतीयोंके खातिर ट्रान्सवालमें एक नये प्रकारका एशियाटिक महकमा भी खोल दिया गया था। यह एक बिल्कुल नयी सी बात थी। इस महकमे और उसकी ज्यादतियोंका पिछले अध्यायमें कुछ

वर्णन किया जा चुका है । यहाँ पर हम केवल यह इंगित कर देना चाहते है कि 'परवाने' की पद्धति गोरोके लिए कुछ समय बाद बिलकुल बन्द कर दी गई थी, किन्तु भारतीयोके लिए वह 'परवाने' का कानून बराबर उसी तरह जारी रहा और इसका कारण स्पष्ट था, 'भारतीयोको ट्रान्सवालमे न आने देना और न रहने देना'।

और इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हमारा पूर्व परिचित एशियाटिक विभाग ट्रान्सवालमें खड़ा किया गया था। इस एशियाटिक विभागका कार्य ऐसे सख्त और अपमानजनक कानून रचना और बनाना था, जिससे भारतीयोका ट्रान्सवालमे प्रवेश पाना और रहना दोनो कठिन हो जॉय। पिछले अध्यायमें एशियाटिक विभागकी दुष्टता पर प्रकाश डालते हुए हम बतला चुके हैं कि उक्त विभागमे गोरे अधिकारी 'परवाना' देनेमे किस बुरी तरहसे भारतीयोंको सताया करते थे।

उनकी ये दुष्टताएँ और ज्यादतियां रुकनेका नाम न लेती थीं। सन् १९०६ मे एशियाटिक विभागके एक अधिकारी मि० लायनल कर्टिसकी सलाहपर भारतीयोंको जलील करनेके लिए परवानोका स्वरूप आदि भी अपमानजनक कर दिया गया। मि० कर्टिस आदिकी रायके अनुसार यह तय हुआ कि परवानो पर प्रत्येक भारतीयके दस्तखत या अगूठेकी निशानी ली जावे। परवानेका यह नियम बहुत ही अपमान पूर्ण था। भारतीयोंको इस नये नियमके अनुसार रजिस्ट्री आफिसमे जाकर चोरों, बदमाशों, और १० नम्बरी गुण्डे तथा अपराधियोंकी तरह अपने अंगूठेके निशान देने या शिनाख्तके लिए तस्वीरे खिचानी

जरूरी कर दी गई थीं।[1] अतः भारतीय—हिन्दू तथा मुसलमान सभी इस नये 'परवाने'से क्षुब्ध हो उठे—किन्तु उन्होंने यह सोचकर कि कहीं उनके सिर पर और दूसरे अंकुश न कील दिये जावें, नवीन परवानोंको लेना स्वीकार कर लिया, यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे इन नये परवानोंको लेनेके लिए वे बाध्य न थे। भारतीयोंका यह भी ख़याल था कि उनके इस व्यवहारसे शायद गोरी हुकूमत यह समझ सकेगी कि भारतवासी "ट्रान्सवालके किसी भी कानूनका उल्लंघन नहीं करना चाहते, और परिणामतः सरकार उनके इस व्यवहारसे खुश होकर उन्हें प्यार करने लगेगी, उनका आदर करेगी और उन्हें उनके नागरिक हक़ प्रदान कर देगी।" किन्तु उन्हें क्या मालूम था कि अफ्रीकाकी स्वार्थी गोरी सरकार भलाईका बदला बुराईमें चुकायेगी?

खूनी कानून—

नवीन कानूनोंके स्वीकार कर लेनेपर गांधीजी और दूसरे भारतीय नेताओंका विश्वास था कि अब सरकार हिन्दुस्तानियों-को आगे न सतायेगी। किन्तु यह भी बिलकुल भ्रम ही साबित हुआ। गांधीजी अभी ज़ुलू-विद्रोहमें सेवादलके कार्य ही में लगे थे कि ट्रान्सवालसे उन्हें खबर मिली कि हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध एक और एशियाटिक कानूनका मसौदा तयार किया गया है, और उस मसौदेके अनुसार वहाँ (ट्रान्सवाल) की धारा सभामें पेश करनेके लिए एक बिल बनाकर उसे २२ अगस्त १९०६ के

---

१ दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह अनु' गोयदे प्र० सस्ता साहित्य मण्डल पृ० १३७-१३८

सरकारी गजटमें प्रकाशित भी कर दिया गया है। इस खेदपूर्ण समाचारके मिलनेसे गाधीजी अकुला उठे, और जल्दीसे फिनिक्सके अपने संगी-साथियोसे मिल-मुलाकर जोहान्सबर्गके लिए चल पड़े।

निःसन्देह उपरोक्त बिलकी शर्तें बहुत ही भयंकर और गर्क कर देनेवाली थी। उसके पास होने और कानून बननेका स्पष्ट अर्थ था, भारतीयोंका दक्षिण अफ्रीकासे समूल विनाश। इस भयंकर कानूनकी शर्तें इस प्रकारसे थीः—(१) ट्रान्सवालमें बसनेकी इच्छा करने वाले हर एक भारतीय पुरुष, स्त्री और आठ या आठ वर्षसे ऊपर वाले बालक या बालिकाको एशियाई दफ्तरमें अपना नाम लिखाकर परवाना प्राप्त करना, और पुराने परवानोंको अधिकारीको लौटा देना, (२) नाम लिखनेकी अर्जीमें अपना नाम, स्थान, जाति, उम्र आदिका पूरा ब्योरा देना, (३) शरीरकी मुख्य निशानियोंको नोट कराना, और तमाम उंगलियों तथा दोनों अंगुठोंकी छाप देना, (४) जो नियत समयके भीतर इस प्रकारकी अर्जी न दे, उन भारतीय स्त्री-पुरुषोका ट्रान्सवालमें रहनेका हक रद्द कर दिया जाना, (५) अर्जी न करना एक अपराध माना जाना जिसके लिये जुर्माना, जेल वा देशनिकाले की सजा भी दी जा सकती है, (६) बच्चोंकी तरफसे माता-पिताको अर्जी देना होगा, (७) अर्जीदारको अपने परवाने हर किसी पुलिस अधिकारीको जहाँ और जिस वक्त मागे, फौरन हाजिर कर देना चाहिये, वरना उसे जुर्माना अथवा कैदकी सजा दी जा सकती है, (८) परवाना जाँचनेके लिये अधिकारी लोग भारतीयोंके मकानमें भी घुस जा सकते हैं। (९) जो भी भार-

तीय वाहरसे ट्रान्सवालमे आवे, वे अपने परवाने उन अधिकारियोंको जरूर दिखला दे, जो उन्हे देखना चाहे, (१०) सरकारी अदालत आदियोमे जानेपर किसी भी भारतीयसे वहाँका अधिकारी परवाना माँग सकता है, (११) किसी अधिकारीके परवाना मागनेपर वतानेमे इनकार करना जुर्म है, जिसके लिये कोर्ट इनकार करने वाले भारतीयको जुर्माना तथा कैद तककी सजा दे सकता है।

गाधी इस अनीतिपूर्ण कानूनको देखकर स्तब्ध हो उठे। उन्हे आश्चर्य हुआ कि मनुष्य अपने स्वार्थ साधनके लिये ऐसे पाशविक नियमोंका भी सृजन कर सकता है। वे लिखते है "मुझे जरा भी खयाल न था कि संसारके किसी भी हिस्सेमे स्वतन्त्र मनुष्योंके लिये इस प्रकारका कोई कानून हो सकता है।" वे विस्मित और चकित थे कि सारी भारतीय कौमको दक्षिण अफ्रीकाके गोरे 'जुर्मी' समझ वैठे हैं, क्योंकि उपरोक्त कानूनके अनुसार उगलियोंकी छाप, गाधीजी लिखते है "केवल जुर्म करने वालोंसे ही ली जाती है। इसलिये जवरदस्ती उगलियोंकी छाप लेनेकी वात मुझे वडी ही भयंकर मालूम हुई। स्त्रियोंके तथा सोलह वर्षके भीतरके वच्चोंके परवाने लेनेकी प्रथा भी कानूनमे पहले पहल ही दर्ज हुई थी।"

निःसन्देह इस भयकर कानूनका स्पष्ट हेतु यही था कि भारतीयोंको इस तरहसे तग किया जाय कि वे स्वयमेव ट्रान्सवालसे भाग खडे हों। गाधीजी और भारतीय लोग गोरी सरकारकी इस मशाको खूब समझते थे और यह भी जानते थे कि यदि उक्त विल पास हो गया और भारतीयोंने उसके सामने

सिर झुका दिया तो सारे दक्षिण अफ्रीकामें ही उसका अनुकरण किया जायेगा, और परिणामतः सारे दक्षिण अफ्रीकामें भारतीय कहीं पर भी न रहने पायेंगे—उनका पूरा अस्तित्व ही मिट जायगा। अतः दक्षिण अफ्रीकासे इस प्रकार बेइज्जत होकर भगाया और मिटाया जाना भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके लिए गांधीजीको अत्यन्त घातक मालूम दिया। फलतः स्वभिमानी गांधी अब गंभीरतासे राष्ट्रको इस प्रकार अपमानित और अप्रतिष्ठित करनेवाले इस 'खूनी कानून'को पास न होने देनेका उपाय सोचने लगे।

जोहान्सबर्गमे विराट सभा—

पहले अफ्रीकाके कुछ गणमान्य भारतीयोंको बुलाकर गांधीजी ने इस खूनी कानूनकी उनसे चर्चाकी और उन्हे भली प्रकारसे उक्त कानूनकी प्रत्येक बारीकियोंको समझाया। इस कानूनकी पाशविकता और भयकरताको समझा लेने पर भारतीय बेतहाशा बिगड उठे। उनके आवेशका ठिकाना न रहा। लेकिन उनके आवेशको नर्म करते हुए गांधीजीने उन्हे शान्ति और धीरजके साथ कानूनके पेचीदे मामले पर विचार करनेकी सलाह दी। आवेश और उद्वेग भरे मस्तिष्क वा हृदयसे कभी कोई काम ठीक ढगसे नहीं हुआ करता, गांधीजी इसे खूब समझते थे। उतावलापन गांधीजीको प्रकृतितः पसन्द नहीं रहा है। अतः गांधीजीने भारतीयोंके आवेशको दबाते हुए कहा कि "इस बिलका यही हेतु मालूम होता है कि यहाँ (अफ्रीका) से हमारा अस्तित्व ही मिटा दिया जाय। यह कानून कोई आखिरी सीढी नहीं है।

बल्कि हमें कष्ट देकर भगा देनेकी पहला सीढ़ी है।[1] इसलिए हमारे सिर पर केवल ट्रान्सवालमें बसने वाले १०-१५ हजार

१.—गांधीजीके कथनमें कितना सत्य था, यह दक्षिण अफ्रीकामें होनेवाली आज तककी घटनाओंसे प्रत्यक्ष है १९२१-२२ में नेटाल सरकारने तीन ऐसे आर्डिनेन्स पास किये जिनमे भारतीय व्यापारको धक्का पहुंचा, भारतीयोंको म्युन्सिपलिटीके अधिकारोंसे वञ्चित कर दिया गया और यूरोपियन क्षेत्रमें उन्हें बसनेसे रोक दिया गया।

१९२४ में भारतीयोंको तंग करनेके लिए एशिया रिजर्वेशन बिल, इमिगरेशन और रजिस्ट्रेशन बिलकी तजवीज पेश हुई। १९३० में डा० मलानने ट्रान्सवाल लैन्ड टिन्योर बिल पेश किया जो १९३२ में पास हुआ, यद्यपि १९३६ में होफमेयरकी वजहसे उसमें कुछ सुधार कर दिये गये। उसी साल सलमूस ऐक्ट भी पास हुआ जिसमें गरीब भारतीयोंको खूब तंग होना पड़ा। १९३९ में श्री स्टाटफोर्डके जरिये एशियाटिक-बिल पेश हुआ। सन् १९४३ में जनरल स्मट्स द्वारा पेगिंग ऐक्ट और १९४६ में घिटो बिल पास हुआ जिसके कारण आज भारतवासी दक्षिण अफ्रीकामें जीवन और मरणके संघर्षमें फँसे हुए हैं।

पूर्वी अफ्रीकासे भारतीयोंको उखाड़ फेंकनेके लिए इस समय वहाँ भारतीयोंके विरुद्ध 'पूर्वी अफ्रीका प्रवेश बिल' पास करनेकी तजवीज हो रही है। इसे रुकवानेके लिए वहाँके व्यापारी संघके अध्यक्षने हाल ही में (१७ दिसम्बर १९४७ को बम्बईमें यह समाचार प्रकाशित हुआ है) महात्मा गांधी और पं० नेहरूको तार भेजा है कि ब्रिटिश सरकारसे अपील कीजाय कि गोल मेज सम्मेलन या शाही कमीशनकी नियुक्ति होने तक पूर्वी अफ्रीका प्रवेश बिल स्थगित रखा जाय। क्योंकि यह बिल

भारतीयोका ही नही, बल्कि दक्षिण अफ्रीका भरके तमाम भारतीयोंकी जिम्मेदारी है। और अगर हम इस बिलका अर्थ अच्छी तरह समझ ले तबतो सारे भारतवर्षकी प्रतिष्ठाकी जवाबदारी भी हमारे सिर पर आती है। क्योंकि यह नही कहा जा सकता कि इस बिलसे केवल हमारा ही अपमान होगा, बल्कि इसमे तो सारे भारतवर्षका अपमान है। अपमानका मतलब ही यह है कि निर्दोष मनुष्यका मान-भंग किया जाय।"[1]

ऐसी स्थितिमे आवेश और आवेगको छोडकर गाधीजीने भारतीयोंको गंभीरता और विवेकके साथ कार्य करनेकी सलाह दी और सचेत कियाकि "इस कठिन प्रसंग पर अगर हम जल्दबाजी करेगे, अधीरता दिखायेगे, क्रुद्ध हो जायेगे तो हम उसके द्वारा इस हमलेसे अपनी रक्षा न कर सकेगे। पर यदि शाति-

---

पास होकर कानून बन गया तो इससे पूर्वी अफ्रीकामें न केवल भारतीयो का प्रवेश बन्द हो जायगा, बल्कि उनके व्यापार आदिको भी गहरा धक्का लगेगा।

इस समय (जनवरी १९४८) इमीगरेशन ऐक्टके विरुद्ध दक्षिण अफ्रीकामे सत्याग्रह चल रहा है। नेटालके सत्याग्रही रोज ट्रान्सवालकी सीमाको लाँघकर वहाँ प्रवेश करते जा रहे है। ईश्वर जाने गोरे अन्याय का कब खातमा होगा! ताज्जुब तो यह है कि हिटलरको बुरा-भला कहने वाले आज स्वय कमजोरो और दूसरो पर 'हिटलर शाही' बरत रहे हैं।

१—दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह, अनु, वैजनाथ जगन्नाथ मोयदे पृष्ठ १४५-१४६.

पूर्वक उसका उपाय ढूँढेंगे, वक्त पर उसका अवलम्बन करेंगे, एकता पूर्वक रहेंगे, और अपमानका प्रतीकार करते हुए जो मुसीबतें आवें, उनका स्वागत करेंगे, तो मुझे तो विश्वास है कि स्वयं परमात्मा ही हमारी सहायता करेंगे।"

गांधीजीकी इस विवेकपूर्ण सलाहको मानकर भारतीय नेताओंने अन्तमें यह निश्चय किया कि उपरोक्त खूनी कानूनके विषयमें गाम्भीर्यपूर्वक सोचने-विचारनेके लिए भारतीयोंकी एक विराट सभा की जाय। यह निश्चय सबको पसन्द आया, और इसलिए सभाको बुलानेके लिए यहूदियोंकी एक नाट्यशाला भी किराये पर ले ली गई। इस सभामें भारतीय लोग गांधीजीका आह्वान पाकर खूब बड़ी संख्यामें शामिल हुए। सभामें शामिल होनेके लिये ट्रान्सवाल के विभिन्न शहरोंसे भी प्रतिनिधि बुलाये गये थे। अतः सभाके दिन सारी नाट्यशाला भारतीयोंसे खचाखच भर उठी। इस सभाके अध्यक्ष ट्रान्सवाल ब्रिटिश इन्डियन ऐसोशियेशनके अधिपति मि० अब्दुलगनी नियुक्त किये गये।

इस महती सभामें प्रथम गांधीजीने बिलके विरोधमें एक प्रस्ताव रखा जिसका आशय यह था—'इस बिलका विरोध करनेके लिए तमाम उपायोंका अवलम्बन किया जाय, पर यदि इतने पर भी यह पास हो ही जाय तो भारतीयोंको उसके आगे सिर न झुकाना चाहिए, और इस अवज्ञाके फलस्वरूप जो जो भी दुःख सहने पड़ें, वे सब सहे जायँ।' इस प्रस्तावका सबने जोरोंसे स्वागत किया। भारतीय वक्ताओंमें से सेठ हाजी हबीबने ईश्वरकी दुहाईके साथ प्रस्तावका समर्थन करते हुए

यहा तक कहाकि "परमात्माको साक्षी करके हमे इस प्रस्तावको स्वीकृत करना है। मै इस मजलिससे भी यही सिफारिश करता हू कि वह भी अल्लाहको साक्षी करके इसी प्रकार प्रतिज्ञा ले।"

यकायक ईश्वरका नाम लेकर इस प्रकार प्रतिज्ञा करने और करानेकी ललकारने गाधीजीके हृदयमे एक तूफानसा पैदा कर दिया। इस प्रतिज्ञाकी वात कहे जानेसे पूर्व गाधीजी ठीक तरह से प्रस्तावके वारेमें अपना वा देशवासियोके कर्तव्या-कर्तव्यको ठीक तरहसे निश्चित न कर सके थे। किन्तु ईश्वरके नामपर सेठ हवीव द्वारा प्रतिज्ञाकी आवाजने उन्हे चेता सा दिया। उनका अतर मानो 'ईश्वर'के नाम लिये जानेसे जाग सा उठा। महात्मा होनेके वादसे गाधीजीको वहुधा अंतरकी प्रेरणा ही चेताती रही है, लेकिन इस समय उनको चेतानेवाली प्रेरणा अन्तरसे नहीं, वाहरसे मिली थी। यह प्रेरणा सेठ हवीवके कथनसे ऊर्जित हुई थी।

गाधीजीने लिखा है कि विलके "समर्थनमे और भी कई जोशीले भाषण हुये थे। पर जव सेठ हवीव वोलते-वोलते कसम खाने पर आये तव मै एकदम सावधान हो गया। वस उसी समय मुझे अपनी और कौमकी जिम्मेदारीका पूरा-पूरा खयाल हुआ ..।"

प्रस्ताव केवल पास करनेके लिये ही नहीं होने चाहिये, किन्तु उनपर चलना भी जरुरी है, नहीं तो उससे प्रतिज्ञा तोडनेका पाप होता है, गाधीजी इस वातको पूरी तरह समझते थे। स्वय गांधीजीने अभीतक प्रतिज्ञा करने और लोगोंसे भी प्रतिज्ञा

करवानेकी बात न सोची थी, किन्तु हबीबके कथनने उन्हें प्रतिज्ञा करनेका जो मार्ग दिखलाया, वह बहुत ही पसन्द आया।

अतः गाधीजीने हबीबका अनुसरण करते हुए अब जनतासे भी 'प्रतिज्ञा' करवाने की ठानी! लेकिन प्रतिज्ञा करानेसे पहले उन्होंने निश्चय किया कि "जनताको उसके तमाम परिणामों-से परिचित करा देना चाहिये, प्रतिज्ञाका अर्थ स्पष्ट रूप से उसे समझा देना चाहिये और इतने पर भी यदि वह प्रतिज्ञा करे तो उसका सहर्ष स्वागत करना चाहिये। और अगर न करे तो मुझे समझ लेना चाहिये कि लोग अभी अंतिम कसौटी पर चढनेके लिये तैयार नहीं हुये।"

इस निश्चय के अनुसार गाधीजीने अब अपने देशवासियोंको जाचना और टटोलना शुरू किया। गाधीजीकी यह भी एक महान् विशेषता है कि वे अपने पीछे लोगोंको कभी बहकाकर या धोखे मे डालकर ले जाना पसन्द नहीं किया करते। उनको अहकारी व झूठे नेतृत्वका कभी शौक नहीं रहा! वे तो हमेशा सेवक रूपसे रहे हैं और इसलिये अपने साथ निरहकारी, सच्चे और त्यागी व्रतधारियोंको ही चाहते रहे हैं। इसी उसूल पर चलते हुये उन्होंने भारतीयोंको प्रतिज्ञा लेनेसे पहिले उसका कठिन स्वरूप खुले और भयप्रद शब्दोंमे जाहिर कर दिया!

भारतीयोंको सम्बोधित करते हुये उन्होंने कहा कि वे ही लोग कसम खाये जो अपनेमे कसम खानेकी शक्ति प्रतीत करे। कसम-के कुपरिणामों पर प्रकाश डालते हुए गाधीजी ने बतलाया कि "यदि अधिकाश भारतीय कसम खाय और अपनी-अपनी कसम पर कायम रहें, तो यह कानून पास भी न हो और यदि हो भी

जाय तो फौरन् रद हो जाय।" पर इस आशापूर्ण चित्रके साथ गाधीजी ने नैराश्यपूर्ण गर्त्तकी ओर भी लोगोका ध्यान खीचा, और स्पष्टतया यह बतला दिया कि 'दूसरी तरफसे केवल निराशावादी बनकर कसम खानेके लिये भी उन्हे तैयार रहना चाहिये।' और तब गाधीजी ने जनताके सामने होने-वाले संघर्षके कडुवे और कठोर परिणाम पेश किये—"हमे जेलमें जाना होगा, वहा अपमान सहन करना होगा, भूख-प्यास और धूप भी सहना होगा; सख्त मजदूरी करनी पड़ेगी। उद्धत दारोगाओंके हाथकी मार भी खानी पड़े तो आश्चर्य नही। जुर्माना होगा और कुर्कीमे माल असबाब भी बिक जा सकता है। अर्थात् सक्षेपमें कहना चाहें तो आश्चर्य नहीं कि आप जितने दुःखकी कल्पना कर सकते हों, वे सभी हमे सहने पडे, और समझदारी तो इसी मे है कि हरएक आदमीको यही सोचकर प्रतिज्ञा लेनी चाहिये कि यह सब अकेले मुझीको सहना पड़ेगा।" और ऐसा होने पर गाधीजीने उन्हे इस बातका पूरा विश्वास दिलाया कि विजय हमारी ही होगी, क्योंकि उन्होने कहा—"यह तो मैं हिम्मत और निश्चयके साथ कह सकता हू कि जब तक अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहनेवाले मुट्ठीभर आदमी भी बने रहेगे, तबतक इस युद्धका अंत एकही प्रकारसे हो सकता है अर्थात् हमारी ही जीत होगी।"

स्मरण रखिये कि गाधीजी के नेतृत्व की महानता इसी बातमें है कि वे दूसरोंको ही किसी कार्यविशेष के लिये प्रेरित नहीं करते, किन्तु स्वयं भी वे उस कार्यके पीछे होते है, जिसके पीछे चलनेको वे दूसरोंको आमन्त्रित किया करते हैं! वे अपने उठाये हुये कार्यकी सबसे बडी जिम्मेदारी वस्तुतः अपने पर ही

समझते हैं। उपरोक्त अवसर पर अपनी जिम्मेदारी पर प्रकाश डालते हुये उन्होंने उद्‌घोषित किया—"यद्यपि मैं आपको प्रतिज्ञा लेनेसे सामने आनेवाली कठिनाइयां दिखा रहा हूं तथापि मैं आपको प्रतिज्ञा लेनेके लिये प्रेरित भी कर रहा हूं। इसमें मैं अपनी जिम्मेदारी बराबर समझता हूँ। हो सकता है कि आवेश या रोषके कारण इस सभाका बहुत बडा हिस्सा यह प्रतिज्ञा करे, पर मुसीबतके समय कमजोर साबित हो और आखिरी ताप सहन करनेके लिये मुट्ठी भर आदमी ही रह जावें।"

अतः वचनोंमे दृढ और आत्मविश्वास पर अटल आस्था रखनेवाले गांधीने दृढ़ और लौह शब्दोंमे लोगोंको जतला दिया कि ऐसी स्थितिमें "मेरे जैसे आदमीके लिये तो केवल एक ही रास्ता बचा है—मर मिटना, पर इस कानूनके वश न होना। मैं तो यह भी मानता हूँ कि कर्त्तव्य कीजिये—यद्यपि ऐसा होने की जरा भी सभावना नहीं तथापि मान लीजिए—कि सभी फिसल पडे और अकेला मैं ही रह जाऊं तथापि मुझे यह पूरा विश्वास है कि उस हालत मे भी मुझसे प्रतिज्ञाका भंग कदापि नहीं हो सकता।" और फिर गांधीजीने मुड कर मंच पर बैठे अन्य नेताओंकी ओर देखते हुये कहा कि जो कुछ उन्होंने कहा है उसे कोई थोथा घमंड न समझे, किन्तु यह सब "इस मंच पर बैठे नेताओंको सावधान करनेके लिये कहा गया है। अपना उदाहरण लेकर नेताओंको मैं विनयपूर्वक यह कहना चाहता हूं कि अगर आपमें यह शक्ति न हो कि आपके केवल अकेले रह जाने पर आप उस पर दृढ न रह सकेंगे तो यह प्रतिज्ञा मत कीजिये।"

लेकिन आगत संकटो और विपत्तियोका इतना विराट रूप दिखलाने पर भी पूरी सभाने खड़े होकर और परमात्माकी साक्षी देकर हर्ष और स्वच्छन्दताके साथ प्रतिज्ञा ली कि 'यदि कानून पास भी हो गया तो हम उसके आगे सिर न झुकावेगे।' इस प्रतिज्ञा और जनताके अदम्य तथा अपूर्व उत्साहका गाधीजीके हृदयपर वड़ा ही अमिट प्रभाव पडा। उस प्रभावोत्पादक दृश्यका उल्लेख करते हुये गांधीजी लिखते है कि "यह दृश्य ऐसा था कि मै उसे कभी भूल नहीं सकता।"[1] इस विराट सभाके बाद दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय कार्यकर्ताओने सर्वत्र जगह-जगह खूनी कानूनके विरोधमें सभायेकीं और लोगोसे प्रतिज्ञा करवाई। देखते ही देखते सारा दक्षिण अफ्रीका इन प्रतिज्ञाओकी ज्वालासे प्रज्वलित हो उठा और लोग आगत 'सघर्ष' की वाट जोहने लगे।

इस प्रकार गांधीजीके नेतृत्वमे दक्षिण अफ्रीकामे प्रथमतः अपने अधिकारो और अन्यायके विरुद्ध लडनेके लिये उस अन्दोलनका सूत्रपात्र हुआ जो आज ससारमे 'सत्याग्रह'के नामसे प्रसिद्ध है और जिस युद्ध-पद्धतिका अनुसरण कर भारत आज स्वतत्र हो गया है।

संघर्ष छेड़नेसे पूर्व शाति द्वारा मामला तय करने की गरजसे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय नेताओने स्थानीय सरकारसे मिलनेके लिये भी प्रयत्न किये। एक भारतीय शिष्ट-मण्डल (Deputation) औपनिवेशिक सचिव मि० डन्कनसे भी मिला। सचिवको भारतीयोकी प्रतिज्ञा के वारेमे भी सचेत किया गया। सेठ

---

1. Satyagraha In South Africa, M. K. Gandhi, Trans. by Govindji Desai, pp 169–170

हाजी हबीबने, जो डेप्यूटेशनके एक मेम्बर थे, खुले शब्दोंमे सचीवको यहा तक अगाह किया कि 'अगर मेरी औरतकी उगंलियोंकी छाप लेनेके लिये कोई अधिकारी आवेगा तो ... उसे मै जानसे मार डालूंगा और खुद भी मर जाऊंगा।' इस अदम्य साहसको देखकर सचिव घबरासा उठा। अतः शिष्टमण्डलको आश्वस्त करते हुए उसने कहा कि औरतोसे सम्बन्ध रखनेवाली धाराएं उठा दी जावेगी, लेकिन बाकी कानूनको उन्हें भल-मनसाहतके साथ स्वीकार कर लेना चाहिये। शिष्ट-मडलने स्त्रियोंसे सबध रखनेवाली धाराको हटानेका वायदा देनेके लिये तो सचिवका आभार प्रकट किया पर कानूनकी शेप शर्तोंको मान लेनेकी उनकी नेक सलाह अपनानेसे साफ इन्कार कर दिया।

स्त्रियों परसे खूनी कानूनकी शर्त्तोंका हटाया जाना निःसन्देह भारतीय आन्दोलनकी प्रथम विजय थी। इस विजयसे भारतीय आन्दोलनको शक्ति और बल तो मिला ही, किन्तु यह भी प्रकट होगया कि होनेवाले आन्दोलनकी प्रखरताका गोरी सरकार भी अनुभव करने लगी है। इसके अलावा भारतीयोंको यह विश्वास भी होगया कि सगठित होकर दृडतासे कार्य करने पर निश्चयपूर्वक किसी और कैसी भी शक्तिका सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सकता है। निःसन्देह गांधीने उन्हें ऐक्यकी महिमा और आत्मकी शक्तिका प्रत्यक्ष दर्शन करा दिया था।

आन्दोलनका नामकरण—

आन्दोलनका इस प्रकार निश्चय कर लिये जाने पर गांधीजी अब इस बातकी चिन्ता करने लगे कि अपने

शान्तिमय अवज्ञा आन्दोलनका नाम क्या रखा जाय ? अतः पहले उन्होंने इस आन्दोलनका नाम "पैसिव रिजिस्टेन्स" (Passive Resistance) रखा। किन्तु इस नामसे वे संतुष्ट न हो सके, क्योंकि एक तो इस नामसे वह अर्थ पूर्णतया व्यक्त न होता था जो गाधीजी चाहते थे, और दूसरे वे अपने आन्दोलन को अगरेजी नामसे पुकारनेमें संकोच भी मालूम कर रहे थे। फलतः गांधीजीने आन्दोलनके नामके लिये 'इडियन ओपीनियन' द्वारा भारतीयोसे सुझाव मांगे। इन सुझावोमे एक सुझाव श्री मगनलाल गाधीका था कि आन्दोलनका नाम "सदा ग्रह" रखा जाय। यह सुझाव गाधीजीको पसन्द आया। पर इस नामके 'द' को 'त' बनाकर और उसमे 'य' जोड़कर गाधीजीने "सदाग्रह" को "सत्याग्रह" मे रूपान्तरित कर दिया। इस प्रकार सत्याग्रह शब्दका जन्म हुआ और गाधीजीके आन्दोलन सत्याग्रहकी संज्ञासे पुकारे जाने लगे। इस नामकी उपयुक्तताको समझाते हुए गांधीजीने लिखा है "सत्यके अदर शान्तिको समाविष्ट मानकर किसी भी वस्तुके लिये आग्रह किया जाय तो इसमेंसे बल उत्पन्न होता है। इसलिये "आग्रह" के द्वारा उसमे बलका भी समावेश करके भारतीय आन्दोलनका नामकरण "सत्याग्रह" अर्थात् सत्य और शान्तिसे उत्पन्न होनेवाला 'बल' करके उसका प्रयोग शुरू कर दिया। तबसे इस युद्धको "पेसिव रिजिस्टन्स" नामसे पुकारना बद कर दिया गया। "सत्याग्रह" के नामसे पुकारे जाने वाली वस्तुका और सत्याग्रहका जन्म इस प्रकार हुआ है"।[1]

---

1 Ibid pp 172–173

विलायतको डिप्यूटेशन—

भारतीयोंके आन्दोलनकी धमकीसे स्त्रियों से संबध रखने वाली धाराए तो ओपनिवेशिक सचिवके वायदेके अनुसार कानूनसे हटा दी जा चुकी थी। लेकिन शेष कानून १२ सितंबर १९०६ को प्रायः उसी रूपमे पास कर दिया गया, जिस रूपमे मूलत वह प्रकाशित हुआ था।

किन्तु भारतीय इससे निराश न हुये। वे हिम्मत बॉधकर वहॉकी गोरी सरकारसे जूझनेको तैयार हो चुके थे और केवल उपयुक्त अवसरकी बाट देखी जा रही थी। गाधीजीकी सलाह भी थी कि युद्ध छेडनेसे पूर्व जितने वैध प्रयत्न हो सकते है, उन सबका पहले प्रयोग कर लिया जाना चाहिये। ट्रान्सवाल उस समय क्राउन कॉलोनी था। उक्त प्रकारकी कॉलोनी के कानून और उनके व्यवहारके लिये बडी सरकार उत्तरदायी रहती है। इसलिये उनकी मजूरीके लिये कॉलोनीकी सरकारको बादशाहकी सम्मति लेना आवश्यक होता है। इसलिये गाधीजीने युद्ध छेडनेसे पहले भारतीयोंको उपरोक्त खूनी कानूनके विरोधमे एक डिप्यूटेशन बडी सरकारके पास इगलैड भेजने की सलाह दी। गाधीजीकी यह राय सबको पसन्द आई और निश्चय हुआ कि औपनिवेशोंके मत्री लार्ड एल्गिन के पास भारतीयोंकी ओरसे दो प्रतिनिधि इगलैण्ड भेजे जॉय। इस निश्चयके अनुसार गाधीजी और मि० हाजी वजीर अलीको जो ट्रान्सवाल ऐसोसियेशनके मेम्बर थे, सर्वसम्मतिसे इंगलैण्ड जानेके लिए प्रतिनिधि चुन लिया गया।

फलतः अक्तूबर २०, १९०६ को गाधीजी मि० हाजी वजीर

अलीके साथ विलायत पहुचे, और तुरन्त ही वहाँ अपने काम पर लग गये। वह अर्जी जो उनको सचिव लार्ड एल्गिनको देनी थी, छपवा ली गई। पर सचिवसे मिलनेसे पूर्व गांधीजी पहले दादा भाई नौरोजीसे जाकर मिले और उनके जरिये उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश कमिटीसे भी परिचय प्राप्त कर लिया। दादाजीने गाधीजीको अपने आन्दोलनको वढाने और मजबूत करनेके खातिर सव पक्षोका सहयोग लेनेकी सलाह दी। यह सलाह गांधीजीको वहुत पसन्द आई, और इसलिए जहाँतक वन पडा, वे अपना पक्ष लेकर सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियो और दलोसे मिलनेका यत्न करते रहे। इसी सिलसिलेमे उन्होंने मैंचेरजी भावनगरीसे भी मुलाकात की, जिनसे उनको अपने कार्यमे यथेष्ट सहयोग प्राप्त हुआ। इसी तरह गांधीजी कई एक एंग्लो-इंडियन और पार्लियामेन्टके सदस्यो आदिसे भी अपने मामलेके विपयमे जाकर मिले और उन्हें अपने पक्षकी सारी वातो और दक्षिण अफ्रीकाकी वस्तु-स्थितिसे परिचित कराते रहे। दादा और भावनगरीने गांधीजीको यह भी सुझाया कि भारतीय डिप्यूटेशन जव लार्ड एल्गिनको मिलने जाय तो सुविख्यात एंग्लो-इडियन श्री लेपल ग्रीफन, जिनका इंगलैंडमे काफी प्रभाव था, उनको भी साथ ले लिया जाय। गाधीजीने इस रायका महत्व समझा और डिप्यूटेशनके साथ ग्रीफनको शामिल होनेके लिये तैयार कर लिया। अतः भेटके समय गाधीजी, हाजीके अलावा ग्रीफनको भी डिप्यूटेशनमे साथ लेकर एल्गिन तथा भारत-मंत्री श्री मोर्लेसे मिले। लार्ड एल्गिनने वाहरी रूपसे डिप्यूटेशनके साथ खूब हमदर्दी दिखलाई और उसके प्रतिनिधियोंको वचन भी दिया कि उनसे जो कुछ वन पडेगा, वे

अवश्य करेंगे। लार्ड मोर्लेने भी इसी प्रकार डिप्यूटेशनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की और स्थितिमें सुधार किये जानेका दिलासा दिया।

स्थाई समितिकी स्थापना —

इसी समय गांधीजीके मनमें यह खयाल उठा कि यदि वे स्थाई रूपसे इंगलैण्डमें अपने पक्षका समर्थन चाहते हैं तो उन्हें वहाँ पर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंसे सहानुभूति रखने वाले लोगोंकी एक स्थाई समिति स्थापित कर लेनी चाहिये। इस निष्कर्ष पर पहुंचकर दक्षिण अफ्रीकाको वापिस लौटनेसे पूर्व उन्होंने एक दिन सुबहको प्रमुख १०० सदस्योंको अपने यहाँ आमन्त्रित किया और अपना पक्ष तथा स्थाई समितिकी योजनाको उनके सामने रखा। इस योजनाको सभीने पसन्द किया और तुरन्त ही दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके हित काम करनेके लिए 'साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमेटी' (South Africa British Indian Committee) नामसे लन्दनमें एक संस्था स्थापित कर दी गई जिसके पहले मन्त्री मि० रिच नियुक्त हुये। इस कमिटीकी स्थापनासे जैसा कि गांधीजीने सोचा था निःसन्देह उनके आन्दोलनके प्रचार कार्यमें बड़ी सहायता मिली।

इस प्रकार विलायतमें ५-६ सप्ताह निरन्तर आन्दोलनके कार्यमें व्यतीत करनेके पश्चात गांधीजी और मि० हाजी वजीर अली दक्षिण अफ्रीकाको लौट चले। मडिरामें पहुचनेपर यकायक गांधीजीको मि० रिचका तार मिला कि लार्ड एल्गिनने यह प्रकट किया है कि ट्रान्सवालके एशियाटिक एक्टको नामंजूर

करनेके लिये सचिव मडलने बादशाहसे सिफारिश कर दी है। गाधीजी और अली इस खुश खबरीको पाकर स्वभावतः हर्षित हो उठे। अपने आन्दोलनकी इस सफलतासे उन्हे सचमुच बडा ही सन्तोप और आनन्द हुआ। किन्तु सरल और निष्कपट गाधीको तब क्या मालूम था कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ बाहरसे क्या कहते है और भीतरसे क्या कर गुज़रते है? पर दक्षिण अफ्रीका पहुँच जानेपर यह भेद भी गाधीजीसे छिपा न रह सका।

सत्याग्रहका आरम्भ

अध्याय १०

ब्रिटिश चाल—

गांधीजीको तो लार्ड एल्गिनने यह आश्वासन दिया था कि वे उस खूनी कानूनको मंजूर न होने देंगे, लेकिन दूसरी तरफ उन्होंने ट्रान्सवाल सरकारके राजदूत सर रिचर्ड सालोमनको यह सलाह दी कि जब तक ट्रान्सवाल टाउन कॉलोनी या सल्तनती संस्थान है, तब तक तो वे बादशाहको ऐसे भेद भरे कानूनको पास न होने देनेकी ही सलाह देंगे, पर जनवरी १९०७ को जब ट्रान्सवालको उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दे दिया जायगा, तब उस समय यदि यह कानून पुनः उत्तरदायित्वपूर्ण शासनकी धारा सभामें स्वीकृत किया गया तो बडी सरकार उसे नामंजूर नहीं करेगी।

लार्ड एल्गिनका छिपकर ट्रान्सवालके राजदूतसे इस प्रकारकी सलाह करना एक प्रकारसे भारतीयोंके साथ दगा और अन्याय करना था। गांधीजीके शब्दोंमें "सच पूछा जाय तो लार्ड एल्गिनने अपने इन वचनों द्वारा ट्रान्सवालके गोरोंको भारतीयोंके खिलाफ अपनी हलचल जारी रखने के लिये एक तरह से उत्साहित ही किया।"[1]

---

1 Satyagraha in South Africa, P 195

भारतीयो मे रोष और प्रतिक्रिया

अतः जब गांधीजी और अली जोहान्सबर्ग पहुंचे तो उन्हे यही बात सुनने को मिली कि लार्ड एल्गिनने और बड़ी सरकार ने भारतीयोंके साथ धोखा किया है। इस धोखे की बातसे भारतीय क्षुब्ध और क्रोधित हो उठे। भारतीय कौममे ऐसे अन्यायके खिलाफ उठने की भावना अब पूर्णरूपसे प्रबल हो उठी। उनके अन्तर का विद्रोह हृदयके बांध को तोड़कर भूमिपर उतर आया। भारतीयोंने बड़ी और छोटी सरकार की जीर्ण शीर्ण चिन्ता और खौफ अपने दिल वा दिमागसे निकाल कर दूर फेक दी, और अपने आत्मबल तथा न्यायबल का सहारा लेकर दृढताके साथ लड़ने को प्रस्तुत हो गये। संक्षेपमे जनबल ने साम्राज्यवादके पशुबल को चुनोती दे दी थी।[1] इस हलचलके कारण विश्वकी ऑखे विस्मयसे भरकर अफ्रीका की ओर घूम उठीं। गोरे भी सोचने लगे यह कैसा दुस्साहस।

ट्रान्सवाल की नयी सरकार और खूनी कानून—

पहली जनवरी १९०७ को ट्रान्सवालमे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन भी कायम हो गया। इस नयी उत्तरदायी सरकारने पहला गैर उत्तरदायी काम यह किया कि अपनी पार्लियामेण्टकी पहली बैठकमे ही सरासर कानून पास करनेकी सारी कार्रवाइयॉ पूरी करके 'खूनी कानून'को जैसाका तैसा मूल रूपमे पास कर दिया। २ भारतीयोने पहलेकी भॉति अपनी तरफसे इस कानूनके

---

1. An Indian Patriot by J J Doke p 74

विरोधमें अर्जियाँ आदि नई सरकारको भी भेजीं, किन्तु उनपर गौर करने वाला वहा कौन बैठा था? फलतः सरकार द्वारा उक्त कानूनके आधार पर भारतीयोंसे नवीन प्रकारके परवाने लेनेके लिए उसी सालके (१९०७) अगस्तकी पहली तारीखका दिन भी निश्चित कर लिया गया।

सत्याग्रहकी तैयारी—

सरकारने जिस निर्भीकताके साथ उस कानूनको पास किया, उसी निर्भीकताके साथ भारतीयोंने भी उसका स्वागत किया। भारतीय इस बार खूनी कानूनको पास हुआ देखकर डरनेके बजाय उससे भिड़नेके लिए तनकर खड़े हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि मर मिटेंगे, लेकिन ऐसे अमानवीय कानूनको सिर न झुकायेंगे। गांधीने उनमें निःसन्देह अपने आत्मबलका आश्रय और 'सत्याग्रह'का अपूर्व सहारा पैदा कर दिया था। अतः खूनी कानून क्या पास हुआ कि भारतीय हृदयोंसे खूनी राजशक्तिका भय ही निष्कासित हो उठा! सत्य असत्यके सामने क्यों और कैसे पराभूत हो सकता है,—ये भाव गांधीजीने भारतीय हृदयोंमें पूरी तरहसे रोप दिये थे। फलतः गांधीके नेतृत्वमें सरकारकी कुनीति और असत्यका सामना करनेके लिए निर्भीक होकर सम्पूर्ण भारतीय सत्यकी अर्चना करते हुए सत्याग्रह करनेकी तैयारी पर जुट गये। इस सत्याग्रहके आन्दोलनको संगठित करनेके लिए 'पैसिव रिजिस्टेन्स ऐसोसियेशन' अथवा सत्याग्रह मण्डलके नामसे एक मण्डल भी स्थापित कर लिया गया। आन्दोलनमें शरीक होने वाले सभी सत्याग्रहियोंको इस मंडलके सदस्य बनना

आवश्यक था। सत्याग्रहके लिए सिपाही तैयार करनेके लिए सर्वत्र सभाएँ भी की जाने लगीं। जनताको खूनी कानूनके पास होनेसे जो नवीन परिस्थिति पैदा हो गयी थी समझाई गई, और उन्हे फिरसे यह प्रतिज्ञा लेनेको उत्साहित किया गया कि वे खूनी कानूनके विरोधमे अन्त तक देशवासियोका साथ निभावेगे। और उमंगसे भरी जनताने सर्वत्र ही बड़े उत्साह और तत्परताके साथ अपनी तरफसे खुशी-खुशी कौमको मुक्त होकर सहयोग देनेका वचन दिया।

सत्याग्रहकी तैयारीमे सबसे विराट सभा ३१ जुलाईको प्रिटोरियामे हुई थी। इस सभामे लोग बड़े जोश और उत्साह के साथ बहुत बड़ी सख्यामे शामिल हुए थे। खूनी-कानूनके अनुसार नये परवानोके लागू किये जानेके दिन भी तब निकट आ पहुचे थे। इससे भारतीय और गोरी सरकार दोनोंमे गहन स्तब्धता छा उठी थी। दोनो ही कानून के परिणामों का मन ही मन चित्र खींचनेमे तल्लीन थे। भारतीय भावी सत्याग्रह-सग्रामकी कल्पनामे चिन्तातुर थे और गोरी सरकार इस चिन्तासे ग्रस्त थी कि क्या वह एक कौम को सचमुच बल प्रयोगसे झुका सकेगी? अतः प्रिटोरियामे जब सभा हो रही थी, गोरी सरकारकी तरफसे मि० हास्किनके मुखसे भारतीयोंको यह सदेश दिया गया—"ट्रान्सवाल सरकार की शक्तिसे भारतीय भलीभांति परिचित है। इस कानूनमे बडी सरकारकी भी सम्मति है। जिस हालतमे पहले भारतीय कौमका विरोध सफल नहीं हुआ और कानून पास हो गया, उस हालतमे अब भारतीय कौमको चाहिये कि वह उक्त कानूनको

मान ले . । उन कानूनके आधार पर जो कुछ धाराए बनाई गई है, यदि उनमे कोई हलका सा फेर-फार कराना हो और उसके विषयमे कुछ कहना सुनना हो तो जनरल स्मट्स निश्चय ही आपकी फरियाद ध्यानपूर्वक सुनेगे।" पर भारतीय कौमने, जिसने परमुखापेक्षी ओर परावलम्बी न होनेका दृढ सकल्प कर लिया था—और जिसने अपने आत्म-बलका सहारा लेकर अन्त तक असत्यसे जुझनेकी तैयारी भी कर ली थी, हास्किनकी इस भीरु, निष्क्रिय और फालतू सलाह पर ध्यान देनेसे साफ इनकार कर दिया।

प्रिटोरियाकी उस दिन की सभाके सर्वमान्य वक्ता श्री अहमद महम्मद काछलिया थे। इसलिए हास्किनको उत्तर देनेका उन्हीं पर भार पडा। काछलियाने इस उत्तरदायित्वको निश्चय ही एक सच्चे सत्याग्रही सैनिक की तरह पूरा किया जिससे प्रसन्न होकर गांधीजीने उन्हें 'पुरुष सिंह'की उपाधि प्रदान की। उस पुरुषसिंहने गोरी सरकारको चुनाती देते हुए कहा—"ट्रान्सवाल सरकारकी ताक्तको हम जानते है। पर इस खूनी कानूनसे अधिक किस बातका डर हमे सरकार बता सकती है? जेल भेजेगी, जायदाद बेच देगी, हमे देशसे बाहर कर देगी—फॉसीपर लटका देगी। लेकिन यह सब हम सहन कर सकते है, पर इस कानूनके आगे सर झुकाना असभव है।" और फिर गर्दन पर हाथ रखकर पुरुष-सिंह और भी जोरसे गरज उठा—"मै खुदाकी कसम खाकर कहता हूँ कि मै कत्ल हो जाऊँगा, पर इस कानूनको नहीं मान सकता और मैं चाहता हूं कि यह सभा भी यही निश्चय करे।"[1]

---

1 Satyagraha in south Africa pp 207–208

और सचमुच आत्मत्याग और बलिदानके लिए प्रस्तुत कौमने मुक्त हृदय और कंठसे उस पुरुषसिंहके निश्चयको स्वीकार किया। पुरुषसिंहके बाद गांधीजीने भी लोगोंको स्पष्ट शब्दोंमें यह जतला दिया कि "यदि इस समय हमलोग पीछे हट गये तो अपनी जाति और अपने देशको गिराने वा कलंकित करनेके आधारभूत कारण बन जायेंगे और हमारी संताने हमें हमेशा इस कायरताके लिए धिक्कारा करेंगी—कोसा करेंगी। इसलिए उचित यही है कि हम अपनी और मातृभूमि की प्रतिष्ठा एवं गौरवकी रक्षाके लिए हर प्रकारसे कष्ट सहनेको प्रस्तुत रहे। हमे सत्याग्रहके द्वारा गोरे शासको को भी अपने आत्मबल का प्रभाव दिखला देना चाहिए।" ये उपदेश वा भाषण के शब्द नही, क्रान्तिके स्फुलिंग थे, जिन्होंने भारतीयोंके हृदयों को पूरी लपटोंके साथ प्रज्वलित कर दिया। गोरी सरकार का भय भी इन्ही लपटोंमें पड़कर जलकर खार हो गया, और भयमुक्त भारतीय कृतसंकल्प हो गये कि परवानोंके दफ्तर खुलने पर वे उनमे जाकर कभी रजिस्ट्री न करावेंगे चाहे उसका जो भी परिणाम हो। यह निश्चय कोई मामूली निश्चय नहीं, सत्याग्रह संग्रामका श्रीगणेश था।

प्रारम्भमे भारतीयोंके इस सत्याग्रह आन्दोलनमे चीनी लोगोंने भी भाग लिया, क्योंकि वे भी उस खूनी कानून की कक्षा मे आते थे। लेकिन अधीर होकर चीनी लोग सत्याग्रहके संग्राममे भारतीयों की भांति अंत तक डटे न रह सके और जल्दी ही उससे पृथक हो गये।

पिकेटिंग और पकड़ा धकड़ी—

जुलाई महीनेमे ट्रान्सवाल सरकारने खूनी कानूनके अनुसार भारतीयोंको रजिस्टर करने और परवाने लेनेके अनेक स्थानोंमे दफ्तर खोल दिये। अगस्त पहलीसे ये दफ्तर चालू होने को थे। किन्तु भारतीय प्रिटोरिया आदिकी सभाओंमे पहले ही निश्चय कर चुके थे कि वे कतई परवाना न लेगे। अतः उन दफ्तरोंके खुलने पर गाधीजी की सलाह पर यह निश्चय कर लिया गया कि उनपर पिकेटिंग (धरना) की जाय, और इस हेतु दफ्तरों को जानेवाले रास्तों पर स्वयंसेवक खडे किये जाय जो दफ्तरको जानेवाले भारतवासियोंसे परवाना न लेने के लिए अनुनय-विनय किया करे। इस स्वय-सेवकके कार्यके लिए अधिकतर १२ वर्षसे १८ वर्ष तक के युवक ही भर्ती किये गये। युवक स्वयसेवकोंने बहुत ही सुन्दरता और योग्यताके साथ इस गुरुतर कार्यको सपादित किया। उनकी कार्य-कुशलतासे गाधीजी बहुत खुश हुए। उन्हे यह देखकर भी बडी प्रसन्नता हुई कि जिस विनय, सरलता और शातिके साथ उन्होंने युवकदलको कार्य करनेको कहा था, उसका अन्त तक अक्षरशः पालन किया गया।

दूसरी ओर भारतीयोंके इस विप्लवसे ट्रान्सवालकी सरकार परेशान थी। भारतीयोंके बहिष्कार आन्दोलनके कारण दफ्तरों का खुलना बेकार हो रहा था। गाधीजी के नेतृत्वमे भारतीय सरकारी दफ्तरोंकी तरफ पीठ फेरकर निश्चल और अडिग होकर खडे थे। भारतीयोंके इस पौरुष और दृढता की सराहना करते हुए १८ सितम्बरको गोखलेने भी गाधीजी को बधाईका तार भेजा

था। इधर सरकार सोचमें थी कि क्या करे? पहले तो उसे यह आशा हुई कि स्यात् भारतीय डरकर और स्वार्थमें पड़कर खुदही काफी संख्यामें रजिस्ट्री करा लेंगे, लेकिन जब सरकारको यह आशा जल्दी पूरी न होती दिखाई दी तो उसने किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रजिस्ट्रीकी अवधि ३० नवम्बर तक बढ़ा दी। निःसन्देह वह अभी तक अपना कर्तव्या-कर्तव्य निर्धारित ही न कर सकी थी। अवधि बढ़ानेसे भी वह समस्याको न सुलझा सकी, क्योंकि उसके बाद भी ४०० से अधिक भारतीयोंने रजिस्ट्री न करवाई। ये रजिस्ट्रियां खुल्लमखुल्ला भी नहीं हुई थीं। इन रजिस्ट्री करानेवालोंसे केवल उन भीरुओंने कौमसे लुक-छिप कर परवाने लिये थे, जो नितान्त स्वार्थी थे, और इसलिए कष्ट तथा आर्थिक हानि सहन नहीं कर सकते थे।[१]

लेकिन इन परवाने लेने वालोंके कारण एकत्वमें थोड़ा-बहुत विघ्न जरूर हुआ; क्योंकि गांधीजीके शब्दोंमें उनके उक्त कार्यसे, "There was a rift in the lute"—"एक स्वरमें बजती हुई बांसुरीमें फूट पड़ गई थी।"[२] परन्तु सौभाग्यसे इन फूट डालनेवालोंकी संख्या फिर भी नगण्य थी। इस समय कुल भारतीयोंकी संख्या वहांपर १३,००० थी, अतः परवाना लेने वालोंके बाद १२,५०० भारतीय तब भी दृढ़ और अचल होकर ट्रान्सवाल सरकारका मुकाबला करनेको कटिबद्ध थे।

नेताओंकी गिरफ्तारियां—

भारतीयोंकी इस ऐंठको देखकर ट्रान्सवाल सरकार आखिर चिढ़ उठी। उसने अब बल प्रयोग द्वारा भारतीयोंको झुकानेका

---

१ वही पृ० २१३   २ वही पृ० २१४

इरादा किया। इस दिशामें जरमिस्टनके भारतीयोंपर सरकारका पहला प्रहार हुआ। सरकारने सबसे पहले जरमिस्टनके पण्डित रामसुन्दर नामक एक भारतीय नेताको गिरफ्तार किया और मुकदमा चलाकर उसे एक महीनेकी सादी कैदकी सजा दी। यह अभिनय भारतीयोंको दहलाने और दबानेके लिए ही किया गया था, किन्तु सरकारकी इच्छाके विपरीत उसका परिणाम भारतीयोंके लिए बहुत ही प्रभावोत्पादक हुआ। दबानेसे चीज और भी उभडती है—यह एक प्राकृतिक सत्य है। इसलिए सरकारकी इस जबरन दबानेकी नीतिसे भारतीय स्वभावतः और भी क्रुद्ध और सतप्त हो उठे। परिणाम यह हुआ कि जिस अनीति और अत्याचारका भय उन्हें अब तक दबोचे हुए था, वह उनके हृदयोंसे दूर जा छिटका, और सैकड़ों भारतीय जेल जानेके लिए तैयार हो गये। अतः कह सकते हैं कि सरकारकी दबाने और डरानेकी नीतिने भारतीयोंको शक्ति ही प्रदान की।

किन्तु रामसुन्दर जो सरकारकी दमन नीतिका पहला शिकार हुआ था, बडा ही कमजोर व्यक्ति साबित हुआ। इसलिए जैसे-तैसे जेलसे छूटनेके बाद वह सहसा कार्यक्षेत्रसे ही गायब हो गया। रामसुन्दरका यह उदाहरण निःसन्देह दूसरोंको हतोत्साहित करने वाला था, पर सौभाग्यसे उसके डर कर भाग जानेसे दूसरे भारतीयोंपर कोई बुरा असर न पड सका, क्योंकि उनका असली और सच्चा नेता गांधी तो वहां मौजूद ही था। अतः गांधीके रहते हुए एक अशक्त रामसुन्दरके लिए घबडानेका कोई प्रश्न ही न था। निःसन्देह सशक्त गांधी अन्त तक अपने कामका पूर्ण सहारा बन कर हर प्रकारसे भारतीयोंके आत्मबल और

उत्साह को थामे रहे। अपने पत्र 'इंडियन ओपीनियन' (Indian opinion)के द्वारा एक तरफ तो वे अपने साथियोंको हर प्रकारसे मार्ग दिखलाते और सुझाव देते रहे, और दूसरी तरफ भारतीय आन्दोलनका देश-विदेशमें पूरी तरह प्रचार भी करते गये। फलतः गांधीजीके इस दुहरे प्रचारसे भारतीयोंका आन्दोलन दिनों-दिन तेजी पकड़ने लगा।

इधर आन्दोलनकी बढ़ती हुई प्रगति और तेजीको देख-कर सरकार भी मन ही मन उसके कुचलनेका जाल बुनती जा रही थी। वह जनताके उत्साह और बलको दिनोंदिन बढ़ता देखकर क्रुद्ध और परेशान हो उठी थी। पर कई दिन तक तो वह इसी उधेड़बुनमें पड़ी रही कि क्या करे और क्या न करे। अन्तमें उसे सूझा कि गांधी आदि बड़े और खासखास नेताओं को जब तक गिरफ्तार नहीं कर लिया जाता आन्दोलनको रोकना बहुत कठिन है। इस निष्कषपर पहुचकर १९०७ दिसम्बर २८ को ट्रान्सवालकी सरकारने गांधीजी तथा उनके २५ साथियोंको, जिनमें चीनी नेता 'क्वीन' और थवी नायडू आदि शामिल थे, अदालतमें हाजिर होनेके नोटिस-प्रेषित कर दिये। नोटिस पाने पर गांधीजी तथा उनके साथी सरकारकी आज्ञाके मुताबिक अदालतमें हाजिर हुए। वहा मजिस्ट्रेटने गांधीजी तथा उनके कुछ अन्य साथियोंको एक घण्टेके अन्दर ट्रान्सवालसे निकल जानेकी आज्ञा सुनाई। किन्तु गांधी और उनके साथी इस आज्ञाका पालन कर दक्षिण अफ्रीकासे भारतीयोंको निर्मूल करानेके लिए विद्रोही न हुए थे। अतः गोरी सरकारकी इस अनीतिपूर्ण आज्ञाकी किसीने परवाह न की, और इस तरह

निश्चिंत होकर ट्रान्सवालमें डटे रहे, मानों उन्हें कोई आज्ञा ही नहीं मिली थी। फलतः १० जनवरी १९०८ को जिस समयके अन्दर उन्हें चला जाना चाहिये था, गांधी और उनके साथी फिर अदालतमें बुलाये गये। आज्ञानुसार गांधीजी और उनके साथी पुनः अदालतमें हाजिर हुए और जब मजिस्ट्रेटने उनपर 'अवज्ञा' करनेका जुर्म प्रकट किया तो सबने बिना हिचकके अपना-अपना अपराध स्वीकार किया। पर गांधीजीने 'अवज्ञा' के अपराधका सारा दोष अपने ही ऊपर लेकर अदालतको बयान दिया कि—"अपना धर्म समझकर ही मैं इस खूनी कानूनका सामना कर रहा हूँ। मेरे साथियोंने यदि अदालतकी आज्ञा न माननेमें कोई अपराध किया है तो उनसे अधिक अपराध मेरा है, इसलिए मुझे अधिकसे अधिक जो सजा हो मिले।"[1] यह बयान देकर और सारे अपराधोंको अपने सिरपर लेकर गांधीजीने एक सच्चे नेताका कर्तव्य निभाया था। लेकिन मजिस्ट्रेटने गांधीजीके बयान पर ध्यान न देकर उन्हें कुल २ महीनेकी ही सादी कैदकी सजा दी।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीकामें देश और जातिके लिए लड़ते हुए गांधीजी प्रथम बार कैदी बने। ट्रान्सवालकी इस अदालतमें जिसमें वे कई बार वकीलकी हैसियतसे आ-जा चुके थे, देशकी मर्यादाको रखनेके लिए आज अपराधीके पिंजड़ेमें खड़े थे। किन्तु इसका उन्हें कोई क्षोभ न था। देशकी आन और शानके लिए ही उन्हें अपराधी बनना पड़ा था, और इसलिए आज वे दुःखी होनेके बजाय बहुत खुश थे। देशके लिए कुछ करने और सहने की भावनासे उनका हृदय प्रफुल्ल था और आत्मा प्रसन्न थी!

1 Satyagraha In South Africa pp 230-231

निःसन्देह सच्चा और वास्तविक सुख आत्मसुखको मिटाकर सर्वहितके लिए निछावर होनेमें ही है। जिस समय गांधीजीको यह सजा हुई थी, वे एक फलते-फूलते और विकसित होते हुए वैरिष्टर थे। इस सजासे उनके वैभवका सारा बाग वीरान होने जा रहा था। और यद्यपि इस विचारने उनके हृदयमें क्षणभरके लिए एक तिरता हुआ क्षोभ अवश्य पैदा किया, किन्तु उनकी इस मानवीय कमजोरीको उनके आत्मबल और परदुःख कातरतासे उत्पन्न होनेवाली करुणाने शक्ति और तेजसे ढँक दिया, और क्षण ही भरमे वे अपने कष्टो और मुसीबतोंको ही 'पियाकी सेज' समझकर प्रसन्नतासे खिल उठे।

कैदी गाधीको जोहान्सवर्गकी जेलमे पहुँचा दिया गया। उनके जेलमे प्रवेश करनेके कुछही समय बाद उनके कई एक साथीभी वहाँ आ पहुंचे। गाधीको सींकचोंमे डालकर सरकारने सोचा था कि उनके अनुयायी घवड़ा उठेगे और सारा आन्दोलन सरकारके भयके नीचे दवकर शान्त हो जायगा। लेकिन सरकार द्वारा इस प्रकार अपने आराध्य बन्धु और नेताके छीने जानेसे भारतीय भयसे पिघलनेके वजाय, असतोपसे प्रज्वलित हो उठे। इस असंतोपकी वड़वाग्निमे पडकर सरकारका भय मानों जलकर राख हो गया। अतः निर्भीक होकर भारतीय जनताने गाधीजीकी गिरफ्तारीके विरोधमे काले झण्डोंको लहराते हुए एक विराट जुलूस निकला। उनके हाथोंमें लहराते हुए वे काले झण्डे मानों सरकारके काले कारनामोंको चुनौती दे रहे थे। इस प्रदर्शन—इस चुनौतीको सहना स्वेच्छाचारी गोरी सरकारके लिए असह्य हो उठा। उसने पुलिसको इशारा किया और देखतेही

देखते जुलूसको तोडने और उफनते हुए जन-समुद्रको रोकनेके लिए लाठियोंकी बरसा होने लगी। लेकिन लाठियोंकी मार ने क्या कभी जनताके उभारको रोक सका है ? इतिहास बतलाता है कि जनशक्तिके आत्मबलको इस प्रकार शस्त्रोंके पशु-बलसे दबानेमें राजसत्ता हमेशा ही असफल रही है। सचमुच उभड़ती हुई शक्तिको क्या कहीं हाथ पावके जोरसे रोकके रखा जा सकता है ? शक्ति तो उठकर ही रहेगी अन्यथा वह शक्ति ही नहीं हो सकती।

फलतः सरकारकी इस दमन नीतिका वही परिणाम हुआ जो बहुधा हुआ करता है। दमन से विरोध और असतोपकी ज्वाला दबनेके बजाय और भी तीव्रतासे फैल उठी। गांधीजीकी गिर-फ्तारीके बाद तो भारतीयोंने पूरी तरहसे निश्चय सा कर लिया कि उनमेंसे अब कोई बाहर न रहेंगे और अपने नेताका अनु-सरण करते हुए जेलोंको भर देंगे। परिणामतः सत्याग्रहके वीर सैनिक झुण्डके झुण्डमें सरकारी कानूनोंको तोड़ते हुए इस प्रकार गिरफ्तार होने लगे मानों मरमिटनेके सिवा उनमें कोई दूसरी साधही नहीं है। फल यह हुआ कि गांधीजीकी गिरफ्तारीके कोई एक सप्ताहके अन्दरही लगभग १०० सत्याग्रही कैद हो गये और उसी तेजीसे आगे भी होते रहे।

सत्याग्रहियोंकी इस बढती हुई संख्याको देखकर सरकार और क्रोधित हो उठी। भारतीयोंकी इस अहमन्यता और शक्तिकी उपेक्षाको वह बर्दाश्त न कर सकी। अतः भारतीयोंको कुचलनेके लिए सरकारने न्यायाधिकारियोंको गुप्त सूचनाएँ प्रेषितकीं कि भविष्यमें वे सत्याग्रहियोंको सादीके बजाय सख्त कैदकी सजा दिया करें। किन्तु सरकारका यह ख्याल भी गलत निकला। वे

भारतीय जो अपने मान और शानके लिए मर मिटनेका कौल कर चुके थे, अब सख्त कैदकी सजाके डरसे क्योंकर भाग खड़े होते ? सजा सख्त मिले या नरम इसकी चिन्ता उन्होंने अपने वजाय सरकारपर छोड रखी थी। सरकार चाहे जैसा बर्ताव करे, सत्याग्रही इससे विचलित न होनेवाले थे। कुछभी हो, व तो आगे बढने और आगे बढनेको कटिबद्ध थे। उनके सामने सरकार नहीं, मंजिल थी। फलतः एक ओर जैसी तेजीसे सरकार अधिकाधिक सख्तियाँ करने लगी दूसरी ओर उसी तेजीसे सत्याग्रही भी बढने लगे। परिणाम यह हुआ कि थोड़ेही समयके अन्दर सत्याग्रही कैदियोंकी सख्या १५० से भी ऊपर पहुँच गई।[1]

सरकार का झुकना और प्रथम समझौता—

सत्याग्रहियोंके इस विकट साहसको देखकर सरकारको मालूम हो गया कि दमनसे अव उसका काम नहीं चल सकता. और इसलिए उसे इस फैलती हुई आगको रोकनेके लिए अवश्य कोई दूसरा रास्ता निकालना चाहिए। अतः वहुत सोच-विचारके पश्चात् सरकारने अपने तनावको ढीला कर भारतीय नेता गांधीसे मिलकर समझौता करलेने मे ही अपना कल्याण मालूम किया। इस समझौतेका माध्यम ट्रान्सवाल सरकारके अध्यक्ष जनरल स्मट्सने 'ट्रान्सवाल लीडर'के सम्पादक कार्टराइटको वनाया। स्मट्सके निर्देशानुसार कार्टराइट जेलमे जाकर भारतीयोंके नेता गांधीजीसे मिले। गाधीजीके सामने कार्टराइटने स्मट्स रचित समझौतेका मसविदा दिखलाया।

1. Ibid, p. 237

समझौतेके इस मसविदेमें कहा गया था कि "भारतीय स्वेच्छा-पूर्वक अपने परवाने बदलवा लें। उनपर कानूनका कोई अधिकार न होगा। नवीन परवाना भारतीयोंकी सलाहसे ही सरकार बनावे। और यदि इसे भारतीय स्वेच्छापूर्वक ले लें तो खूनी कानून रद कर दिया जायगा, और स्वेच्छापूर्वक लिए गये नवीन परवानोंको वैध बनानेके लिए सरकार एक नया कानून बनावेगी।" गांधीजीने प्रथम इस मसविदे पर अपने जेलके साथियोंसे सलाह-मसविरा किया, और तब इस शर्त्तके साथ कि मसविदेमें खूनी कानूनको रद करनेकी बात पूरी तरहसे स्पष्ट कर दी जाय, उन्होंने अपने साथियों सहित उस (मसविदे) पर दस्तखत कर दिये।

जनरल स्मट्ससे भेट—

मसविदे पर दस्तखत करनेके २-३ दिनके बाद ही ३० जनवरी १९०८ को गांधीजी जोहान्सबर्गके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के द्वारा जनरल स्मट्ससे भेट करनेके लिए प्रिटोरियो ले जाये गये। इस भेटमें गांधीजी और स्मट्समें बहुत सी बातें हुईं। स्मट्सने मसविदेकी भाषामें गांधीजी जैसा कुछ परिवर्तन व परिवर्द्धन चाहते थे, वह भी कर दिया। साथ ही स्मट्सने गांधीजीको विश्वासपूर्ण शब्दोंमें यह भी जतला दिया कि "जनरल बोथाके साथ भी मैं बातचीत कर चुका हूँ और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आपमेंसे अधिकांश लोग परवाने ले लेंगे तो मैं एशियाटिक कानूनको रद कर दूंगा, तथा स्वेच्छापूर्वक लिये जाने वाले परवानेको मंजूर करनेका जो मसविदा तैयार किया जायगा, उसकी भी एक नकल आपके

पास समीक्षाके लिए भेज दूगा।” स्मट्स इस समय भारतीयो के आत्मबल और सत्याग्रहकी विभीषिकासे बहुत घबड़ाये हुए से थे, इसलिए गांधीजीसे आन्दोलनको शात करवानेकी याचना सी करते हुए वे आगे बोले--“मै नही चाहता हूँ कि यह आन्दोलन फिरसे जागे। आपके भावोका मै सन्मान करता हूँ।”[1] उसके इन शब्दोंमे स्पष्टतया भारतीयोकी मागोंको पूरा करनेका आश्वासन भरा था किन्तु यह सब एक चोरकी ‘मनौती’ थी, जो विपत्तिमे पड़कर ‘देवता’को खुश करनेके लिए प्रत्येक वचन दे डालता है, लेकिन संकट टलने पर सब कुछ भुला देता है।

स्मट्सकी यह कूटनीति सफल हुई और गांधीजीने उक्त शर्त्तोंपर सरकारके साथ समझौता करना स्वीकार कर लिया। फलतः समझौता हो जानेसे गाधीजी और उनके साथी जेलसे तुरन्त रिहा कर दिये गये। स्वतंत्र होते ही गाधीजी उसी दिन प्रिटोरियासे शामको जोहान्सबर्गके लिए रवाना हो गये, क्योंकि वे चाहते थे कि वहाँके भारतीयोंको भी उक्त समझौतेकी सारी बाते और शर्त्तें तुरन्त मालूम करा दे।

समझौतेका विरोध—

गाधीजी रात नौ बजेके लगभग जोहान्सबर्ग पहुचे, और वहाँ सेठ इसप मियाँके यहाँ टिके। पहुंचते ही गाधीजीने रात को ही इसप मियाँसे भारतीयोकी एक सभा बुलवानेका अनुरोध

---

1 Ibid pp. 241-242

किया। अतः गांधीजीके निर्देश पर उसी वक्त सभा बुलवा ली गई। जब सभा बुलाई गई रात आधी बीत चुकी थी, लेकिन तिसपर भी करीब १००० आदमी सभामें आ डटे। सभामें आये हुए सभी व्यक्ति इस समय यह जाननेको उत्सुक हो रहे थे कि समझौता किस प्रकारसे हुआ ?

सभा भरने पर गांधीजी ने समझौते का वह स्वरूप जो वे स्वीकार करके आये थे, लोगोंको स्पष्ट करके बतला दिया। शर्तोंके सुन लेने पर सभामें से कुछ लोगोंने तुरन्त अपना यह सन्देह प्रकट किया कि अगर जनरल स्मट्स अपना काम निकालनेके हित परवाना पर दस्तखत लेनेके बाद विश्वास-घात कर बैठे और खूनी कानूनको रद करनेसे मुँह मोड दें—तो क्या होगा। इसलिए सकाशील व्यक्तियोंने इस बातपर जोर दिया कि खूनी कानून रद होनेके पहले ही दस्तखत करके वे अपना हाथ क्यों काट डालें ? इस प्रश्नकी बारिकी, बुद्धिमत्ता और गम्भीरता पर खुश होते हुए गांधीजी ने लोगोंको सत्याग्रही के चरित्र और कर्तव्य पर प्रकाश डालते हुए उत्तर दिया "सत्याग्रही डरको तो सो कोस पर रखता है। इसलिए वह किसी भी बातका विश्वास करनेमें कभी न डरेगा। बीस बार उसके साथ विश्वासघात होने पर भी इक्कीसवीं बार वह विश्वास करनेको तैयार हो जायगा।" और फिर और स्पष्ट शब्दोंमें सत्याग्रहके दर्शनका उन्हें ज्ञान कराते हुए गांधीजी ने बतलाया कि "सत्याग्रही अपनी नैया विश्वासके ही सहारे पर चलाता है। इसलिए इस समय यह कहना कि समझौतेको स्वीकार करना अपना हाथ कटाना है, सत्याग्रहका अज्ञान प्रकट करना होगा।" लेकिन

इतनेसे ही संतुष्ट न होकर सत्याग्रहके गुरुने उनकी समझमें पूरी तरहसे बात विठानेके लिए पुनः उदाहरण देकर समझाया कि "फर्ज कीजिए कि हम नये परवाने ले ले, और पीछे सरकार विश्वासघात करे—खूनी कानूनको रद्द न करे, तो क्या उस समय हम फिर सत्याग्रह न कर सकेंगे? अगर हम परवाने ले भी ले पर जव वे मागे जावे तव वतानेसे इन्कार कर दे तो उन परवानोंका महत्व ही क्या रह जायगा?" "सत्याग्रही तो" उन्होंने कहा कि "जव किसी कानूनको मानता है तो वह उसके दंडके भयके कारण नहीं, वल्कि स्वेच्छापूर्वक और यह समझकर कि उससे जनताका कल्याण होगा। और यही स्थिति आज हमारे परवाने लेनेके वारेमे है, जिस पर सरकारके विश्वासघातका कोई असर नही पड सकता। इस स्थितिके उत्पन्नकर्त्ता हम स्वय है, और हमी उसे वदल सकते हैं। जव तक सत्याग्रहका शस्त्र हमारे हाथमे है, हम स्वतंत्र हैं, निर्भय है।" सत्याग्रह और सत्याग्रहीके अर्थ और कर्त्तव्यकर्त्तव्यको स्पष्ट करनेके वाद गांधीजीने लोगोंके इस प्रश्नका भी कि आज लोगोंमें यथेष्ठ जोश और उत्साह है और वादमे वह ढीला पड सकता है—उत्तर देते हुए कहा "यदि आज कोई ऐसा सोचते है कि कौममे अभी जो उत्साह है वादमे शीतल पड सकता है, तो मै उन्हे कहूगा कि आप सत्याग्रही नहीं है, और आपने सत्याग्रहको समझा भी नही। ऐसा कहने वालोंका अभिप्राय तो यह होगा कि आज जो शक्ति देख पड़ रही है, वह यथार्थ नहीं, शराबके नशे जैसी झूठी और क्षणिक है। और यदि ऐसा है तो हम जीत नही सकते"।

गांधीजीकी इस वक्तृतासे निःसन्देह उनके जीवनके प्रवाह और सिद्धान्तोंको समझनेमें इतिहास और राजनीतिके विद्यार्थियोंको काफी सहायता मिल सकती है। गांधीजीने सचमुच आज तक अपने ही विश्वास और बलपर काम किया है। उन्हें कभी इस चिन्ताने व्यग्र नहीं किया कि दूसरा उनके साथ कैसा विश्वास या अविश्वासका बर्ताव करेगा। उन्हें जो सत्य लगा है, उसपर वे अटल रहे हैं। उन्होंने अफ्रीकामें ही नहीं, भारतमें भी अनेक बार अपने ही विश्वास और बलपर प्रतिद्वन्द्वी सरकारसे सन्धियाँ और समझौते किये हैं, और कभी यह चिन्ता नहीं की कि अगर प्रतिद्वन्द्वीने काम निकालनेके बाद समझौता तोड़ दिया तो क्या होगा ? वे चिन्ता करते ही क्यों, जब कि उन्हें मालूम है कि जिस शक्तिसे पराभूत होकर प्रतिद्वन्द्वीने एक बार समझौता किया है, वह शक्ति उनकी अपनी निजी शक्ति है, और जब तक वह शक्ति उनके पास है, वे निर्भय हैं। उनकी यह शक्ति सत्यपर अटल रहनेकी शक्ति है। हमें मालूम है कि गांधीजीने भारतमें भी कई एक बार जब समझौते किये तो बहुतसे उनके साथी और राजनैतिक दल प्रारम्भमें उनका विरोध करते रहे, लेकिन अन्तमें उन्हें अपने विरोधमें ही त्रुटियाँ मालूम पड़ीं और गांधीजीके कार्योंकी कुशलता तथा निपुणता को स्वीकार करना पड़ा। इस विषमता अथवा भेद का कारण स्पष्टतः गांधी और दूसरों के बीच में दृष्टिकोण की असामनता या पार्थक्य रहा है, दूसरे शब्दों में इस भेद का कारण यह है कि गांधीकी दृष्टिका प्रकाश स्रोत हृदय रहा है और दूसरोंकी सीमाओंसे वेष्टित बुद्धि। १९४६ में विधान-निर्मातृ सभाको बुलानेके ब्रिटिश प्रस्तावके समय भी कांग्रेसके अनेक नेता जब इसे ब्रिटिश चाल

कह कर शामिल होनेसे हिचक रहे थे, तब गांधीजीने ही कांग्रेस और देशको अपने आत्मबल और सत्यपर भरोसा रखकर उसमें प्रवेश करनेको तयार किया था। ब्रिटिश मन्त्री-मडल के यहाँ आने पर भी जब बहुतसे राजनैतिकदलोने उन्हें साम्राज्यवादके षड्यन्त्रकारी बतलाया और मुल्कको उनसे दूर रहनेकी सलाह दी, तो उस समय अकेले गांधीके विश्वासनेही कॉग्रेस को मंत्री-मडलसे समझौता करने को अनुप्रेरित किया था। और अन्तमे इसी समझौतेके परिणामसे १९४७ के १५ अगस्तको भारत स्वतन्त्र हो गया। गांधीके विश्वास काही यह सुखद परिणाम था। फलतः यह कहना एक अलभ्य सत्य है कि १९०८ का सत्याग्रही गाधी और आज १९४८ का सत्याग्रही गांधी दोनों एक हैं, और समयका उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ है, वरन् समय को ही उन्होंने प्रभावित किया है। निःसन्देह गाधी और उनके सिद्धान्त सूर्य की तरह प्रकाशवान, उज्वल, और अटल है। सूर्य की भाति वे इसबातकी चिन्ता भी नहीं करते कि उसके प्रकाशमे कोई अलगसे अपना दीपक जला रहा है, और अपने अन्तरके अंधकारसे इस जगतको भी अंधकारमें डूबा देखता है। ❀

❀ पुस्तक छपही रही थी कि यकायक भारत और ससारके दुर्भाग्यसे ३० जनवरी १९४८ को गाधीजी की हत्या कर डाली गई ? हम यहा पर इस बात का सकेत कर देना चाहते है कि गाधीजी की एक अर्थ मे यह 'हत्या' नहीं है, यह उनका अपने विश्वासके लिए बलिदान होना और मर मिटना है। हिन्दु-मुस्लिम और सिक्खों की एकता उनके जीवन का परम ध्येय और लक्ष रहा है, क्योकि उनका विश्वास था कि

सत्य और विश्वाससे परिपूर्ण गांधीको तो सारा जगत ही सत्य और विश्वाससे जगमगाता दीखता है। झूठ और प्रतारणा उनके सामने अस्तित्वहीन छायाएँ हैं। इसीलिए तो सत्य और विश्वास का पुजारी दूसरोंके झूठ और विश्वासघातसे कभी डरा नहीं करता, वरन् अनेक वार वरावर धोखा खाने पर भी वह हरवार शत्रुका विश्वास करनेको तैयार रहता है। और इस प्रकार अपनी न्याय-परायणता तथा विनम्रता और विश्वासके द्वारा वह अन्त तक विरोधीके हृदय पर कब्जा करनेका प्रयत्न करता ही जाता है। वह तो मानता है, कि वैर वैरसे नहीं जीता जा सकता और न घृणा घृणा द्वारा जीती जा सकती है। वैरको खतम करनेके लिए मैत्री और घृणा का अन्तकरनेके लिए प्रेमके कोमल शस्त्रों की वह आवश्यकता समझता है। और गांधी निःसन्देह, इन्हीं कोमल और अहिंसक शस्त्रोंसे लड़ने वाला एक सिपाही है।

अतः निर्वैर और निर्द्वन्द गांधीके भाषणके प्रभावसे उक्त सभामें जो शंकामें पड कर अव तक समझौतेका विरोध कर रहे थे, सन्तुष्ट हो गये ! किन्तु उक्त सभाके वाद ही फिर मध्यरात्रीमें एक और महती सभा हुई। उसमें भी गांधीजीने समझौतेका पूरा मसविदा लोगोंके सामने रखा और वतलाया कि "इस समझौतेसे कौमकी जिम्मेवारी वहुत अधिक वढ जाती है। यह वतलानेके लिए कि हम छल-कपटसे एक भी वाहरी भारतीयको

विना इनके राष्ट्र की कभी उन्नति नहीं हो सकती। अतः इस ध्येय की पूर्तिके लिये वे रोज हिन्दु-मुस्लिम आदिके ऐक्य का प्रचार करने में लगे रहे, जिससे कुछ साम्प्रदायिक हिन्दूपदरंजकारियोंने उन्हें मार डाला।

ट्रान्सवालमें लेना नहीं चाहते, हमे स्वेच्छापूर्वक परवाने लेने होंगे। इसलिए यदि लोग अब परवाने न लेंगे तो इसका अर्थ होगा कि कौम समझौतेको मंजूर नहीं करती। अत आप कह दीजिए कि आप समझौतेको स्वीकार करते हैं।" गांधीजीके इस आह्वानको यद्यपि भारतीयोंकी महती सख्या अपना चुकी थी और उसके अनुसार कार्य करनेके लिये तैयार भी हो गई थी, लेकिन कुछ एक पठान अभीभी इस समझौतेकी बातसे सहमत न हुए। वे बिगड उठे और उन्होने समझौतेके अनुसार नये परवाने लेने तथा १० ऊगलियोंकी छाप देनेसे कतई इनकार कर दिया। पठानोंके अगुआने तो आवेशमें गांधीजी पर यहा तक आक्षेप किया कि उन्होंने कौमको धोखा दिया है, और उसे १५,००० पौण्ड रिश्वत लेकर जनरल स्मट्सके हाथ बेच दिया है। गाधीजीको इस प्रकार घूस लेनेका दोषी ठहराकर उत्तेजित पठान खुदाका नाम ले-लेकर नये परवाने स्वीकार करनेवालोको आगाह करने लगे, और न माननेवालोको मारने तकके लिये कटिबद्ध हो उठे। पठानोंको 'समझौता' स्वय गलत मालूम दिया हो, बात ऐसी न थी! असलमें उन बेचारे पठानोको अपने स्वार्थ साधनके हेतु कुछ स्वार्थी और छली लोगोंने भ्रमा और बहका दिया था! ये बहकानेवाले एक तो वे थे जिन्होंने सत्याग्रहके समय कौमका साथ न देकर खूनी कानून के सामने 'सिजदा' किया था, और दूसरे वे थे जो ट्रान्सवालमे बिना किसी परवानेके धोखेसे घुस आये थे। अतः इन दो प्रकारके लोगोंका हित्तहो इसमे था कि समझौता न हो सके और गड़बडी बनीही रहे। कौमको दगा देनेवाले मनसे सत्याग्रहियोंकी विजय भी पसन्द न

करते थे, और विना परवानेके ट्रान्सवालमे घुसनेवाले भी यही चाहते थे, जिससे कि उन्हे परवाने दिखलानेकी कठिनाईका सामना न करना पड़े। इसलिए स्पष्ट है कि इन्हीं लोगोंकी कुमंत्रणाथी, जिसने पठानोंको उत्तेजित कर रखा था[1]। लेकिन सीधे सादे और सरल वुद्धिके पठान उनकी चालोंको न समझ सके, और फलतः उनकी कुमत्रणाके जालमे फॅसकर अपनी वुद्धिकोभी खो बैठे! यही कारण था कि गाधीजीके लाख समझाने परभी वे न कुछ समझ सके, न कुछ समझ पाये। वहके हुओ को मार्गपर लाना कठिन होताही है। वहम और शककी दवा तो लुकमानके पासभी न थी।

इसलिए वेचारे गाधी भी, पठानोंके दिलमें जो वहम घुसा दिया गया था उसे निकाल न सके। गाधीजीके वाद सभापतिने भी लोगोंको समझौतेको खुलकर समझाया—और अपीलकी कि वे उसे निर्द्वन्द और निर्भय होकर स्वीकार कर ले। इन भाषणोंके वाद सतुष्ट होकर नि.सदेह सवके दिलोसे सारे शक वा सन्देह विदा हो गये, लेकिन पठान लोग तवभी वहकेही पड़े रहे। अतः जव सभाका मत लिया गया तो चार पठानोंको छोडकर शेष सवने समझौतेके पक्षमे राय दी।

गांधीजी पर हमला—

समझौतेके अनुसार जल्दीही सरकारके एसियाटिक आफिस ने ऐच्छिक-परवानोंको देनेकी तैयारी कर दी। इन परवानोंका रूपभी सत्याग्रहियोंके परामर्शानुसार वदल दिया गया था। अतः

1–Ibid-pp 253-254 ff

१० ता० फरवरीको गांधीजी और उनके साथी समझौतेकी शर्तो के अनुसार परवाना लेनेके लिये रजिष्ट्रारके आफिसको रवाना हुए। किन्तु वे आफिसको पहुचभी न पाये थे कि रास्तेमे ही अविश्वासी पठान मीर आलम और उसके साथियोने अनपेक्षित रूपसे गाधीजी पर वार कर दिया। गाधीजीके सिरपर लाठीसे प्रहार किया गया, जिससे वे मुहके वल गिरकर वेहोश हो गये। लेकिन आक्रमणकारियोंने गाधीजीके वेहोश होने परभी उनको मारना न छोड़ा। यह घटना आम रास्ते पर हुई थी। इस मार-वाड़मे यदि गांधीजीके साथी ईसप मिया और थम्बी नायडु उनपर झुककर वहुतसे प्रहार अपने ऊपर न ले लेते, और शोर-गुल मचनेके कारण ठीक अवसर पर गोरो और पुलिसके पहुच जानेसे मीर आलम तथा उसके साथी गिरफ्तार न कर लिये गये होते तो उस दिन गांधीजीके प्राणोंका वचनाही कठिन था। किन्तु ईश्वरकी इच्छा तो गाधीजीसे अभी अनेक काम लेनेकी थी। इस-लिए उन्हे तब मारभी कौन सकता था? निःसन्देह गाधीजी पर अनेक वार ऐसे प्राणघाती सकट आये, लेकिन उन सबको वे हमेशा सफलता पूर्वक झेलते रहे है। ईश्वरकी 'इच्छा' का अतिक्रमण कर ही कौन सकता है? गाधी ईश्वरकी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिए ही यहाँ पर है, और इसीलिए वे हमेशा अपने जीवन और प्राणोंको ईश्वर पर छोड़कर रखते है। उनका कोई निजी अस्तित्व है ही नहीं—अस्तित्व विहीन का अस्तित्व फिर कौन मिटा सकता है?

गाधीजा हमेशा अपनेको ईश्वर पर छोड़कर रखे है। उनका अटल विश्वास था कि वे इस दुनियासे तबतक हटाये नहीं हट सकते

इस दुर्घटनाके वाद पुलिस वेहोश और घायल गाधीको उठाकर पहले सड़कके पासही एक गोरे अफिसमे ले गई, लेकिन वादमे उन्हे रेवरेंड डोकके यहाँ पहुचा दिया गया। होशमे आने पर निर्वैर गाधीने सबसे पहले अपने आक्रमणकारियोंके बारे पूछ-ताछकी, और तत्कालही भूले तथा अवोध अपराधियोंके लिए व्यग्र होकर अटर्नी जनरल (सरकारी वकील) को तार भिजवाया कि "मीर आलम और उसके साथियोंपर मुकदमा न चलाया जावे । मै आशा रखता हू कि आप उन्हे मेरे लिए मुक्त कर देंगे"। यह तार पातेही सरकारी वकीलने गाधीजीके कथनानुसार मीर आलम आदिको रिहा कर दिया, लेकिन गोरोंके विरोध करनेपर उन्हें फिरसे गिरफ्तार कर लिया गया।

अपने ऊपर हुए हमलेके कुपरिणामोका खयालकर गाधीजीने क्रोधित हिन्दुओंके नाम भी शान्त रहनेकी प्रार्थना करते हुए एक वहुतही सोजन्य और स्नेहसे पूर्ण अपील प्रेषितकी जिसमे उन्होंने लिखा था—"हिन्दूलोग अपने दिलमे जराभी क्रोध न लावे, मैं चाहता हूँ कि इस घटनासे हिन्दू-मुसलमानोके वीच वैर नहीं, प्रेम पैदा हो।

जबतक कि खुद ईश्वरही उन्हें यहाँसे न हटावे। अत २० जनवरीकी वम्ब दुर्घटनाके बादभी उन्होने भारत सरकारको अपनी रक्षाके खातिर पुलिस और फौजका पहरा न रखने दिया और सरदार वल्लभ भाईके इस सुझावको कतई माननेसे इनकार कर दिया कि प्रार्थना सभामें किसी सदिग्ध आदमीकी खुफिया पुलिसने तलासी ली जावे। वे जानतेथे और मानते थे कि सब काम ईश्वरके सङ्केतोंपर होते है, और इसलिये यदि कोई उन्हे मारेगा भी तो वह ईश्वरकी इच्छामे ही ऐसा करेगा, और ३० जनवरीको ईश्वरके इसी विश्वासपर वे चल भी दिये?

सब मिलकर यही प्रयत्न कीजिये कि हममेसे अधिकाश मनुष्य अपनी दसों ऊंगलियोंकी छाप देदे। कौमका और गरीबोंका इसीमे भला है।"

-

इस घटनासे गाधीजीके हृदयकी विशालता और सत्याग्रही के आदर्शपर समुज्ज्वल प्रकाश पड़ता है। गाधीजीके जीवनकी यह घटना मानव, प्रतिशोधी मानव और प्रतिहिसात्मक मानवके लिए एक सबक, एक पाठ और एक उदाहरण उपस्थित करती है। इस घटनाके द्वारा गांधीजीने मनुष्य समाजको व्यवहारिक रूपसे सफलतापूर्वक यह दर्शा और बतलादिया कि वैर किस प्रकार मैत्री द्वारा और घृणा प्रेमके द्वारा विजयकी जा सकती है। निःसन्देह हिसाको दबाने और प्रेमकी विजय करनेका यही एक रास्ता है। बुद्ध और ईसानेभी इसी सत्यको प्रचारित किया था। और इसी सत्यकी प्रतिष्ठा और प्रतिस्थापनाके लिए आज गाधीने भी अपने जीवनको होम कर डाला है। किन्तु खूनके रंगसे खेलने और खिलनेवाले हिस्र मनुष्यने क्या अहिसाके इस उज्ज्वल अभिप्रायको समझ सका है? प्रतिहिसाका प्रेमी और शक्तिका उपासक मनुष्य-हिसा और वैरको भला कैसे छोडे? वह जानता है कि उसकी यह अपनी निजी कमजोरी है, लेकिन अपनी इस कमजोरीको ढकनेके लिए वह सत्यको दबाकर कहता यही है कि 'गाधीमें आदर्शवाद है, उनकी विचारधारा अलौकिक हो सकती है, लेकिन उनके सिद्धान्त अव्यवहारिक है।' निःसन्देह जिसका हम व्यवहार नहीं करना चाहते, (क्योंकि उसके व्यवहारसे हमारे स्वार्थों पर धक्का पहुँचता है) वह अव्यवहारिक ही तो हो सकता है?

कहना न होगा कि गांधीजीके इस निर्मल व्यवहार और मार्मिक अपीलने लोगोंके दिलोंको पूर्णरूपसे पराभूत कर डाला। वे निःसंदेह गांधीमय हो उठे। गांधीजीके निर्देश और गांधीके आदेश उनके लिए अब अपनी ही आत्माके निर्देश और आदेश प्रतीत होने लगे। फलतः उनके निर्देशानुसार भारतीय जनताने आँख मूंदकर परवाना लेने शुरू कर दिये। वे अब रुक भी कैसे सकते थे जब कि उनके नेता गांधीने स्वयं घायल अवस्था हीमें अपनी उंगलियोंकी छाप देकर परवाना ले लिया था।[१२]

किन्तु यह सब कुछ होनेके बाद भी पठानोंके दिल शांत न हो सके। अतः स्वस्थ होते ही गांधीजी समझौतेके विषयमें फैली हुई भ्रान्तियों और गलत फहमियोंको साफ करनेके इरादेसे दुबारा नेटाल पहुँचे। डरबनमें समझौतेके विषय पर पुनः सभा बुलाई गई और उसमें गांधीजीने फिर पठानोंको सारी बातें समझानेका प्रयत्न किया। लेकिन इस बार भी वे उन्हें समझानेमें सफल न हो सके। पठान पहिलेकी भाँति ही संदिग्ध और कठोर बने रहे। उनकी भ्रांति और उनका अविश्वास जरा भी कम न हो सका। अपने आक्रोशमें उन्होंने इस सभामें भी गांधी पर पुनः घातक आक्रमण करनेका प्रयत्न किया, किन्तु पुलिसके पहुंच जानेसे वे कुछ कर न पाये। फलतः गांधीजी इस बार भी हमलावारोंसे बच निकले, और सभा समाप्त होनेके बाद डरबनमें कोई विशेष कार्य न रहनेसे वहाँसे तुरन्त अपने बाल-बच्चोंसे मिलने फोनिक्स चले गये।

12—Satyagraha, In South Africa p 251-252

जनरल स्मट्सका बचन भंग और धोखा

गांधीजीने परवानोंके बारे जो निर्देश और आदेश दिये थे, उनका थोड़ेसे पठानोंको छोड़कर शेष भारतीयोंने पूरी तरहसे पालन किया था। बहुत थोड़े ही ऐसे लोग रहे होंगे जिन्होंने स्वेच्छासे परवाने न लिए हो। अतः परवानेके लिए एशियाटिक आफिसमें भारतीयोंकी इस कदर भीड़ लगी रहती थी कि परवाने देनेवाले तक घबडा उठते थे। इस प्रकार समझौतेके अनुसार भारतीयोंने अपने वायदेको जल्दी ही पूरा करके दिखला दिया था। भारतीयोंकी इस वचन-निष्ठाकी तब ट्रान्सवाल सरकारने भी खूब प्रशंसा और सराहनाकी थी।[1] अपनी तरफसे इस प्रकार समझौतेकी शर्तें पूरा करनेसे भारतीयोंको पूरी आशा थी कि सरकार भी अब अपने वचनोंका पालन कर 'खूनी कानून' को रद्द कर देगी। किन्तु उन्हें क्या मालूम था कि पाश्चात्य कूट-राजनीति 'धोखे' को भी एक सिद्धान्त मानती है? गांधीजी जैसा सच्चा और ईमानदार अपनेको समझते थे, वैसाही जनरल स्मट्सको भी मानते थे। किन्तु उनका यह विश्वास अन्तमें भ्रमपूर्ण ही सिद्ध हुआ।

चालबाज स्मट्सने अपना काम निकालकर अन्तमें सरल और निश्छल गांधी तथा उनकी कौमको धोखा दे ही दिया। उसने खूनी कानूनको रद्द करनेके बजाय स्वेच्छासे लिये गये परवानोंको कानूनी बनानेके लिए एक नया एसियाटिक बिल पास

1–Ibid p 287

किया, जिसके आधार पर 'एसियाटिकोंके रजिस्ट्रेशनके लिए अन्य दूसरी धारायें तैयार कर दी गईं'।[1] परिणामतः काला या खूनी कानून ज्योंका त्यों ही बना रह गया।[1]

गाधीजी स्मट्सके इस नये बिलसे स्तब्ध हो उठे। उन्हें विश्वास न होता था कि पाश्चात्य नीतिमे वचनो और शर्तोंका कोई मूल्य नहीं हुआ करता। लेकिन जब स्मट्सके व्यवहारने इस कठोर सत्य को प्रत्यक्ष कर दिया तो उन्हें यह मानही लेना पड़ा। पर गांधीजी किसी प्रकार इससे चिन्तित या किंकर्तव्य विमूढ न हुए। उन्होंने इस झूठका अपने सत्य द्वारा प्रतिरोध करना निश्चित कर 'सत्याग्रह' की फिरसे तैयारियां शुरू कर दीं। उन्होंने तुरन्त सत्याग्रह कमिटीकी सभा बुलाकर उसे इस नयी स्थितिसे परिचित कराया और निर्देश दिया कि यदि ये बाते सही निकलीं तो फिरसे हमे सत्याग्रहके लिए तयार हो जाना है। सभामे अपना भविष्यका मार्ग निश्चित कर लेनेके बाद गाधीजीने जनरल स्मट्सको भी उसके वचनोंका स्मरण कराते हुए एक पत्र लिखा और उसे सचेत किया कि अपने नये बिलके द्वारा उसने समझौतेको तोड़ डाला है। इसके साथ ही गाधीजीने ट्रान्सवाल सरकारको भी सत्याग्रह कमेटीकी ओरसे एक अल्टिमेटम भेजा जिसमे कहा गया था कि—"हमे खेद है कि यदि समझौतेके अनुसार एसियाटिक ऐक्ट रद न किया गया और इसकी सूचना यदि सरकारने निश्चित समयके अन्दर भारतीयोंको न भेजी, तो भारतीय स्वेच्छासे लिये परवानोको ढेरमे एकत्रित करके जला देंगे और विनय-पूर्वक सारे परिणामोंको भुगतनेको तयार रहेंगे।"[2]

1–Ibid pp 292-293
2–Ibid p 305-306

इस पत्रको पाकर ट्रन्सवालकी गोरी सरकारके अभिमान पर आग सी लग गई। वे अब तक भारतीयोंको बर्बर और अपनेसे निम्न मानते आये थे, इसलिए उन्हें कभी आशा न थी, वरन् स्वप्नमे भी खयाल नहीं था कि काले वर्णवालोसे अल्टि-मेटम नामकी कोई स्वाभिमानयुक्त और चुनौती भरा पत्र आ सकता है। उन्हें मालूम न था कि गांधीजीके आत्मबलने भार-तीय कौमका गौरव इतना ऊँचा उठा दिया है कि वे अपनी प्रतिष्ठाके लिए किसी गोरे अथवा काले का भय और डर अपने दिलसे कभी का भगा चुके है। उन्हे दुर्भाग्यसे यह भी मालूम नही हो सका कि गांधीजीने भारतीयोको बता और समझा दिया है कि "एक मनुष्यके रूपमे वे किसीसे हीन नहीं है, और यदि उनमे सहन करनेकी शक्ति हो तो वे सीधे-सीधे किसीका भी मुकाबला कर सकते है।"[1] वस्तुत. गोरोकी आँखोपर तो 'अहम्' का परदा पडा हुआ था, इसलिये वे इन बातोको देख और समझ भी कैसे सकते थे। अतः अहकारसे पीड़ित और अभि-मानसे ग्रसित ट्रान्सवालकी सरकारने भारतीयोंके विरोध पत्रकी तनिक भी परवाह किये विना तिरिस्कारके साथ उसे ठुकरा दिया।

अल्टिमेटमके अस्वीकृत होने और ठुकरा दिये जानेपर भारतीयोके लिए 'सत्याग्रह'को छोड़ अब दूसरा मार्ग ही न रह गया था। अतः गाधीजीने सरकारको दी गई चुनोतीके अनुसार ता० १६ अगस्त १९०८ को जोहान्सबर्गकी हमिदिया मस्जिदमे भारतीयोकी एक विराट सभा बुलाई और सबके परवाने जमा

1–Ibid–P 308

करा लिये। इस प्रकार जब लगभग २००० से भी अधिक परवाने गांधीजीके पास इकट्ठे हो गये तो उन्होंने आदेश दिया कि सबको पैराफिनसे भरी एक बडी सी कढाईमे डालकर आगके हवाले कर दो। निर्देश पाते ही हर्षोल्लाससे पूर्ण भारतीयोंने तुरन्त परवानोंकी होलिका तैयार कर दी। देखते ही-देखते परवाने धू-धू करके जल उठे।

गांधीजीके इस विचित्र व्यापारको तत्काल बहुतोंने समझ ही नहीं पाया, और बहुतोंने उसे प्रयत्न करनेपर क्रोधका एक प्रदर्शन मात्र समझा। लेकिन कुछ ही समयके बाद सारे जगतको मालूम हो गया कि विचित्र गांधीने असलमें परवानोंकी इस चितामें गोरे दंभका प्रथम अग्नि संस्कार किया था। क्योंकि उस दंभको अनीति-मूलक असत्यका कल्मष समझकर गांधी संसारकी परिशुद्धिके लिए उसे मेट देना चाहते थे।

किन्तु इस दार्शनिक सत्यको छोडकर, परवानोंकी 'होली' दक्षिण अफ्रीकाके मुट्ठीभर पर स्वाभिमानी और आत्मविश्वासी भारतीयोंकी तरफसे वस्तुतः ट्रान्सवालकी शक्तिशाली गोरी सत्ता के लिए एक खुली और दहकतीहुई चुनोती थी।

सत्याग्रह पूर्णता पर

अध्याय ११

रिस्ट्रिक्शन बिल—

परवानोंको जलाकर गांधीजीने सरकारको स्पष्टतः दूसरे सत्याग्रह की चुनौती दे डाली थी। किन्तु इसी बीच सत्याग्रहके लिए एक और कारण भी उपस्थित हो गया। जिस समय खूनी कानूनके विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था उसी समय जनरल स्मट्सने अफ्रीकासे भारतीयोंकी जड़ उखाडनेके लिए एक और बिल जिसे 'ट्रान्सवाल इमीग्रन्ट्स रिस्ट्रिक्शन बिल' कहते है, पास करा दिया था। इस बिलके अनुसार किसी भी नये आनेवाले भारतीयको ट्रान्सवालमे प्रवेशकी इजाजत नहीं मिल सकती थी।

भारतीयोंके आस्तित्व पर निश्चयही यह एक जबर्दस्त आघात था। अतः गांधीजी और उनके साथियोने खूनी कानूनके साथ साथ इस बिलके विरोध करनेका भी निश्चय कर डाला, और इसलिए उसेभी अपने सत्याग्रह आन्दोलनका एक अंग बना लिया।

चालाक गांधी—

अतः उक्त निश्चयके अनुसार गांधीजीने रिस्ट्रिक्शनबिलके बारेमें ट्रान्सवालकी सरकारसे लिखा-पढी आरम्भकी, किन्तु

उसमे सुधार करनेके बजाय जनरल स्मट्सने उलटे गांधीजी पर ही दोपारोपण करने शुरू कर दिये। दक्षिण अफ्रीकामे इस समय गाधीजीका काफी प्रभाव छा गया था और पिछले सत्याग्रहकी सत्यता एव त्यागपूर्ण सारल्यसे बहुतसे यूरोपियन तक भारतीय आन्दोलनका पक्ष लेने लगे थे। स्मट्स खूब समझता था कि यूरोपियन जनमत का यह रूख गांधीजीके पक्षको मजबूत बना देगा और उसकी सरकारको कमजोर कर डालेगा। अत. उसने अब यूरोपियन जनमतको भारतीय पक्षसे हटाकर अपनी ओर प्रवाहित करनेके लिए गांधी पर वार करना शुरू किया। उसे आशा थी कि अगर वह गाधीको यूरोपियनोंके हृदयसे गिरा सका तो मैदान मार ले जायगा। फलतः उसने यूरोपियनोको यह बतलानेका निष्फल प्रयत्न किया कि 'गाधी एक बहुतही 'चालाक' वा 'मक्कार' आदमी है। वह हमेशा लड़ाई-झगड़ा मोल लेनेके लिए रोज नये-नये प्रस्तावोंको पेश किया करता है। वह असलमे उॅगली पकडकर पहुचा पकड़नेकी चाहना रखता है। इसलिए ऐसे झगडालू, सघर्प-प्रिय और महत्वाकांक्षी व्यक्तिको वह क्योंकर आश्रय दे ? और वह क्यों ऐसे व्यक्तिको सर चढानेके लिए उसकी एशियाटिक ऐक्टको रद्द करनेकी अनैतिक मॉगको स्वीकार करे' ?

किन्तु स्मट्सकी ये भावोक्तियॉ निष्फल गई। उन यूरोपियनोंको जो गाधीको बाहर और भीतरसे टटोल चुके थे, यह समझानेकी अब जरूरत न रह गई थी कि चालाक और मक्कार कौन है ? वे पहले से ही यह समझे-बूझे थे कि मक्कार गाधी नहीं, स्मट्स खुद है। अतः इन निष्पक्ष यूरोपियनों पर स्मट्सके

प्रचारका कोई प्रभाव पड़नेके बजाय, उसीके विरुद्ध प्रतिक्रिया होने लगी। परिणामतः स्मट्सके अनर्गल प्रलाप और झूठे दोषारोपणोंसे वे यूरोपियन भी जो अबतक गांधीके प्रशंसक मात्र थे, चिढ़कर उनके सक्रिय समर्थक बन गये और खुल्लम खुल्ला भारतीयोंके पक्षका समर्थन करने लगे।[1]

सत्याग्रहका आरम्भ १९०८—

इमीगरेशन ऐक्टमें एक धारा ऐसी थी जिसमें कहा गया था कि वही व्यक्ति ट्रान्सवालमें आनेसे रोका जाय जो किसी भी एक यूरोपियन भाषाको न जानता हो। अतः इस ऐक्टके विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ करनेके लिए सत्याग्रह कमेटीने ऐसे ही व्यक्तियोंको चुना जो अंग्रेजी तो पढ़े-लिखे थे, पर पहले कभी ट्रान्सवालमें नहीं आये थे। इस निश्चय के अनुसार गांधीजीके निर्देश पर सबसे प्रथम व्यक्ति जो सत्याग्रहके लिए चुने गये, वे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त सोराबजी पारसी थे।

एशियाईयों का ट्रान्सवाल पर अहिंसक आक्रमण—

इस प्रकार इमीगरेन्ट्स ऐक्टके विरुद्ध जिहाद घोषित कर भारतीयोंने नेटालसे ट्रान्सवाल पर आक्रमण करनेके लिए अपने प्रथम सैनिक सोराबजीको रवाना किया।[1] सोराबजीने ट्रान्सवाल सरकारको रवाना होनेसे पहले सूचना भेजकर यह आगाह भी कर दिया था कि उक्त अनैतिक कानूनको अस्वीकार करते हुए वे ट्रान्सवालमें प्रवेश करेंगे। पर सरकारने आरम्भमें इसे

1 Satyagraha in South Africa p. 319

बच्चोंका सा खिलवाड़ समझा और इसलिए उनकी सूचना पर कोई ध्यान न दिया। सोराबजीने भी सरकारकी चिन्ता न की और ३ जुलाई १९०८ को ट्रान्सवाल की सीमामें प्रवेश कर दिया। जोहान्सबर्गमें पहुंचने पर सोराबजीने वहांके पुलिसके अध्यक्षको भी तुरत अपने आनेकी सूचना कर दी। इस खुली और निर्भीक अवज्ञासे चिढ़कर अन्तमें सरकारकी पुलिसने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। कानून तोड़नेके जुर्ममें १० जुलाई-को पुलिसने उन्हें अदालतमें भी पेश किया। अनधिकार प्रवेशके जुर्ममें मजिस्ट्रेटने सोराबजीको हुक्म दिया कि वे एक हफ्तेके अन्दर ट्रान्सवाल छोड़कर चले जावें। किन्तु इस हुक्मका पालन करनेके लिए सोराबजीने ट्रान्सवालमें प्रवेश न किया था। वे तो भारतीयोंके वहाँ रहनेके हकको कायम करनेके लिए ही सत्याग्रही सैनिकके रूपमें ट्रान्स-वालमें घुसे थे। अतः सोराबजी मजिस्ट्रेटके हुक्म की चिन्ता न कर, ट्रान्सवालमें डटे ही रहे। इस अवज्ञाके कारण २० जुलाईको वे पुलिस द्वारा फिरसे गिरफ्तार होकर अदालतमें पेश किये गये। इस बार मजिस्ट्रेटने उन्हें हठी समझ कर अवज्ञा के अपराधमें एक महीनेकी सख्त कैदकी सजा देकर सीकचोंमें बंद करवा दिया।[1]

सरकार समझती थी कि इस प्रकार सोराबजीको बंद कर देनेसे अन्य भारतीय डरकर ट्रान्सवालका रास्ता छोड़ देंगे और

---

१ आज जनवरी, फरवरी—१९४८ में भी इस ऐक्टके विरुद्ध नेटाल के भारतीयोंका ट्रान्सवालमें आन्दोलन चल रहा है।

सारा आन्दोलन भयसे दबकर स्वतः शांत हो जायगा। किन्तु इस दमनका परिणाम सरकारकी मनोकल्पनाके विपरीत हुआ। दमनने दबानेके बजाय विप्लवको और भी उभाड़ डाला जैसा कि उसका स्वभाव है। सोराबजीके कैद किये जानेपर भारतीयोंने उसे सरकारकी तरफसे खुलकर लड़नेकी चुनौती समझा, जिसे उन्होंने अपनी तरफसे भी खुलकर स्वीकार किया। अतः नेटालके भारतीय कृतसंकल्प हो गये कि नेटाल और ट्रान्सवालके बीच वे किसी प्रकारकी सीमा न रहने देंगे। उन्होंने मानों नेटाल और ट्रान्सवालके बीच सीमाका होना ही अस्वीकार कर दिया और सहज रूपसे उसे लाँघनेके लिये सत्याग्रहियोंकी टोलियाँ रवाना कर दीं।

सोराबजीके पश्चात् सत्याग्रहियोंकी पहली टोलीके नेता नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष श्री दाऊद नियुक्त हुए। सत्याग्रहियोंकी इस छोटी किन्तु दृढ़ टुकड़ीने नेटालसे प्रस्थान कर निर्भयतापूर्वक ट्रान्सवालकी सीमाको पार कर दिया। पर इस बार ट्रान्सवाल सरकारभी सत्याग्रहियोंका सामना करनेके लिए पहले ही से तैयार बैठी थी, अतः ट्रान्सवालमें प्रवेश करतेही सारी सत्याग्रही सेनाको पकड़ लिया गया। इसके बाद १८ अगस्त १९०८ को उन्हें अनधिकार प्रवेशके जुर्ममें अदालतमें पेश किया गया। मजिस्ट्रेटने सोराबजीकी तरह उन्हें भी एक हफ्तेके भीतर ट्रान्सवालसे निकल जानेका आदेश सुनाया। किन्तु 'सत्य' पर चलनेवाला सत्याग्रही कभी किसीके झूठे आदेशोंकी परवाह नहीं किया करता। सत्यपर आरूढ़ रहनेवाले असत्यसे भयाभिभूत भी नहीं हुआ करते। ट्रान्सवालमें घुसे सत्याग्रही ट्रान्सवालमें आने और रहनेका अपना अधिकार समझते थे। अतः उन्होंने अपने इस

अधिकारकी प्रतिष्ठाके लिए मजिस्ट्रेटकी आज्ञाकी कोई परवाह न की। फलतः हफ्ता बीत जाने परभी जब सत्याग्रही ट्रान्सवालसे न हटे, तो सरकारने उन्हें २८ अगस्तको फिर प्रिटोरियामें गिरफ्तारकर ट्रान्सवालकी सीमासे बाहर खदेड़ दिया। किन्तु वे शूर तीन दिनके अंदरही पुनः ट्रान्सवालमें घुस आये। परिणामतः अवज्ञाके जुर्ममें वे फिर पकड़ लिये गये और ८ सितम्बरको वोलक्रस्ट (Volksrust) की अदालत द्वारा उन्हें तीन-तीन महीनेकी कैदकी सजा दे दी गई।

किन्तु इस प्रकारके दमनसे आन्दोलन थमनेके बजाय बढ़ते बढ़ते कुछही समयके भीतर पूर्णताको पहुंच गया। दाऊदकी सत्याग्रही टोलीके बाद नेटालसे सत्याग्रही बराबर ट्रान्सवालकी सीमाओंको लांघकर प्रवेश करते ही रहे, और सरकार भी अपनी तरफसे उन्हें जेलोंमें भरती चली गई।

ट्रान्सवालके प्रति सरकारकी चुप्पी—

नेटालके भारतीयों द्वारा इमीगरेशन ऐक्टके विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन चलानेके बावजूद गोरी सरकार ट्रान्सवालके भारतीयोंके प्रति अभी तक उदासीनताकी नीति ही धारण किए हुए थी। ट्रान्सवालके भारतीयोंने परवनोंको जलातक डाला था, लेकिन तिसपर भी वह जहरकी घूंट पीकर चुप हो रही थी। वह जानती थी कि इस समय जब कि नेटालके भारतीय विद्रोही हो रहे हैं, ट्रान्सवालके भारतीयोंसे परवानोंके विषयमें छेड़ना आहुतिमें घी का काम करेगा। अतः आन्दोलनके व्यापक और तीव्र होनेके भयसेही सरकारने ट्रान्सवालके भारतीयोंके प्रति

चुप्पी साध रखी थी। इसके अलावा सरकारका यहभी विचार था कि रजिस्ट्री करा लेनेसे भारतीय ट्रान्सवालमें रह तो सकतेही हैं, इसलिए इस समय उनसे उदासीनतासे ही काम लेना ठीक होगा, क्योंकि संभव है, सरकारकी इस नीतिसे वे स्वय शातभी हो जायँ।

अतः अपने हितके लिये सरकारने ट्रान्सवालके भारतीयो से किसी प्रकारकी छेड-छाड करना हानिकारक समझ परवानो के मामले पर मौन धारण कर रखा था। पर भारतीय स्वय इस मौन स्थितिके लिए तैयार न थे। वे अपने अधिकारोंका निपटारा करानेको व्याकुल हो रहे थे, और इसके लिए ट्रान्सवाल सरकारसे मोर्चा लेनेको पूरी तरहसे तैयार हुए बैठे थे। अतः सरकारके मौनको तोडने और अपने अधिकारोंके हित सघर्ष छेड़नेके लिए वे अपनी तरफसे ही प्रेरणा लेनेको उतावले हो रहे थे। फलत उनकी इस मनोदशाको समझकर गांधीजी आगे वढकर उनका नेतृत्व करनेके लिए सन्नद्ध हो उठे। जोहान्सवर्गके भारतीय यही चाहते थे। उनके हर्षका सचमुच अव ठिकाना न था, क्योंकि जिस सघर्षके लिए वे उतावले हो रहे थे, उसका नेतृत्व स्वय उनके नेताने अपने हाथमे ले लिया था। इसके साथ साथ उन्हे इस वातकी भी खुशी थी कि उनके ट्रान्सवालके आन्दोलनसे नेटालके भारतीय आन्दोलनको भी सहारा मिल सकेगा।

ट्रान्सवालके भारतीयोका अवज्ञा-आन्दोलन—

लेकिन अब प्रश्न यह था कि संघर्ष छेड़ा कैसे जाय। ट्रान्सवालमें उस समय भारतीयोंको व्यापारमें भी मुक्त-हस्त न

था। सरकारने एक ऐसा नियम बना रखा था जिसके अनुसार यदि कोई भारतीय व्यापार करना चाहता हो तो वह पहले अपना रजि-स्ट्रेशन सर्टिफिकेट देकर व्यापारके लिये प्रमाण पत्र या लाइसेन्स हासिल कर ले। लेकिन इस समय किसी भी भारतीयके पास वे सर्टिफिकेट न थे क्योंकि स्मट्सके वचन भंग करने और समझौता तोड़नेपर उन्हें पहलेही जला दिया जा चुका था। भारतीयोंने ऐसा करके एक प्रकारसे तब सरकारके विरुद्ध संघर्ष की घोषणा कर दी थी। किन्तु जैसा कि ऊपर लिख आये हैं, सरकारने मौन धारण कर इस संघर्षको टालसा रखा था। अतः इस टाले हुये संघर्षको उत्तेजना देने और छेड़नेके लिए भरतीयोंने यही उचित समझा कि सरकारके व्यापार पर लगाये प्रतिबन्धोंको तोड़ दिया जाय। इस निष्कर्ष पर पहुँचकर उन्होंने लाइसेन्स की परवाह न कर अब खुल्लमखुल्ला व्यापार करना भी शुरू कर दिया।

इस प्रकारके व्यापारका स्पष्ट अर्थ था—अवज्ञा आन्दोलन और सरकारकी प्रतिष्ठापर एक जबरदस्त आघात। स्वभावतः भारतीयों की इस गर्वपूर्ण 'अवज्ञा'से ट्रान्सवालकी सरकार जो नेटालके सत्याग्रहसे परेशान होकर अबतक ट्रान्सवालके भारतीयों के परवाना जलानेके काडके प्रति अपना रोष थामकर उदासीन हो रही थी, बौखला उठी, और उसने झुंझलाकर ट्रान्सवालके भारतीयोंपर भी प्रहार करना शुरू कर दिया। सरकारकी इस रौद्रतासे भारतीयोंको खुशी ही हुई, क्योंकि वे यही चाहते थे। उनका लक्ष्यही इस समय सरकारको जोश और रोष दिलाकर मैदानमें उतारना था। वे कभीसे एक बार खुलकर मैदानमें

आत्मवल और पशुवलकी शक्तियोको नाप लेनेके लिये उत्सुक हो रहे थे। और इसमे वे आखिर सफल हुए। भारतीयोकी इच्छाके अनुरूप वे और ट्रान्सवालकी प्रतिद्वन्दी सरकार दोनों अब मैदानमे उतर आये थे। इन दोनों प्रतिद्वन्दियोंमे एक को आत्मबल का भरोसा था, दूसरेको शस्त्रवलका। एकमे सहनेकी शक्ति थी, दूसरेमे 'दवाने' की। अतः जैसे जैसे सरकार दमनको तीव्र करती जाती थी, सत्याग्रहकी लहरे उग्रतर होती जाती थीं। सरकारको आश्चर्य था, इस वातका कि कोई भी प्रहार, कोई भी आघात मानों भारतीय सत्याग्रहियोंपर असरही नहीं करता, और आन्दोलन वढता ही जाता है।

गाधीजी फिर गिरफ्तार—

ट्रान्सवालकी सरकार अव वहुत आफतमे थी। एक ओर से नेटालके सत्याग्रहियोंकी अहिंसक टोलिया वरावर ट्रान्सवाल पर आक्रमण करती जा रहीं थी, तो दूसरी तरफ ट्रान्सवालके भारतीयोंका 'अवज्ञा आन्दोलन' अवाध गतिसे वढता ही जाता था। सरकार यह भी समझ रही थी कि इस आन्दोलनकी जड मे गाधीकी ही प्रेरक शक्ति काम कर रही है। अतः सरकारने आन्दोलनको खतम करनेके लिए जडको ही उखाड फेक देनेका निश्चय किया। जिस समय यह कुमत्रणा हो रहीं थी, गाधीजी नेटाल गये हुए थे, इसलिए जव वे ट्रान्सवालको लौटने लगे तो वार करनेका यह अच्छा मौका देख सरकारने उनसे परवाना मागा। लेकिन परवाना था कहा? उसे तो गाधीजी पहिले ही अपने साथियोंके साथ कडाईमे डालकर भून चुके थे। फलतः परवाना न पेश करनेके वहाने वे गिरफ्तार कर लिये गये, और

१५ अक्टूबर १९०८को उन्हे २ महीनेकी सख्त कैदकी सजा देकर जेलमे डाल दिया गया। गांधीजी निरपराध थे और इसीलिए एक बेकसूरको दण्ड देते समय गोरे मजिस्ट्रेट का हृदय भी पसीज उठा था। गांधीजीकी निर्भीक और सत्यवाणीने मजिस्ट्रेटके हृदयको सचमुच हिलासा दिया था। सत्याग्रह आन्दोलनके मूल-भूत कारणो पर प्रकाश डालते हुए गांधीजीने कोर्टसे कहा था—'खूनी कानूनको रद्द करानेके लिए मैने यथासाध्य बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सरकारने एक बार वचन देकर भी इस संबंध मे कुछ न किया, ऐसी अवस्थामे निरुपाय होकर ही हम भारत-वासियोंने फिर सत्याग्रह आरम्भ किया। अतः इस अपराधके लिए मुझे जो दण्ड मिले, मै सहनेके लिए तैयार हूं।'[1] किन्तु इस सरल और सत्य कथनका झूठ और कूटनीति पर आश्रित गोरी सरकार पर क्या असर हो सकता था ? इसलिए हृदयसे गांधीको निरपराधी समझते हुए भी गोरे मजिस्ट्रेटको उन्हे कैदकी सजा देनी पड़ी। सजा भुगतनेको कैदी गांधी वोलक्रस्ट जेलमे भेज दिये गये !

सत्याग्रहियोका दमन—

वोलक्रस्ट जेलमे गांधीजीको मिलाकर कुल ७५ कैदी रखे गये थे। सत्याग्रही कैदियोको तोड़ने और मरोड़नेमे इस बार गोरी सरकारने कोई कसर न उठा रखी। सब सत्याग्रहियो और गांधीजी पर बहुत बुरी तरहसे सख्तियाँ की गयीं। और जिस तरहसे हो सका, उन्हें परेशान करनेका प्रयत्न किया गया !

---

१ महात्मा गांधी, लेखक श्री रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ. ५१-५२.

सत्याग्रहियोंको तंग करनेके लिए जेलमें पाखाना साफ करनेका कामभी उन्हींको दिया गया। इस प्रकार जितनेभी कठिन कार्य हो सकते थे,—पत्थरोंको कूटना, पथरीली जमीन खोदना, और कुएँ तयार करना आदि—सब उनसे कराये गये। पर वीर सत्याग्रही इन सब कठिनाइयोंको मानों कठिनाइयाँही नहीं समझते थे, और हँसते मुस्काते सब सहज भावसे झेलते जाते थे। 'सहना' उनके जीवनका इष्टही हो गया था। गाधीने उनमे यह विश्वास पैदाकर दिया था कि 'सहने' से ही अत्याचारीके अत्याचारोंका अन्त किया जा सकता है। यही कारण था कि वे बिना किसी रोष और प्रतिहिंसाके सरकारके अत्याचारोंको झेलते जाते थे। उनके हृदयमे यह विश्वास जम गया था कि इसका परिणाम अन्ततः अत्याचार ढाहनेवालेके लिए ही घातक होगा। अतः गाधीके साथ मिलकर वे सब यातनाओंमे झूलते हुए भी खुश थे, प्रसन्न थे। कोई भी सख्ती या कठिनसे कठिन कार्य उनसे 'आह' न निकाल सकता था। पथरीली जमीन पर कुदाल चलानेके कारण उनके हाथों पर बहुतसे छालेभी पड गये थे, लेकिन तबभी बिना 'उफ' किये वे कड़ी मेहनत करनेसे न हटे। उनका आनन्द-स्रोत और सबसे बड़ा सहारा गाधी जब उनके बीचमे था, और वोलक्रस्ट जेलमे जब वे ही खाना बनाकर उन्हे खिलाते पिलाते भी थे, तो फिर छालोंकी क्या बिसात थी कि उनके इस आनन्दमे बाधा डाले।

गांधीजीका तबादला और रिहाई—

गाधीजीको सरकार बहुत "खतरनाक कैदी[1]" समझती थी।

1 Gandhi world citizen, by Mureil Lester, p 120.

इसलिए सरकारने अन्य सत्याग्रहियोंके बीचसे गाधीजीको वोल्कस्ट जेलसे हटा देनेका निश्चय किया। सरकारका यह भी खयाल था कि इस प्रकार अलगकर दिये जानेसे गाधी और उनके साथियोंका दिल और साहस दोनों टूट जायेंगे, और परिणामतः सत्याग्रह आन्दोलन भी शिथिल पड जायगा। अतः अपनी इस इच्छाकी पूर्तिके लिए सरकारने गाधीजीका प्रिटोरियाकी जेलमे तबादला कर दिया। इस बार सरकार गाधी पर इतनी बिगडी हुई थी कि प्रिटोरिया ले जाते समय जलील करनेकी गरजसे जेलसे स्टेशन तक उनको अपनी गठरी सिर पर लादे पुलिस गार्डके बीच आम रास्तेसे ले जाया गया।[1]

प्रिटोरियाकी जेलमे गाधीजीको एक ऐसी कोठरीमे रखा गया, जिसमे केवल खतरनाक कैदीही रखे जाते थे। यहाँ सारा समय उन्हें तनाहीमे ही बिताना पडा। मुश्किलसे तब दिन-भरमे उन्हे अपनी कोठरीसे दो बार व्यायामके लिए बाहर निकाला जाता था। लेकिन कुछ ही समय बाद यकायक १३ दिसम्बर १९०८ को सरकारने गाधीजीको रिहा कर दिया। इस रिहाईके समयसे लेकर ६ नवम्बर १९१३ तक गाधीजी फिर बाहर ही रहे।

सत्याग्रहियों पर पाशविक अत्याचार—

गांधीजीको छोडनेमे सरकारका कोई अच्छा अभिप्राय न

---

1 Gandhiji, His Life And work, published, october 1944 Bombay p 341

था। अपने साथियों और दूसरे सत्याग्रहियोंसे अलग करनेके लिए ही उन्हें मुक्त किया गया था। इसीलिए गांधीजीको रिहा करने पर भी सरकार अन्य भारतीय सत्याग्रहियोंको सैकड़ोंकी संख्या में जेलमें ठूंसती ही चली गयी। लेकिन भारतीय इससे पस्त-दिल न हुए। वे सरकारका पहलेकी भांति ही डटकर तीव्रतासे सामना करते रहे। परिणामतः अन्तमें सरकारको ही घबड़ाकर यह सोचना पड़ा कि आखिर वह कब तक और कहां तक उन्हें जेलमें ठूंसती ही जायगी? निःसन्देह जेलें अब काफी भर चुकी थीं और उससे सरकारी खर्चा भी बहुत बढ गया था।

फलतः कूटनीतिज्ञ सरकारने सत्याग्रहियोंको कुचलनेका एक नया और क्रूर ढंग सोच निकाला। यह नया उपाय या अस्त्र निष्कासन दंडके रूपमें आया। इसको उपयोगमें लाकर सरकारने अब सत्याग्रहियोंको जेलमें भरनेके बजाय उन्हें पकड़-पकड कर भारत भेजनेका क्रम जारी किया। सत्याग्रहियोंके लिए यह सचमुच एक महान विपत्तिका अवसर था। इस घातक निष्कासनके कारण उन्हें अपने परिवार और कारोबार सबसे हाथ धोना पड रहा था। उन्हें यह भी पता न था कि भारतमें जहां वे छोड़े जायेंगे, वहां क्या होगा। इसके अलावा निष्कासनके समय जहाजमें भी उन्हें बहुत तंग किया जाता था। किन्तु ऐसी विकट और संकटापन्न स्थितिके उपस्थित हो जाने पर भी अनेक सत्याग्रही अपने सत्यके आग्रह पर डटे ही रहे। इन शूर-वीरोंको अपने कर्त्तव्यके सिवा परिणामकी मानों कोई चिन्ता ही न थी।

इस विकट स्थितिमें गांधीजी अपनी तरफसे जैसेभी हो सका,

इन दृढ-प्रतिज्ञ सत्याग्रहियों को हर प्रकारका सहारा पहुँचाते रहे। यकायक भारत भेजे गये निष्कासित सत्याग्रहियोंको वहाँ पहुचने पर रहने और खाने पीने आदिका कष्ट न हो, इसका भी गाधी जीने अपने मित्रोंके जरिये प्रबध करा दिया। इस बीच उनके नेतृत्वमे भारतीयोने सरकारके इस पाशविक कार्यके विरुद्ध एक जोरदार आन्दोलन भी शुरू किया और सरकारके ही कानूनका आधार लेकर निष्कासन दण्डके विरुद्ध कोर्टमे अपील दायर करदी।[1] भाग्यवश भारतीयोंकी यह अपील मंजूर हो गई और सरकारको लाचार होकर अपने क्रूर निष्कासनके विधान को समेट लेना पडा।

गोरी पाशविकता—

सरकारने मजबूर होकर निष्कासनका दण्ड तो बन्द कर दिया, लेकिन सत्याग्रही कैदियोंको कष्ट पहुचानेके लिये अब उसने अनेक प्रकारके दूसरे पाशविक ढग अख्तियार कर लिये। पहले सत्याग्रहियोको एक साथही रखा जाता था,लेकिन अब उन्हे तग करने की गरजसे एक दूसरेसे अलग कर विभिन्न जेलोमे डाल दिया गया। इसी तरह तग करनेके वास्ते और भी जो जो तरीके हो सकतेथे, प्रयोगमे लाये गये। सरकार इस प्रकार अपने पशुबल के द्वारा सत्याग्रही सेना का दम तोडने पर तुल सी गई थी। लेकिन आत्मबलके सामने पशुबल की कोई पेश न चल पाती थी। सत्याग्रहियों को असहनीय शीतकाल मे ट्रान्सवाल की सडकके किनारे कैम्पो मे भी रखा गया, कडाके की ठण्डमे प्रातःकाल

---

1 Satyagraha In South Africa, p 311

उनसे खुली सड़कों पर सख्त मेहनत भी कराई गई, लेकिन इन सब कष्टोंके बावजूद उन्होंने अपने आन्दोलन की तीव्रता किसी प्रकार कम न होनेदी। वरन् जैसी जैसी सख्तियाँ बढती जाती थीं, सत्याग्रह भी उसी तीव्रताके साथ बढता जाता था। जेलके नारकीय कष्टोंकी मानों सत्याग्रहियोंके सामने कोई अस्तित्व ही न था, और जेलोंको तपोभूमि समझ कर वे उनमे घुसे ही चले जाते थे। सत्याग्रह की इस तीव्रता को देख कर क्रोधित सरकार जितना भी उग्र हो सकती थी, होती चली गई। उसने अब सत्याग्रहियों को और अधिक तग करनेके लिये उन भयानक जेलोकी काल कोठरीमे उन्हे ठूसना शुरू किया जिनमे केवल खतरनाक कैदियोंको रखा जाता था। इन भयंकर जेलोमे डाइप क्लूफ कन्विक्ट प्रिजन का नाम सबसे मशहूर था। इस जेलमे सत्याग्रहियोको तग करनेके अलावा गालियों तथा कुत्सित व्यवहार द्वारा अपमानित भी किया जाता था। सत्याग्रही शारीरिक सख्तियोंको तो सह सकता है, लेकिन आत्माके आघात और अपमानको सहना उसके धर्मके विरुद्ध है। अतः उक्त जेलके वन्दियोंने 'अपमान' के विरोधमे भूख हडताल करनेका निश्चय किया। जघन्य पशुबलका सामना करनेके लिए आत्मबल पर निर्भर रहनेवाले सत्याग्रहीका भूख हडताल या अनशन ही वास्तवमें, सबसे बड़ा-

और अन्तिम अस्त्र है, जिसके प्रयोगसे वह अत्याचारीके हृदयको द्रवित कर सकता है। यह भूख हडताल सात दिनों तक चली सरकार इस कठोर आत्म-बलिदानके दृश्यको अधिक न सह सकी और अन्ततः अनशनके सातवें दिन उसने सत्याग्रहियोंकी मागके

सामने सर झुका दिया तथा उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें उस रारव समान जेलसे वदल भी दिया। निःसन्देह आत्मबलकी यह एक भारी विजय थी। यहाँ पर हम यह भी इंगित कर दें कि सत्याग्रहकी अहिंसात्मक लड़ाईमें भूख हड़तालका यह अहिन्सक अस्त्र पहले पहल इसी समय (नवम्बर १९१०) प्रयोग में लाया गया था।[1]

गांधीजी और दूसरा डिपुटेशन—

भारतीयोंका सत्याग्रह चल ही रहा था कि इसी समय (१९०९) अंग्रेज और वोअरोंने यह निश्चय किया कि दक्षिण अफ्रीकाके विभिन्न उपनिवेशों को मिलाकर एक यूनियन सरकार कायम कर ली जावे। इस ध्येयसे अतः वोअरों और अंग्रेजोंने मिलकर केविनेटके पास अपना एक डिपुटेशन इंग्लैंड भेजा। यह डिपुटेशन अपने इष्ट साधनमें सफल हुआ और परिणामस्वरूप इंगलैंडकी पार्लमेण्टमें यूनियन विल पास कर दिया गया।

यूनियन विलके पास होनेपर गांधीजी और उनके साथियोंने समझ लिया कि यूरोपियनोंकी यूनियन स्थापित होनेसे उनकी दशा अब और भी शोचनीय हो जायगी, क्योंकि सभी यूरोपियन एक रूपसे भारतीय विरोधी थे। अतः भारतीयोंने यह आवश्यक समझा कि गांधीजी भी फिर भारतवासियोंकी तरफसे एक डिपुटेशन लेकर तुरन्त इंग्लैंड जाय और वहाँके जन-

---

1 Ibid, P. 346

मतको भारतीय-पक्षमे जागृत करने तथा ट्रान्सवाल सरकारके नेताओं (जनरल स्मट्स और बोथा) के साथ 'ऐशियाटिक ऐक्ट' को तोड़नेकी चर्चा चलानेका प्रयत्न करे। फलतः इस निश्चयके अनुसार गाधीजी और सेठ हाजी हवीव भारतीयोंके प्रश्नको लेकर २३ जून १९०९ को इंगलैडके लिए रवाना हो गये।

इगलैड जाते समय गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकाके भारत-वासियोंके कष्टोका प्रचार करने और भारतके लोकमतको उनके प्रति जागृत करनेके विचारसे एक डिपुटेशन यहाँ भी भेजा। मि० पोलक इस डिपुटेशनके अगुआ थे। मि० पोलकने भारतमे पहुच कर वहुत ही सुन्दरता और योग्यताके साथ दक्षिण अफ्रीकाके भारतवासियोंके दुखोकी कथा यहाँके लोगोको सुनाई। दक्षिण अफ्रीकामे रहनेवाले अपने देश भाईयोंकी दुर्दशाकी गाथा सुनकर भारतकी जनताका मन स्वभावतः दुःख और सहानुभूति से भर उठा। अतः उन्होंने करुणार्द्र हृदयसे यह निश्चय कियाकि वे जहाँ-तक और जिस तरह वन पड़ेगा, अपने अफ्रीकाके प्रवासी वंधुओंको सहायता पहुंचाकर उनके कष्टोंको कम करनेका प्रयत्न करेंगे। भारतकी इस जन-चेतना के परिणामसे ही वादमे गांधीजीके वुलावे पर उस समयके सर्वमान्य भारतके नेता गोखले प्रवासी भारतीयोंकी समस्यासे आन्दोलित होकर दौड़े हुए दक्षिण अफ्रीका पहुचे थे। लेकिन इस घटनाका जिक्र आगेके लिए छोडकर अव हम पुनः गांधीजी और हवीवके डिपुटेशनको लौटते हैं। देखना है, भारतीय डिपुटेशनका इंगलैंडमे क्या हुआ?

इंगलैंड पहुचते ही गांधीजी और हवीवने लार्ड अम्पतहिल (Lord Ampthill) के जरिये जनरल वोथा से 'ऐशियाटिक-

ऐक्ट' को रद्द करने की चर्चा शुरू कर दी। किन्तु जनरल वोथा ने ऐक्ट और रंग भेद को रद्द करने से साफ इनकार कर दिया, यद्यपि छोटी मोटी मागों को स्वीकार करने का उसने आश्वासन अवश्य दिया। वोथाकी भाति स्मट्स का व्यवहार भी भारतीय नेताओंके साथ अमित्रताका रहा। अतः भारतीयोंकी मागोंको पूरा करनेके वजाय वोअर और ब्रिटिश नेताओंने गाधीजी को धमकीके साथ यह कहलवाया कि जैसा वे कहते हैं, उस तरहसे वाते स्वीकार कर ले, अन्यथा उनकी शक्तिके प्रभाव और न मानने के कुपरिणामो को भी सोचकर रखें।

हवीव मालदार व्यापारी तपके के प्रतिनिधि थे। और यह व्यापारी व अमीर तपका ही ट्रान्सवाल मे अधिक संख्यामे था। अमीर स्वार्थी और डरपोक तो होते ही है, अतः उनके प्रतिनिधि हवीवने वोथाकी वातोंको भयसे यह कहकर स्वीकार कर लिया कि 'वे अपने वर्ग को और अधिक कष्ट मे डालना नहीं चाहते और इसलिये फिलहाल जितना जनरल वोथा देने को तैयार है, इसीसे सतुष्ट हो जायेंगे। रहा सिद्धान्त, उसके लिये वाद मे देख लिया जायगा।'

किन्तु दूसरी ओर सत्यपर आस्था रखने वाले और दलित एव दरिद्र वर्ग के एकमात्र आश्रय व प्रतिनिधि गाधी अपने ध्येय पर अटल वने रहे। जो सत्य पर निछावर होना जानते हैं, जो पर दुःखसे कातर हुआ करते है—उन्हें न कोई स्वार्थ हिला सकता है और न किसी का भय कपा ही सकता है। अतः गाधी जैसे सत्यनिष्ट और परदुःखसेवी को कोई भी शक्ति विचलित न कर सकती थी, और इसीलिये उन्होंने जनरल वोथाकी शर्तों

का तिरस्कार करते हुए उसके पास यह दर्प-युक्त संदेश भेजा कि "वे भारतीय जिनका मै प्रतिनिधित्व करता हूं, निश्चय गरीब और अल्प संख्यक हैं, तथापि वे प्राणों तक को होम करने को तैयार है, क्योकि वे सिद्धान्तोंके लिए लड़ रहे है। हम जनरल बोथा की शक्तिसे भी परिचित है, लेकिन हम उससे अधिक अपने वचनोंको महत्व देते है और इसलिए उनका पालन करनेके हित सभी दुष्परिणामोंके लिए तैयार है हम सत्याग्रही संख्यामे भी थोडेसे हैं, किन्तु आशा करते है कि अपने वलिदानोसे हम जनरल बोथाके दिलको पिघला सकेगे और उन्हें 'एशियाटिक ऐक्ट' को बदलनेके लिए बाध्य कर सकेंगे।"[1]

पर जनरल बोथाने गाधीजीकी इस चेतावनीसे भरे संदेशको तब एक बहकेका प्रलापसा समझा, और इसलिए उसपर कोई ध्यान न दिया। फलतः गाधीजी खाली हाथ १३ नवम्बर १९०९ को इंगलैंडसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए चल दिये। इस वापसी यात्राके समय मार्गमे गाधीजीने 'हिन्द स्वराज' (Indian Home Rule) नामकी एक पुस्तिका लिखी जिसमे उन्होंने 'सत्याग्रह' और 'अहिंसा' के सबंधमे अपने स्पष्ट विचार और धारणाएँ व्यक्तकी हैं। इस पुस्तिकाको लिखनेकी प्रेरणा गाधीजीको इंगलैंडमे रहनेवाले उन भारतीय नवयुवक क्रान्तिकारियोसे मिली जो 'हिंसा' को अपना आदर्श समझते व मानते थे। उनके इस भ्रमपूर्ण आदर्श और घातक हिंसा पद्धतिकी गांधीजीने 'हिन्द स्वराज'मे खुलकर विवेचनाकी है और स्पष्ट रूपसे इसपर जोर दिया है कि "भारतका हित हिंसासे नहीं, प्रेमके मार्गसे ही

---

1. Ibid pp. 350–55.

सम्भव है” अर्थात् भारतका हित मारनेमें नहीं, मरनेमें है। अत. हिन्द स्वराजमें ‘पशुबल’का ‘आत्मबल’से सामना करनेका उपदेश दिया गया है और ‘पशुत्व’की धात्रि वर्तमान भौतिकवादी सभ्यताकी कड़ी आलोचना की गई है।[1]

टाल्सटाय फार्मकी स्थापना—

गांधीजी विलायतसे खाली हाथ लौटे थे। उनकी मांगोंको ठुकरा दिया गया था। अतः उन्होंने लौटने पर अब सत्याग्रहको और मजबूती और दृढताके साथ तब तक चलाते रहनेका निश्चय किया जब तक कि सरकार भारतीयोंकी सही मांगोंको पूरी तरहसे स्वीकार न कर लेवे।

किन्तु अनिश्चित काल तक सत्याग्रहको चलानेके लिए गांधीजीके सामने दो प्रश्न थे—एक तो रुपयेका और दूसरा उससे भी अधिक सच्ची सत्याग्रही सेना तैयार करनेका जो सफलतापूर्वक मजबूत और पशुबलमें प्रबल दक्षिण अफ्रीकाकी यूनियन सरकारसे उस समय तक लडती रह सके जब तक कि उसे अपने इष्टकी प्राप्ति नहीं हो जाती! लेकिन मोर्चे पर लडने वाले इन सत्याग्रही सैनिकोंके बाल-बच्चों और स्त्रियोंके रक्षण तथा भरण पोषणका भी प्रश्न गांधीजीके सामने था। क्योंकि सत्याग्रहियोंके लडाईमें व्यस्त होने और पकड लिये जाने पर उनके कुटुम्बोंकी देख-रेख उनके सेनापतिको ही करनी थी। और इस देख-रेख का स्पष्ट अर्थ था—यथेष्ट रुपैया।

1—Hind Swaraj by, M. K Gandhi, Navajiwan press, Ahmedabad, pp XXV-XXVI

पर भाग्यवश गांधीजीको रुपयेके लिए अधिक चिन्ता न उठानी पडी, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका पहुचते ही उन्हे तार द्वारा यह सूचना मिली कि रतनजी जमशेदजी टाटाने सत्याग्रह फंड के लिए २५,००० रुपये दान दिये है। अतः इस रुपयेको पाकर सत्याग्रहियोंके कुटुम्बकी व्यवस्था करनेके लिये गांधीजीने तुरन्त अब एक आश्रम कायम करनेका निश्चय किया। उनके इस निश्चयको मालूम कर उनके जर्मन मित्र कैलन वकने स्वत. ३० मई १९१०को १,१०० एकड़ जमीन मोल लेकर उसे निःशुल्क उन्हे (गाधीजी) सत्याग्रहियोके लिए आश्रम वनानेको दे दिया। कैलन वककी यह जमीन जोहान्सवर्गसे २० मील पडती थी। इस इच्छित दानको पाकर गांधीजीने जल्दी ही उसमे 'टॉल्सटाय फार्म' नामसे अपना आयोजित आश्रम स्थापित कर दिया, और इस प्रकार भावी सत्याग्रहियोके कुटुम्बियोके प्रश्रयकी समस्या हल कर डाली।

इस आश्रममे गाधीजी की योजना पर स्त्री और पुरुपोंके रहनेके लिए अलग-अलग मकान वनाये गये। आश्रमके जीवनमे सादगी और स्वावलम्बन पर विशेप ध्यान रखा गया, क्योंकि गाधी 'सत्याग्रहियोको उन अमीरोके धन पर कोहना टेके नही देखना चाहते थे जो अव स्वार्थमे पड़कर सत्याग्रह संग्रामसे खिसके जा रहे थे।' अतः वे अपने प्रत्येक सत्याग्रही सैनिकको निज आत्मवल पर निर्भीकताके साथ अवस्थित देखनेकी आकाक्षा रखते थे। इसीलिए गाधीजीने प्राचीन आर्य ऋपियोंके तपा-श्रमोकी तरह स्वावलम्व, चारित्रिक विमलता और सरलताको अपने आश्रमके आधार स्तम्भ वनाये। फलतः आश्रमसे जीवन-

व्यापारके प्रत्येक कार्य आश्रम वासियोको खुद करने पडते थे। दूसरेसे अपना काम लेना आश्रमके नियमके विपरीत था। आश्रममे पुरुषोंकी भांति स्त्री और बच्चोंको भी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार काम करना अनिवार्य था। आश्रममे खाना पकानेका कार्य स्त्रियॉ ही करती थीं। इस कार्यमे गांधीजी स्वयं भी स्त्रियोका हाथ बॅटाते थे। खाना व भोजन स्वादके लिए नही बनता था। स्वास्थका ध्यान रखते हुए उनका भोजन बहुत ही सादा, स्वच्छ और साधारण हुआ करता था।

आश्रममे रहनेके मकान भी आश्रमवासियोका स्वय अपने हाथ और परिश्रमसे तैयार करने पडते थे। आश्रमवासी खुली जमीनमे किसानोंकी भॉति काश्त भी करते और फल-फूल वा तरकारी उगाया करते थे। घरेलु उद्योग-धन्धों का भी आश्रममे खयाल रखा जाता था। अपने जरूरतकी प्रत्येक वस्तु जहॉ तक हो सके, उन्हें स्वय तैयार करनी पडती थी। अपने लिए चप्पले तक गांधीजी और उनके साथी आश्रमवासी स्वय अपने हाथोंसे तैयार किया करते थे। इसी प्रकार घरकी अन्य आवश्यक सामग्रियॉ जैसे तिपाई और सन्दूक आदि भी वे स्वय ही तैयार किया करते थे। कोई काय आश्रमका ऐसा न था जिसे आश्रमवासी सत्याग्रही दूसरे पर छोड देते हों। पाखाना तक वे अपना आप ही साफ किया करते थे। निःसन्देह गांधीजी ने आश्रमके जीवनसे परावलम्बताको बिलकुल निष्कासित कर रखा था। आलस्य, निश्चेष्टता और दूसरेके ऊपर भोग करनेकी कुप्रवृत्तियोंके लिए आश्रमके पट कतई बन्द कर दिये गये थे। आश्रमके वासियों पर इन कठोर किन्तु सुन्दर नियमोंका

परिणाम भी अपेक्षित रूपसे सुन्दर हुआ। स्वावलम्ब और परिश्रम करनेकी शिक्षा और अभ्यासने निःसन्देह उन लोगोको भी जो प्रारम्भमें कमजोर और आलसीसे थे शक्तिशाली और सचेष्ट बना दिया। फलतः आश्रमके सभी रहनेवाले सत्याग्रही अपनेको शक्तिसे पूर्ण प्रतीत करने लगे।[1]

आश्रमवासी सत्याग्रहियोंके बच्चोंको पढानेकी भी गाधीजीने आश्रममे व्यवस्था कर रखी थी। इसके लिए उन्होंने अपने जर्मन मित्र कैलनबकके सहयोगसे एक बच्चोंकी पाठशाला कायम कर दी थी। आश्रममे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी सभी प्रकारके लोग जिस तरह एक संग रहते थे, उसी प्रकार स्कूलमे भी सबके बच्चे बिना किसी भेद भावके एक संग पढा करते थे। बच्चोमे जाति-भेदका कोई कुरोग पैदा न हो सके, इसके लिए गाधीजी सर्वदा इस बातका विशेष ध्यान रखते थे कि स्कूलके सभी बच्चे एक दूसरेके निकटतम सम्पर्कमे रहा करे। इस बातकी भी पूर्ण चेष्टाकी जाती थी कि बच्चोंमे पारस्परिक प्रेम और सर्व-जातीय सेवाका भाव पैदा हो। स्कूलमे बच्चोंसे भजन और प्रार्थनाएँ भी कराई जाती थीं। लडकिया लड़कोंके संग ही एकसाथ पढा करती थीं। लड़के लडकियोंको परस्पर मिलने-जुलनेमे प्रारम्भमे कोई प्रतिबन्ध न रखा गया था। लेकिन पीछे चलकर गाधीजीको यह अनुभव हुआ कि लड़के और लडकियोंका एक संग मिलकर पढना और स्वच्छन्दपरूसे मिलना जुलना अच्छा नहीं है, क्योंकि इससे चरित्र गिरनेका डर रहता है।[2] अतः बादमे लडकियोंके लिए अलग स्कूलकी व्यवस्था कर दी गई।

---

1 Ibid, pp 371-374

2 Satyagraha In South Africa, pp 363.

आश्रम के जीवनमें, चरित्रको शुद्ध और निर्मल बनानेके लिए सादगीको पूरी तरहसे अपना लिया गया। आश्रमके सारे निवासी अपनेको गरीब मजदूर और जनसेवकसे बढकर न समझते थे। इस आदर्शके अनुकूल उन्होंने अपनी पोशाक भी बदल डाली थी। वैसे आम तौरसे पहिले सभी सत्याग्रही यूरोपियन पोशाक पहिना करते थे, किन्तु अब वे 'मजदूरों'की मामूली पोशाकसे ही अपना काम चलाने लगे।

इस प्रकार आश्रमका जीवन सादगीसे पूर्ण और राग-द्वेष रहित था। विभिन्न जातिके होते हुए भी आश्रमवासी सब एक मन और प्राण होकर रहते थे। धर्मके नाम पर हिन्दू या मुसलमानोंमें आश्रममें कभी दगा-फिसाद सुननेमें भी न आता था। सबमें आपसी मेल था, प्रेम था, और सहयोग। सब मेहनतके मधुर फलको खाते और खुश तथा स्वस्थ रहते थे। शारीरिक और मानसिक एवं धार्मिक व्याधियोंसे आश्रमवासी सब प्रकारसे मुक्त थे। सब अपनेको आश्रममें वस्तुतः एक ही कुटुम्ब वा परिवारका महसूस करते थे[1]।

निःसन्देह सत्याग्रहियोंका आश्रम 'टॉल्सटाय फार्म' एक पुण्य केन्द्र था। कोई इस केन्द्रसे जेलकी यात्राके लिए जाता तो कोई जेलसे मुक्त होकर यहाँ विश्राम पानेके लिए लौटता--इस क्रमसे सत्याग्रही फार्ममें नित्य आते और जाते ही रहते थे।[2]

सत्याग्रहियोंके इस मेहनत, मजदूरी और प्रेम भरे जीवनका वहाँकी भारतीय जनता पर भी बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ा। चारि-

1 Ibid p 391

2 Ibid pp 305-389

त्रिक विशुद्धता और सेवाव्रती होनेसे सत्याग्रही लोगोकी सच्ची सहानुभूति और विश्वासके पात्र बन गये। निःसन्देह यह इस सहानुभूति और विश्वासका ही परिणाम था कि १९१३मे गाधीजीके जोर शोरसे सत्याग्रह संग्राम छेड़ने पर जनताने उनको पूरा पूरा सहयोग दिया। इस प्रकार टालसटाय फार्म गाधी जीके नेतृत्वमे दक्षिण अफ्रीकाके अन्तिम सत्याग्रह युद्धकी तैयारी एव सचालनका एक जबर्दस्त केन्द्र साबित हुआ।[1]

गाधीजीके आश्रम और उनके ट्रान्सवालके कार्योंकी प्रशंसा मे ७ सितम्बर १९१०के एक पत्रमें टॉलसटायने गाधीजीको लिखा था-"ट्रान्सवालका, जिसे हम यहाँ दुनियाँके किसी दूरस्थ छोरपर स्थित समझते है, तुम्हारा कार्य बहुत ही जरूरी है और ससार मे होने वाले आजके सम्पूर्ण कार्योंमे सबसे अधिक प्रमुखता रखता है।"

यूनियन सरकारका झूठा समझौता—

गाधीजीके ट्रान्सवालके सत्याग्रह युद्धके कारण भारतमे भी काफी हलचल पैदा हो गई थी। गाधीजी और उनके यूरोपियन मित्रों (श्री पोलक और रिच) आदिके प्रयत्नोंसे भारतका लोक-मत दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके प्रति काफी जाग्रत भी हो गया था। इस जागृतिके परिणामसे ही २५ फरवरी १९१० को गोखलेने भारतकी व्यवस्थापिका सभामें जब इस आशयका

---

1. Gandhiji, His life And work, Published, Bombay,
2 Oct 1944 pp 242-3

एक प्रस्ताव पेश कियाकि नेटालको 'प्रतिज्ञावद्ध मजदूरा' (Indentured labour) का भेजना रोक दिया जाय, तो वह सरलतासे स्वीकृत कर लिया गया।

लेकिन भारतकी नैतिक सहानुभूतिसे ही सतुष्ट न होकर गांधीजीकी उत्कट इच्छा हुईकि भारतका कोई नेता और विशेपकर गोखले इस समय दक्षिण अफ्रीका आवे और वहाँकी सही हालत का प्रत्यक्ष अनुभव करनेके वाद, तव जो मदद उनसे प्रवासी भारतीयोंकी वन सके करे। अतः इस विचारके मनमे आते ही गाधीजीने गोखलेको तार द्वारा वहाँ आनेका निमंत्रण भेजा। गोखले तत्कालीन भारतके यद्यपि सर्वमान्य और वहुत वड़े नेता थे, लेकिन गाधी जैसे प्रिय वन्धुका निमत्रण वे किसी प्रकार टाल न सकते थे। इसलिए निमंत्रण पाते ही वे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गये। २२ अक्तूवरको गोखले केपटाउन मे पहुचे और वहाँ से फिर तुरन्त सत्याग्रहके मध्यस्थान जोहान्सवर्गको चले आये। मार्गमे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंने स्थान-स्थानपर अपनी मातृभूमिके इस महान् नेताका सर्वत्र ही खूव शानदार और राजकीय स्वागत किया।

जोहान्सवर्गके वाद गोखले नेटाल गये और वहाँसे फिर वे सरकारके निमन्त्रण पर प्रिटोरिया चले आये। प्रिटोरियामे गोखले यूनियन सरकारके मेहमानके रूपमे ट्रान्सवाल होटलमे ठहराये गये। गोखले यहाँ सत्याग्रहियों और यूनियन सरकारके वीच समझौता करानेके उद्देशसे आये थे। इसलिए पहले गाधी-जीसे भारतीयोंके प्रश्नको अच्छी प्रकार समझ वूझ लेनेके वाद ही वे सरकारके प्रतिनिधि जनरल वोथा आदिसे मिले। लेकिन

चालाक यूनियन सरकारने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और भारतके संबंधको खराब न होने देनेके भयसे भारतीय नेतासे सहजही समझौता कर लिया। जनरल बोथाने गोखलेसे यह वायदा करनेमे कोई हिचक न दिखलाई कि दूसरे ही वर्ष खूनी कानून रद्द कर दिया जायगा, रंग भेद या वर्ण भेदको मिटा दिया जायगा और ३ पौंडका मजदूरों पर का सालाना कर बन्द कर दिया जावेगा।

इस प्रकार सारे मामलेको अनपेक्षित रूपसे तै हुआ देखकर गोखले सचमुच प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्हे वस्तुतः ऐसी आशा न थी, और यही उनकी खुशीका भी कारण था। उन्हे अब अपना दक्षिण अफ्रीका आना बहुत सार्थक प्रतीत हुआ। इस समझौतेसे सबसे बडी खुशी तो उन्हें इस बात की थी कि इससे गांधीका दक्षिण अफ्रीका का कार्य अब समाप्त हो जायगा, और वे उन्हें जल्दी ही महासभाके कार्यके लिए भारत बुला सकेंगे। इसीलिये जनरल बोथा आदिसे भेट करनेके बाद वे जब गांधीजीसे मिले तो उनसे उन्होंने यही कहा कि "उन्हे (गांधी) अब एक वर्षके भीतर भारतको लौट आना चाहिए। सभी बाते तै हो गई है।" किन्तु सीधे और सच्चे मार्ग पर चलनेवाले भारतीय नेताको तब यह मालूम न हो सका कि गोरी राजनीति टेढी और बांकी गतिसे भी चला करती है, और यूरोपियन राजनीतिज्ञोंकी कथनी और करनीमे बहुत अन्तर रहा करता है। गोखलेको यह बादमे भारत लौटकर ही मालूम हो सका, यद्यपि गांधीजीको जो अब गोरी राजनीतिसे काफी परिचित हो चुके थे, तभी इस समझौतेकी सच्चाई पर सन्देह हो गया था।[1] किन्तु

1 Satyagraha In south Africa, pp , 407-408

उक्त समझौतेके हो जाने पर विश्वासी गोखले भारतीयोंके प्रति निश्चित होकर, १७ नवम्बर सन् १९१२ को दक्षिण अफ्रीकासे भारतको लौट आये।

गोखलेके लौट जानेके पश्चात जैसा कि गाधीजी सन्देह कर रहे थे, यूनियन सरकारने भारतीय नेताको दिये अपने वचनोंको सहसा भुला दिया। जनरल स्मट्सने निर्लज्जता पूर्वक समझौते की एक भी शर्त माननेसे इनकार कर दिया। मजदूरोंसे लिए जानेवाले ३ पौंडके टैक्सके वारेमे उसने कपटपूर्ण लाचारी प्रकट करते हुए व्यवस्थापिका सभामे यह घोषित किया कि चूँकि नैटालके यूरोपियनोंकी राय उक्त टैक्सको हटानेकी नहीं है, इसलिए यूनियन सरकार ऐसे टैक्सको रद नही कर सकती। अन्य कानूनोंके वारेमे भी उसने-इसी प्रकारकी दलीलें पेशकर उन्हे हटानेसे इनकार कर दिया। किन्तु भारतीय अच्छी तरहसे समझ रहे थे कि स्मट्सकी यह सब चालबाजी है, प्रतारणा है, और विशुद्ध धोखा।

प्रतारणाका फल और सत्याग्रहका विस्तार—

परन्तु स्मट्सकी इस प्रतारणा और धोखेका परिणाम यूनियन सरकारके लिये ही आगे चलकर हानिकारक सावित हुआ, और भारतीयोंको उस (प्रतारणा) से फायदा ही पहुचा। स्मरण रहे कि गोखलेके साथ हुए समझौतेमे यह शर्त शामिल थी कि मजदूरोंसे सालाना ३ पौंडका जो कर लिया जाता है, वह हटा दिया जायगा। यह टैक्स मजदूरोंसे १८९५ से ही लिया जाता था। परन्तु अव तक उसे किसी तरह 'सत्या-

ग्रह' के कारणोंसे शामिल न किया गया था। किन्तु धोखेसे ही सही, जब एक बार सरकारने इस टैक्सको हटानेका वचन दे डाला और फिर अपने उस दिये वचनसे पीछे हट गये, तो गाधीजी और सत्याग्रह कमिटीने सरकारके इस वचन भगके लिए 'टैक्स' का मामला भी सत्याग्रहमे शामिलकर दिया। परिणामतः सत्याग्रह युद्धका एक और कारण पैदा होनेसे सत्याग्रहका क्षेत्र भी व्यापक हो चला। क्योंकि वह 'मजदूर वर्ग', जो अबतक सत्याग्रहमे शामिल न हो सका था, ३ पौंडके करके खिलाफ 'जिहाद' लड़नेके लिए 'सत्याग्रह आन्दोलन' मे कूदनेको आमन्त्रित कर दिया गया। सरकारकी चालबाजीने इस प्रकार मजदूरवर्गमे भी गोरी दुर्नीतिके विरुद्ध प्रतिरोधकी भावना और शक्ति उत्पन्न कर दी।

यूनियन सरकारके इस धोखेकी सूचना गाधीजीने गोखलेको भी भिजवाई, लेकिन साथ ही यह भी कहला दिया कि वे अफ्रीकाके भारतीयोंके प्रति इससे चिन्तित व व्यग्र न हों। गाधीजीने उन्हे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी तरफसे यह विश्वासपूर्ण आश्वासन दिया कि "हम आखिरी दम तक प्राणोंकी बाजी लगाकर ट्रान्सवाल सरकारसे टैक्सको रद्द कराकर ही छोड़ेगे।"[1]

गाधीजीसे यूनियन सरकारकी प्रतारणका समाचार पाकर गोखलेका दुखी होना स्वाभाविक ही था। उन्हे अब मालूम हुआ कि गोरी राजनीति कितनी झूठी, बाकी और मायावी होती है। अफ्रीकासे वे यही समझकर लौटे थे कि जो समझौता वे कर आये है, उससे वहाँकी स्थितिके सुधरनेमे अब कोई देर वा

1 Ibid p 416.

झंझट न होगी। इसलिए उनको आशा हो गई थी कि वहांके संघर्षोंसे मुक्ति पाकर उनके प्रिय-बन्धु और योग्य शिष्य गांधी भारतकी सेवाके लिए जल्दी ही मातृभूमिको लौट आवेंगे। किन्तु गोरी प्रतारणाने उनके इस स्वप्नको भंग कर डाला था। अतः आशाके इस प्रकार टूट जानेसे गोखलेका हृदय प्रकृतितः व्यथित हो उठा। इस व्यथाके अलावा उनका हृदय यह सोचकर और भी आशंकित होने लगा कि दक्षिण अफ्रीकाके मुट्ठी भर भारतीय किस प्रकार और कब तक उद्धत यूनियन सरकारके पशुबलका सामना कर सकेंगे।'[1] यूनियन सरकारके अपार पशुबलकी कल्पनासे गोखलेका सन्त्रस्त होना ठीक ही था, क्योंकि पशुबलके ऊपर सत्याग्रह और आत्मबलिदानकी प्रगल्भता और श्रेष्ठता अभी प्रत्यक्ष होनेको बाकी थी।

1. Ibid p. 417.

सफल संग्राम

अध्याय १२

फोनिक्स—

सत्याग्रह के लिये अब जोरों से तैयारियां प्रारम्भ करदी गई थीं। पहले सत्याग्रह का केन्द्र 'टॉल्सटाय फार्म' था, लेकिन ३ पौंडके टैक्स को सत्याग्रहके कारणोंमें ले लेनेसे, अब नैटालका मजदूर वर्ग भी सत्याग्रहमें शामिल कर लिया गया था, इसलिए उनकी सुभीताके हेतु गांधी जी ने उक्त फार्म को बन्द कर, नैटाल स्थित 'फोनिक्स'के आश्रम को अब सत्याग्रह का केन्द्र बना दिया। इस केन्द्र-परिवर्तनसे निःसंदेह मजदूरोंके साथ सम्पर्क स्थापित करने और सत्याग्रहके संचालनमें बहुत सुगमता हुई। टॉल्सटाय फार्मके बन्द किये जानेसे उसके रहने वालोंको भी कोई विशेष कष्ट न हुआ, क्योंकि वे सब विशेषतया मूलतः नैटालके ही रहने वाले थे और राजनैतिक झगडोंके समाप्त हो जाने पर उन्हें लौटकर नैटालको ही आजाना था।

सत्याग्रहका एक और कारण—

सत्याग्रहकी तैयारियां हो ही रही थीं कि इसी बीच गोरी सरकारके अद्भुत न्यायकी कृपासे सत्याग्रहका एक और कारण आ उपस्थित हुआ। १४ मार्च १९१३ को 'केप सुपरीम कोर्ट'ने

यह फैसला दियाकि वे तमाम शादियाँ, जो ईसाई धर्मानुसार नहीं हुई और रजिस्ट्रार (Registrar of marriages) के द्वारा रजिष्ट्र नहींकी गई है—दक्षिण अफ्रीकाके कानूनके अनुसार वैध न समझी जायगी। इस फैसलेके परिणामसे स्वभावतः, दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दु-मुसलमान और जोराष्टर आदि धर्मके अनुसार हुई शादियाँ एकदम अवैध करार दे दी गई। फलतः दक्षिण अफ्रीकाकी सभी विवाहित भारतीय हिन्दू-मुस्लिम वा पारसी स्त्रियोंका 'पत्नि'का दर्जा ही रद्द हो चला और वे 'रखेलियों की स्थितिमें बदल दी गई'। अतः इस प्रकार स्थितिके बदल जानेसे इन स्त्रियो की सन्ताने भी अवैध हो गई, और इसलिए उनका अपने पिताओंकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार न रह गया। गोरे न्यायकी इस विभीपिकाको देखकर भारतीय स्त्री और पुरुप अवाक् रह गये। लेकिन उनके हृदयो पर यह बात पूरी तरहसे गढ गई कि यह कानून वास्तवमे उनका मान मर्दनके लिए ही बनाया गया है। तो क्या वे ऐसा होने देंगे? इस ख्यालके मस्तिष्कमें रेंगते ही सारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय क्या हिन्दु और क्या मुसलमान वा पारसी रोप और आक्रोपसे प्रदीप्त हो उठे। निःसन्देह, भारतीय ललनाओं का गोरी सरकारने निर्लज्जतापूर्वक असह्-नीय अपमान किया था, अतः इसके प्रतिकारके लिए भारतीय पुरुप मरमिटनेके लिए उतावला हो चला। सचमुच अपमान और अनीतिकी यह स्थिती भारतीयोंके लिए असह्नीय थी, और उसके प्रतिकारके लिए कुछ भी करनेको उनका बेचैन हो उठना स्वाभाविक था।

इस बेचैनीकी स्थितीमे यदि गांधीजी जैसा नेता भारतीयोंके सिर पर न होता तो सभव था, वे उतावलेपन और रोषमे आकर कुछ ऐसा कर बैठते जो उन्हींके लिए अहितकर हो सकता था ! उतावलेपन, रोप और जल्दीबाजीमे काम विगड़ते ही है, सुधरा नहीं करते । अतः शांत-चित्त और प्रकृत पुरुप गांधीने भारतीयोको शांत कर वैधानिक मार्ग लिया । उक्त कानूनके सबधमे उन्होंने पहले यूनियन सरकारको एक विरोध पत्र भेजा । लेकिन सघर्षप्रिय निरकुश गोरीशाहीने इस पत्रको ठुकराकर उद्दडतापूर्वक कुछ भी करने और सुननेसे मुह मोड दिया । गाधीजीको मालूम हो गया कि सरकारका यह रुख विना नैतिक और आत्मिक दबावके ठीक नहीं किया जा सकता, और इसलिए उन्हें अब 'स्त्रियों'के अधिकारकी रक्षाके लिए 'सत्याग्रह'का शस्त्र हाथमे ले लेना चाहिये । फलतः गाधीके निर्देश पर 'सत्याग्रह मडल'ने स्त्रियोंके अपमानके प्रतिकारके लिए भीपणसे भीपण 'सत्यसंग्राम' या सत्याग्रह करनेका भी निश्चय कर डाला । वीर सत्याग्राहियोने यहा तक निश्चिय कर लिया कि वे स्त्रियोंकी प्रतिष्टामे अपने प्राण तक दे डालेंगे, और उस अपमान जनक कानूनको मिटाकर ही दम लेगे । [1]

इस प्रकार मजदूरोंके अलावा स्त्रियोंको लेकर सत्याग्रह का एक और कारण पैदा हो जानेके स्वाभाविक परिणामस्वरूप, सत्याग्रहका क्षेत्र और भी विस्तृत तथा व्यापक हो गया ।

---

1 Satyagraha In South Africa, pp 420–421

स्त्रियां संग्राम में—

उपरोक्त घटनासे पूर्व स्त्रियोंको सत्याग्रह संग्राममें शामिल न होने दिया गया था। लेकिन जब गोरीशाही ने सीधे उनके मान और प्रतिष्ठा पर ही प्रहार कर दिया, तो उसके प्रतिकारके लिए गांधीजी और सत्याग्रह मंडल ने स्त्रियोंको भी सत्याग्रहकी लड़ाई में भाग लेनेके लिए खुली आज्ञा दे दी। स्त्रियाँ इस आह्वानको पाकर खुश हो उठीं। पुरुषों की तरह इस अन्याय के विरुद्ध वे भी प्रतिकारकी भावनासे उत्तेजित हो रही थीं। पर यह सब होते हुए भी गांधीजी पहले यह जान लेना चाहते थे कि स्त्रियोंकी ये भावनायें जोशके क्षणिक उबाल पर तो नहीं आश्रित हैं। क्योंकि गांधीजी हमेशा इस बात पर ध्यान देते आये हैं कि हमारे जो भी कार्य हों, वे अस्थायी भावुकता पर नहीं, हृदयके दृढ विश्वास पर आश्रित होने चाहियें। अतः स्त्रियोंके सबंधमें इस बात की थाह लेनेके लिए वे स्वयं उनसे जाकर मिले और स्पष्टरूपसे उन्हें जेलकी भीषण यातनाओं और परेशानियोंसे अवगत कराकर खूब सोच समझ लेनेके बाद ही 'संग्राम' में कूदनेकी सलाह दी। लेकिन जेलके भयंकर चित्र उपस्थित किये जाने पर भी स्त्रियोंके उत्साहमें कोई शिथिलता या कम्पन न पैदा हो सकी। निःसन्देह भारतीय वीर ललनाओंका इतिहास अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादाकी रक्षाके लिए किये गये लोमहर्षक बलिदानोंसे परिपूर्ण है। भारतीय नारी अपने मान और शानकी रक्षामें कभी पीछे नहीं हटी है? उसके 'जौहर' की खूनी और रंगीन कहानियां, उसके त्याग और बलिदान दोनोंकी अमिट और अमर निशानियां हैं! अतः किसी भी प्रकार

का भय-प्रदर्शन या जेलकी यातनाओंका वर्णन दक्षिण अफ्रीका की भारतीय नारियोंके लिए अपनी प्रतिष्ठाके सामने तुच्छ और नगण्य सा लगा। इसलिए गांधीजीकी शकाओंको शात करते हुए उन्होंने समेत स्वरसे निर्भीकता पूर्वक सहर्ष 'सत्याग्रह सग्राम' में कूदने की घोषणा करदी।

संग्राम प्रारम्भ—

स्त्रियोकी इस घोषणा के साथ सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ कर दिया गया। इस सग्राममे भाग लेनेवाली अधिकतर स्त्रिया तामिल थीं। स्त्रियोंका सत्याग्रह परवानोंके अवज्ञा आन्दोलनके ही रूपमे शुरू किया गया! अतः नेटालके सत्याग्रहियोंकी भांति स्त्री-सत्याग्रहियोने भी विना परवानेके नेटालसे ट्रान्सवाल मे घुसनेका ऐलान कर दिया! इस ऐलान या घोषणाके अनुसार ११ सत्याग्रहणियोंका एक जत्था विना परवानोके ट्रान्सवालकी सीमाओंमे प्रवेश भी कर गया। पर सत्याग्रहके इस रूपको देखकर सरकार उत्तेजित होनेके वजाय, ठिठक सी गई। स्त्रियोंसे झगडा मोल लेना उसे प्रत्यक्षतः झंझट मोल लेनेके समान प्रतीत हुआ। फलत. सरकारने इन विना परवानेके घुसनेवाली स्त्रियोके प्रति निष्क्रियता और उदासीनताकी नीति-वरतनेमे ही अपना कल्याण समझा।

सत्याग्रहिणियोंने जव सरकारको परवानोंके वारेमे अन्यमनसक देखा तो उन्होंने भी अव दूसरा पैंतरा वदला। उनका लक्ष ही इस समय सरकारको उत्तेजित कर सत्याग्रहके मैदानमे खींच लाना था। अतः स्त्रियोने परवानोंके द्वन्दको छोडकर

सरकारके कानूनके विरुद्ध व्यापारका लाइसेन्स (प्रमाणपत्र) प्राप्त किये विना फेरी लगाकर माल वेचना शुरू कर दिया। लेकिन अवज्ञा पर अवज्ञा होते देखकर भी सरकार अपनी तलवारको म्यानसे न निकाल सकी। सरकार जानती थी कि यदि उसने स्त्रियो पर वार किया तो उससे दक्षिण अफ्रीकामे ही नहीं, भारतमे भी हड़कम्प मच उठेगा। सरकार अपनी अनैतिकताको भी खूब समझती थी ओर मन ही मन यह महसूस करती थी कि इस सत्याग्रहके लिए उनका अन्यायी कानून ही जिम्मेदार है, न कि उसमे भाग लेने वाली स्त्रिया। अतः इन्हीं सब कारणोंसे सरकार कमजोर पड रही थी और स्त्रियों पर कानूनका आघात करने तथा उन्हे जेल भेजनेसे हिचकिचा रही थी। उसकी साफ इच्छा थी कि स्त्रियोंसे जहाँतक हो सके बचकर ही चला जाय।

सरकारकी इस उदासीनताकी नीतिको देखकर सत्याग्रहके सेनापति गाधीजीको भी चिन्ता होने लगी। उन्हें भय हुआ कि यदि सरकार स्त्रियोके सत्याग्रहके प्रति इसी प्रकार अन्यमनस्क बनी रही तो यह सत्याग्रह ही ठप हो जायगा। अतः सेनापति गाधी भी अब नवीन युक्तिसे काम लेनेकी सोचने लगे। इस अभिप्रायसे वे तुरन्त फोनिक्स पहुँचे और निश्चय किया कि वहासे सरकारको विना मालूम कराये चुपचाप सत्याग्रहिणियोंकी एक और सैनिक टुकडी ट्रान्सवालकी सीमाका अतिक्रमण करनेके लिए भेज दी जाय।

इस निश्चयपर पहुचकर गाधीजीने अपना यह इरादा तत्काल फोनिक्सके आश्रमवासी स्त्री और पुरुषोंके सामने ला रखा।

लेकिन स्त्रियोंको उन्होने इस बार भी पहले जेलकी सम्पूर्ण विभिषिकाओसे अवगत कराया और तब गंभीरतापूर्वक सोचने-विचारनेके बाद ही उन्हे सत्याग्रही 'सैनिक टुकड़ी'मे शामिल होनेका आदेश दिया। पर आश्रमकी ये स्त्रिया भी पुरुषोसे किसी प्रकार बलिदान और त्यागमे पीछे हटनेवाली न थीं, जो जेलकी विभीषिकासे घबरा उठतीं। वे सबकी सब वीर थी, निर्भीक थी, और इसलिए किसी प्रकारकी यातना व कष्टोका भय उन्हें कर्म-पथपर अग्रसर होनेसे रोक न सकता था। फलतः फोनिक्सकी अनेक स्त्रिया तुरन्त ही आक्रमणकारी सत्याग्रहिणियोकी टोलीमे भर्ती हो गई। वीर सत्याग्रहिणियोकी इस टोलीमें गाधीजीकी पत्नी कस्तूर बा भी एक थीं।

इस सत्याग्रहके बारे गाधीजीका यह निर्देश था कि फोनिक्सके वीर सत्याग्रहणियोकी टोली जब ट्रान्सवालकी सीमापर आक्रमण करे, तो उसी समय ट्रान्सवालमे सत्याग्रह करनेवाली स्त्रियोंकी टोली भी जो अबतक गिरफ्तार न की गई थी, नैटालकी सीमा को पार करजावे, और तिसपर भी यदि उन्हे पकड़ा न जाय तो वे सीधे कोयलेकी खानोके केन्द्र न्यूकासिलको चली जावे और वहाँ पर भारतीय मजदूरोका सगठन कर उन्हे ३ पौंडके टैक्सके विरोधमे हडताल करनेके लिए प्रेरित करें।

फलतः गाधीजीके निर्देश और निश्चयोके अनुसार फोनिक्स से कस्तूरबा समेत १६ प्रतिभाशाली और दृढ-प्रतिज्ञ सत्याग्रहिणी एव सत्याग्रहियोकी एक टोलीने सरकारको सूचित किये बिना ट्रान्सवालकी सीमाओंको लाघ दिया।[1] सत्याग्रही टोलीके इस

1 Ibid p 427

अनपेक्षित आक्रमणसे सरकार क्रुद्ध हो उठी और फौरन ही उसने सबको गिरफ्तार कर लिया। २३ सितम्बर १९१३ को गिरफ्तार सत्याग्रहियों पर बाकायदा मुकदमा भी चला और सबको कठिन परिश्रमके साथ तीन-तीन महीनेकी कैदकी सजा सुनाकर मारित्ज-बर्ग (Mari Zburg) जेलमें भेज दिया गया।[1]

यद्यपि इस तरफ तो सरकारने यह कड़ाईसे दिखलाई, लेकिन दूसरी तरफ ट्रान्सवालकी सत्याग्रहिणियोंकी टोलीके प्रति उसने उसी पहली वाली अन्यमनसकतासे काम लिया, और उनके नेटालमें घुस आनेपर भी कोई काररवाई न की। अत. अपने सेनापति गांधीके निर्देशानुसार ट्रान्सवालसे आई हुई यह टोली मजदूरोंमें काम करनेके लिए सीधे न्यूकासिल जा पहुंची।

हड़ताल हो गई--

न्यूकासलमें पहुंचकर योजनानुसार सत्याग्रहिणियोंने मजदूरों को संगठित करनेका कार्य आरम्भ कर दिया। उन्होंने सभाएँ करके मजदूरोंको उनकी गिरी हुई अवस्थाके प्रति सजग किया। मजदूरों पर लादे गये ३ पौंडके कर की व्याख्या करते हुए सत्या-ग्रहिणियोंने उसे सरकारका एक घृणित और अमानुषिक कृत सिद्ध किया। अत उन्होंने मजदूरोंको ललकारा कि ऐसे कृत्योंको सहन करना अधर्म है और ऐसे पाप तथा गुलामीका जीवन बितानेसे तो मर जाना ही कहीं अच्छा है।

स्त्रियोंकी इस ओज भरी ललकारने मजदूरोंकी शिथिल नाड़ियोंमें भी खून संचारित कर दिया। उन्हें मालूम पड़ा कि

---

1 Ibid pp 427-428

वे पतनकी खाईमे गिरे हुए है और स्त्रीयोके रूपमे उनकी भाग्य लक्ष्मी ही उन्हें ऊपर खीचे लानेको वहाॅ आई है। अतः इस अवसरको ईश्वरीय प्रदत्त समझकर वे ललनाओकी ललकार पर करने वा मरनेको प्रस्तुत हो उठे, और ३ पौडके करके विरोधमे उन्होने तुरन्त हडताल आरम्भ भी कर दी। इस हडतालने अब सरकारको बुरी तरहसे चौका दिया। अब तक तो सरकार यह समझ रही थी कि ये स्त्रियाॅ है-अबला और निर्बल, इसलिए थक-थका कर स्वयं शिथिल पड जांयगी, और सारा झगडा योही शात हो जायगा। लेकिन हडतालके रूपमे उनका ताडव देखकर अब सरकारको मालूम पड़ा कि ऐसा सोचना उनकी भूल थी। फलतः अपनी भूलको सुधारते हुए सरकारने सत्याग्रहणियोके जत्थेको तुरन्त गिरफ्तार कर लिया, और फोनिक्सकी टोलीकी भाॅति उन्हे भी २१ अक्तूबर १९१३ को तीन-तीन महीनेका सपरिश्रम कारावासकी सजा देकर मारिजबर्ग जेलमे भेज दिया।[1]

स्त्रियोकी अनुपम वीरता और त्याग--

स्त्रियोने निःसन्देह, इस सत्याग्रहमे सच्चे सत्याग्रहियोके धर्मका पालन करते हुए अपूर्व आत्म बलिदान, त्याग और तपस्याका परिचय दिया। जो सत्य और आग्रहका मार्ग उन्होने पकडा था उसपर वे अन्त तक अग्रसर होकर बढते रहे, चलते रहे। उनके सामने कठिनाईयाॅ अनेक आई लेकिन विचलित होनेका किसीने नाम न लिया। गाधीजीने उनकी इस अद्भुत

1—Ibid p 429

वीरताकी सराहना करते हुए उसे 'अवर्णातीत' बतलाया है। इन सत्याग्रहिणियोंके सबंधमे उन्होंने लिखा है—

"इन बहिनोंका आत्मबलिदान अत्यन्त विमल था। वे कानूनी दॉव-पेचसे अनभिज्ञ थीं और बहुतोंको अपने मातृ-मुल्कका परिचय तक न था—उनके देश प्रेमका एकमात्र आधार 'विश्वास' था। उनमेसे लगभग सभी अपढ थी और समाचार पत्र तक न पढ सकती थीं। लेकिन वे इतना समझती थीं कि भारतीयोंकी प्रतिष्ठा पर विषम आघात किया जा रहा है। उनकी जेल-यात्रा अन्तस्तलसे उठने वाले दर्द और प्रार्थना की एक पुकार थी—आत्म-बलिदानका वह शुचितम स्वरूप था।"[1]

निःसन्देह इस सत्याग्रहमे अनेक स्त्रियोंने घोर कष्ट सहन किया, और वलीयामा जैसी वीर षोडशीने तो सत्याग्रहकी बलि-वेदी पर अपने प्राण भी निछावर कर दिये थे। उसने उल्लासमे भरकर एक बार कहा था—अपनी मातृ-भूमिके लिए मरना कौन न चाहेगा? और जैसा उसने कहा था, उसे पूरा करके भी दिखलाया। देश पर निछावर होनेवाली वलीयामाने सच-मुच अपनी कभी भी चिन्ता न की। देशके सिवा अपना उसके लिए कुछ था ही नहीं। इसलिए गांधीजीने लिखा है कि वलीयामा जैसी नारी-रत्न दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह सग्राम की एक अपूर्व और पवित्र ज्योति थी, जो इतिहासमे हमेशा अमर रहेगी।

स्त्रियोंकी इस अपूर्व वीरताका उस समय श्रीमती पोलकने भी 'इण्डियन ओपिनियन' मे बहुत ही सुन्दर और पूर्ण विवरण

---

1 Ibid pp 430-432,

प्रकाशित किया था। श्रीमती पोलकने लिखा था "रस्किनने कहा है—स्त्रियोंके कर्त्तव्य दोहरे होते है, एक तो गृहस्तीके प्रति और दूसरा राज्यके प्रति। दक्षिण अफ्रीकाकी शायद ही किसी भारतीय स्त्रीने रस्किनका यह वाक्य पढा हो। परन्तु सत्य वात अनेक स्थानो पर अनेक प्रकारसे स्वतः अपना प्रकाश करती है। दक्षिण अफ्रीकाकी भारतीय स्त्रियोंने भी मानों जान लिया था कि रस्किनका कथन नारी-जीवनका एक सत्य है। उनके कार्य्योंसे भी यह वात प्रमाणित हो गई कि उन्होंने वास्तवमे इस सिद्धान्तके अनुसार ही अपने कर्त्तव्यके गुरुत्वका पूर्ण पालन किया है। उन स्त्रियोको सार्वजनिक जीवनकी कोई शिक्षा नहीं मिली थी, वे भारतीय स्त्रियोंकी तरह परदेमे रहनेवाली थीं, समाज शास्त्रका वे नाम भी नहीं जानती थीं, वे विशेपतया मजदूरोंकी स्त्रियॉ, माताए और कन्याए थीं, पर उनमे धैर्य था और कर्त्तव्य पालन तथा सेवा धर्मको वे अच्छी तरहसे जानती थीं। मौका पडने पर देशके प्रति अपने कर्त्तव्यका उन्होंने पूर्ण पालन किया और ऐसी वीरता एंव दृढताके साथ अपने देशकी सेवाकी, जो केवल उन्हींसे सभव थी।

पाश्चात्य प्रदेशके लोगो का यह ख्याल रहा है कि परदेमे रहनेवाली भारतीय स्त्रिया विल्कुल अवला होती है, उनके विचार भी प्रशस्त नहीं हुआ करते, और सार्वजनिक कार्योंमे तो उनका कोई भी अनुराग वा सम्पर्क नहीं हुआ करता। लेकिन दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय नारी-आन्दोलनने अफ्रीका और यूरोपके गोरांगो की आंखे खोल डालीं। उन्हे आश्चर्य हो रहा था कि जिन्हे वे अवला समझे वैठे थे, वे ही भारतीय स्त्रिया—जिनमेसे कुछका

गोदमे फूलसे बच्चे थे, कुछ का शीघ्र ही प्रसव होने वाला था, और कुछ बिलकुल युवती थीं, निधड़क और निर्भय होकर घर से निकल-निकल कर सत्याग्रहकी हर प्रकारकी कठिनाइया सहनेके लिए प्रस्तुत हो उसमे सम्मिलित होती जाती हैं। नि स-न्देह यूरोपियनोंके लिए यह एक नया अनुभव था। सत्याग्रहि-णियोंको इस अनपेक्षित वीरतासे खुश होकर उनकी प्रशसामे गाधीजीने लिखा है—"नेटालसे जो स्त्रिया आई थीं, वे सब प्रतिष्ठित और भले घरोंकी थीं। वे पैदल चलकर वालक्रस्ट तक पहुची थीं। यहा पर वे पकडी गयीं, और सैकडोंकी संख्यामे तीन-तीन महीनेकी कडी सजा भुगतनेके लिए जेल भेज दी गई थीं। ट्रान्सवालसे आनेवाली स्त्रिया रास्तेमे खानोंसे होती हुई और सभाएँ करती आई थीं। सभाओंमे वे पुरुषों को उपदेश करतीं थीं कि तुम लोग काम करना छोड दो और गुलामों की तरह जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना स्वीकार करो। इन स्त्रियोंके कहनेसे हजारों पुरुषो ने हडताल कर दी थी। मेरा तो यह विचार है कि यदि आरम्भमे ही ये वीर स्त्रिया इस प्रकार कार्य न करतीं तो जाति और देशकी मर्यादा की रक्षाके लिए जो आश्चर्यजनक कार्य हुआ है, वह कदापि न हो सकता"।

हडताल और गाधीजी—

अस्तु, जैसा कि ऊपर कह आए है, स्त्रियोंके प्रयत्नसे मज-दूरोंने हडताल शुरु करदी थी, अतः जब स्त्रिया पकडली गई तो हडतालने और भी उग्ररूप धारण कर लिया। इस हडताल की खबर तभी तार द्वारा तुरन्त गाधीजी को भी भेज दी गई थी। उन

लिये गाधीजी दौडे दौडे फोनिक्स से जल्दी ही हडतालके केन्द्र नयूयार्क मे चले आये थे।

न्यूकासल पहुंचने पर गाधीजीको बहुत ही विकट स्थितिका सामना करना पडा। खानोंमे काम करने वाले मजदूरोंके निजी घर द्वार कुछ न था। वे अपने मालिकोंके बनाये घरोमे ही रहा करते थे। लेकिन इस समय हड़ताल करदेनेसे उनके गोरे मालिको ने उन्हे घरोंसे निकाल बाहर कर दिया था। इन निकाले गये हडतालियोंकी सख्या दस-पाच भी न थी कि उनका आसानी से इन्तजाम कर लिया जाता। वे तो हजारोकी संख्यामे बेघर-बार किये गये थे। अतः गांधीजीके सामने सबसे पहले इन असख्य हड़तालियोंको सम्हालने का प्रश्न आ खड़ा हुआ। गाधी जी स्वय न्यूकासलमे गरीब लेकिन उच्च आदर्शों वाले लजारस नामके एक तामिल ईसाईके यहा टिके हुए थे। ऐसी स्थितिमे उनके लिए हजारो मजदूर और उनके बीवी बच्चोंके लिए घरका इन्तजाम करना कठिन था।

परन्तु इस कठिनाई के होते हुए भी वे हार मानकर हडताल बन्द करनेको तैयार न थे। मुसीबतो और कठिनाईयोंसे घबडा-कर पीछे हटना गाधी के दर्शनमे नहीं है। उन्होंने निश्चय किया कि कठिनाईके सामने झुकने और मुडनेके बजाय वे कठिनाईको ही मोडकर और झुका कर चैन लेगे। और उसका तरीका यही है कि मनुष्य कठिनाईयोंको हसकर सिर पर उठाकर चलनेको तैयार रहे,न कि उनके नीचे दबकर घुटने टेक देवे। फलतः गाधी जीने भी यही किया और मकानोंकी कठिनाईमे पड़े हड़तालियों को आदेश दिया कि "यात्रियोंकी भाति आसमान और खुली

जर्मानका आश्रय लो, और मालिकोंके मकानोंको त्याग दो ।"[1]
इस एकजादू भरे आदेशने मकानोंकी सारी समस्याही मानों हल कर डाला, गांधीजीका आदेश मिलते ही सारे मजदूर मालिकोंके मकानोंको तजकर अपने बीबी बच्चों समेत सत्याग्रहके यात्री बनकर खुले आकाशके नीचे चले आए। इस प्रकार घर द्वार छोड कर आनेवाले हडताली मजदूरोंकी संख्या लगभग ५ हजार थी। गांधीजीके सामने अब इस अपार सत्याग्रही सेना को खाने पिलानेकी समस्या पेश हुई, पर इसके लिए उन्हें अधिक चिन्ता न उठानी पडी क्योंकि वहाके भारतीय व्यापारियोंने खाने पकानेके सब बर्तन और सामान देकर सारी समस्याको हल कर दिया।

परन्तु इतनी सेनाको इस तरह निरतर ठाली रखकर दूसरे के भोजन और सामान पर कब तक सम्हाल कर रखा जा सकता था? अतः जरूरी था कि उनके झगडोंका जल्दी ही निपटारा कर लिया जावे। इस विचार के अनुसार गांधीजीने अब सामुहिक आन्दोलन चलानेका निश्चय किया। इस आन्दोलनका रूप भी बिना परवानोंके 'सीमा' का अतिक्रमण करना रखा गया। फलतः इस योजनाके अनुसार मजदूरोंकी सत्याग्रही 'शांति सेना' को अब ट्रान्सवालकी सीमामें प्रवेश करना था। न्यूकासलसे ट्रान्सवालकी सीमा लगभग ३६ मील पडती थी। पर गांधीजीके पास रेल द्वारा इतनी बडी सेनाको वहा पहुचाने के लिए धन तो था नहीं, इसलिए पदल ही 'अभि-यान' करनेका निश्चय किया गया।

---

1 Satyagraha In south Africa p 435

गांधी और कान्फ्रेन्स—

अभियानकी तैयारियां हो रही थीं कि इसी बीच डरबनसे मिलमालिकोंने गांधीजीको अपनी कान्फ्रेन्समें आनेका निमत्रण भेजा। गांधीजी इस निमंत्रणके बुलावे पर तुरन्त डरबन गये, और उनकी इच्छानुसार मिल मालिकोंसे मिले। किन्तु यह मिलना-जुलना किसी अर्थका न साबित हुआ। उनके साथमे मिल मालिकोंने व्यवहार तक अच्छा न किया। वस्तुतः गरीबोको अपने मुखका नेवला समझनेवाले गोरे अमीर गांधीजी पर रुष्ट हो रहे थे, क्योकि वे समझते थे कि हड़ताल कराकर गांधीने उनके आहार पर आघात पहुचाया है। मजदूरोको अपने आनन्दका जरिया भर समझनेवाले अमीर वास्तवमे मजदूरोके निजी सुख और सौख्यको समझनेमे असमर्थ थे। अतः मजदूरोकी भी मॉगे हुआ करती हैं, इससे वे वेखबर से थे। उन्हे तो केवल अपने काम और उसके हर्जेका खयाल था। इसलिए उन्होंने चिढकर और क्रुद्ध होकर गांधीजीको धमकी दी और आगाह किया कि यदि मजदूर जल्दी ही काम पर न लौटाये गये तो उन्हे भारी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा। लेकिन गांधी कच्ची मिट्टीके न वने थे जो इस धमकीसे तिड़क जाते। उन्होने मिल मालिकोकी इस धमकीका शान्त होकर गम्भीर वाणीमे इतना ही उत्तर दिया कि "किसी व्यक्तिका अपने मान और प्रतिष्ठाके खोनेसे वढकर और भला क्या नुकसान हो सकता है? मुझे वहुत संतोष है कि मजदूर भी इस तथ्य को पहुच चुके है।"[1] इस अनपेक्षित प्रत्युत्तरको पाकर मिलमालिक सोचमे पड़ गये कि इसका क्या अर्थ हो सकता है, और गान्धी उन्हे इसी चिन्तामे

1 Ibid pp 443-444

डूबते-उतराते छोड़कर तुरन्त डरबनसे न्यूकासल लौट आये।

महान अभियान—

न्यूकासलमें मजदूरोंका ताता बढ़ता ही जा रहा था! गांधी जीने वहा पहुंचते ही सबकी एक सभा बुलाकर मिल मालिकोंसे हुई बातचीत और समझौतेके भग होनेका पूरा ब्योरा उन्हें बतला दिया। इसका जो कुपरिणाम होनेको था, उस पर भी उन्होंने समुचित प्रकाश डाला! अन्तमें उन्होंने मजदूरोंको अपने मानवीय अधिकारोंके लिए तैयार रहनेको अनुप्रेरित किया, लेकिन साथही उन्हें यह भी स्पष्टतया जतला दिया कि अपनी सामर्थ्यको भली-भाति जान और समझ कर ही वे आगेका माग लें। इस लिए गाधीजीने प्रत्येकको कड़ी चेतावनी दी कि जो व्यक्ति अपने को कमजोर पाता हो, कठिनाईयोंको उठानेमें घबराता हो, वह सत्याग्रह प्रारम्भ होनेसे पूर्वही उससे अलग हो जाय! किन्तु मजदूरोंमें एक भी ऐसा न निकला जो जीवनके सघर्षमें पड़नेसे घबरा उठा हो। निःसन्देह गाधीकी वाणीने उनमें आत्मबल और आत्मगौरव जागृत कर मानवोचित साहस पैदा कर दिया था। इसीलिए सत्याग्रहके विराट-रूपका अवलोकन करनेके बादभी वे। दृढ और गभीर बने रहे। वे जरूर गरीब थे और अपढ थे, पर 'मुक्ति' के लिए प्यासे हो रहे थे! अतः सभी मजदूरोंने एकरूप होकर दृढ सकल्प किया कि वे गुलामीकी जजीरको हिलाकर और झटका कर ही चैन लेंगे।

ऐसी शक्तिशाली सेनाको पाकर गाधीजीके लिए अब सिवाय कूच करनेके कुछ सोचनेको न रह गया था। फलतः उन्होंने ट्रान्सवालकी सीमाको लाघनेके हेतु २८ अक्तूबर १९१३ का दिन

'अभियान' के लिए घोषित कर दिया। घोषणाके अनुसार नियत तिथिको गाधीजीके नेतृत्व मे मजदूर सत्याग्रहियो की विशाल सैना ट्रान्सवालकी ओर अग्रसर हुई और चार्ल्स टॉउनमें उसने अपना पहला पड़ाव डाला। मजदूरोंकी सत्याग्रही सैनामे इस समय कुल स्त्री, बच्चे और पुरुषोंको मिलाकर करीब ५ या ६ हजार व्यक्ति थे। अतः इतने अधिक लोगोंके लिए चार्ल्सटॉउन जैसे छोटेसे नगरमे मकानोका मिलना कठिन होने से स्त्री और बच्चोंके अलावा बाकी सबको नीले आसमानके तले खुली धरतीमे डेरा लगाना पड़ा। इस सैनाके अभियान और प्रथम पड़ावके बारेके समाचार गांधीजी के मित्रोको मालूम हो चुके थे, इसलिये उनके कुछ एक यूरोपियन और भारतीय साथी उन्हें सैनाके इन्तजाम आदिमे मदद पहुचानेके लिए पहलेसे ही चार्ल्सटॉउन मे आ पहुँचे थे।

सत्याग्रही सैनाकी सख्या भी रोज बढती जाती थी, क्योंकि कोयलेकी खानोंसे गिरते पडते और रास्तेकी अनेक कठिनाइयोंको झेलते-उठाते मजदूर स्त्री और पुरुषोका आना जारी ही था। पर इस प्रवाह और बाह्य हलचलको छोडकर चारो ओर शात गभीरता ही नजर आती थी। सब मजदूर आनेवाले भविष्यकी प्रतीक्षामे मौन और तल्लीन से थे। उनकी गभीर और शात मुद्रासे ऐसा प्रतीत होता था कि वे किसी धावे पर जानेवाले सैनिक नहीं, वरन् तापसी और तीर्थ यात्री है, जो भगवानकी खोजमे विरक्त होकर घरसे निकल पड़े है। अतः चार्ल्सटॉउनमे डेरा लगाकर वे शात-गंभीरताके साथ निर्द्वन्द्व और निर्भय सा होकर पडे थे। वे जानते थे कि वे ट्रान्सवाल

सत्याग्रह के सेनापति [दक्षिण अफ्रीका]
[सन १९१३]

[पृष्ठ २७०]

सरकारसे भिडने जा रहे हैं, पर तब भी उनके चेहरों पर भय और चिन्ताके कोई लक्षण न दिखाई पडते थे। उनका प्रकाश, उनका उल्लास और उनका पथप्रदर्शक तथा नेता गांधी जब उनके साथमें था, उन्हें भय और चिन्ता ही क्या थी ?

नवम्बर आया। गांधीजीने सरकारको पुनःचेतावनीके तौरपर एक पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने लिखा था कि 'मजदूर सत्याग्रहियों की सैना ट्रान्सवालमें बसनेके इरादेसे नहीं आ रही है, और उनका अभिप्राय केवल अपने ऊपर होनेवाली अनीतियोंका विरोध करना है। पर यदि सरकार ३ पौंडके करको हटा देवे तो हडताल खतम करदी जायगी और मजदूर सैना कामपर लौट आवेगी। लेकिन यदि कर हटानेसे इनकार किया गया तो सत्याग्रहियोंकी 'शांति सैना'—ट्रान्सवालकी सीमाओंका अतिक्रमण कर देगी। इसलिए सरकार यदि चाहे तो उन्हें चार्ल्सटॉउनमें ही गिरफ्तार कर सकती है।" परन्तु इस पत्रका सरकारने अहंकारमें आकर उत्तर तक देना उचित न समझा। उसका शायद यह खयाल था कि दीन-हीन मजदूर ताकतवर गोरी शाहीका मुकावला ही क्या कर सकेंगे ? यह तो उन्हें बाद में मालूम हुआ कि भारतके अहिंसक गेरिबाल्डी गांधी[1] और उसकी गरीब किन्तु तापसी 'शांति सैना' अपने आत्मबलसे

---

[1] गेरिबाल्डी इटलीके स्वातंत्र्य संग्रामका एक वीर योद्धा और नेता था। नेपोलिटन राजाओंसे उसने इटली को स्वतंत्र करानेमें आश्चर्यजनक कार्य किया था। १८६० में केवल एक हजार मामूली सैनिक साथियोंको लेकर उसने नेपोलिटन साम्राज्यकी अपार शक्तिका मुकाबला किया, और सफलतापूर्वक उन्हें दो युद्धोंमें हराकर सिसलीसे हट जानेको मजबूर कर दिया।

भालोंके नोक और वन्दुकोंके कुन्दोंको तोड मरोड़ सकती है, और अन्यायको सिर झुकानेके लिए मजबूर कर सकती है।

यूरोपियनो का क्रोध—

गाधीजीकी 'शाति सैना' के आक्रमणकी तैयारिया देखकर वोलक्रस्टके यूरोपियनोंका खून खौल उठा। वे क्रोधसे उन्मत्त होकर वढ-चढ के धमकिया देने लगे, और वहकमे यहा तक कह गये कि यदि भारतीयोंने ट्रान्सवालमे घुसनेका सचमुच प्रयास किया तो वे गोलियां चलाकर उन्हे रोकेंगे, पर आगे न वढने देंगे। यूरोपियनोकी जिस सभामे ये सव उग्रताएँ दिखाई जा रही थीं, उसमे गाधीजीके जरमन मित्र कैलनवक भी मौजूद थे। अतः उन्होने वहके हुए यूरोपियनोको सही रास्ते पर लाने की कोशिश करते हुए उन्हे यह समझाना चाहा कि "सत्याग्रही भारतीय-जन वीर पुरुष है। वे ट्रान्सवालमे वसनेको नही आ रहे हैं, वे तो केवल न्यायके विरुद्ध उनपर लगाये गये ३ पौडके टैक्सका विरोध करना चाहते हैं। वे तुम्हारी गोलियोंसे डरनेवाले भी नहीं है। वे पीछे न हटेंगे—गोलियोंका सामना करते हुए वे आगे वढते ही चलेंगे। इसलिये आपलोग सावधान हों और अत्याचार करनेसे हाथ रोकें।"[1] लेकिन क्या दुर्योधनि वृत्तिके यूरोपियनोंपर इस विदुर-उपदेशका कोई प्रभाव पड सका ? अत्याचारी, अन्यायी और निरंकुश सत्तावाले वस्तुतः जवतक अपने पशुवलकी निरर्थकताको प्रत्यक्ष नहीं देखलेते अकड़े ही रहते हैं। कृष्णने दुर्योधनको कितनी वार समझाया—किन्तु क्या वह माना था ?

---

1 Satyagraha In South Africa, pp. 457-59

जनरल स्मट्सको आखिरी चेतावनी —

जैसा कि कैलनबकने गोरोंकी सभामें उद्घोषित किया था, गांधीजी और उनकी सत्याग्रही सेनापर यूरोपियनोंकी धमकीका कोई असर न हो सका। वे दृढ़ थे और अभियानकी पूरी तैयारी कर चुके थे। यूरोपियनोंकी सभाके दो ही दिन बाद गांधीजीने जनरल स्मट्सके सेक्रेट्री द्वारा उसको फोनसे अन्तिम चेतावनी भिजवाई कि "मैं अभियानके लिए पूरा तैयार हो चुका हूँ। वोलक्रस्टके यूरोपियन क्रोधमें हैं, और संभव है, हमारे प्राणोंके लिए संकट भी उपस्थित करें। आशा है, जनरल भी ऐसी चीजको पसन्द न कर सकेंगे। यदि जनरल ३ पौंडके टैक्सको रद्द करदें तो मैं अभियानको रोक सकता हूँ, मैं कानूनको तोड़नेके हित ही तोड़ना नहीं चाहता, किन्तु उसके लिए मजबूर किया जा रहा हूँ।" किन्तु सद्भावनाओंसे पूर्ण इन बातोंको तुच्छ समझकर यूनियन सरकारका सेक्रेट्री तक सुननेको तैयार न था। इसलिए उसने उक्त संदेशको स्मट्स तक पहुंचाये बिना स्वयं ही गांधीजीको यह रूखा और अहंकारपूर्ण उत्तर भेजा कि 'जनरल स्मट्स तुमसे कुछ वास्ता नहीं रखना चाहते, इसलिए तुम्हें जो करना हो करो'[1]।"

अभियान आरम्भ —

उक्त सौजन्य रहित उत्तर गांधीजीको ५ नवम्बर १९१३ को प्राप्त हुआ था। यह उत्तर स्पष्टतः यूनियन सरकारकी तरफसे

---

1 Ibid p. 456

भारतीयोको एक चुनौती थी; जिसका स्पष्ट मतलब था कि बिना युद्ध लड़े सरकार कोई बात सुननेको तैयार नही है। अतः गाधी जो इस चुनौतीके लिए पहले ही से तैयार थे, युद्ध लडनेके लिए प्रस्तुत हो गये। पर सरकार और भारतीयोके बीचका यह युद्ध एक प्रेक्षकके लिए प्रत्यक्षतः देखनेमे हाथी और चीटीके बीचका एक युद्ध था। इस युद्धमे एक तरफ रौद्र और प्रबल गोरी सात्त थी, दूसरी तरफ निरीह और निहत्थी जनता। संक्षेपमे यह हिसा और अहिसाकी एक ऐसी अनोखी लडाई थी, जैसी दुनियाने पहले कभी न देखी होगी। अतः संसारकी आँखे गांधी और यूनियन सरकारके इस असामान्य संघर्षकी ओर आकृष्ट होकर उसके परिणामको देखनेके लिए उत्सुक हो उठीं।

युद्ध निश्चित हो जानेसे ६ नवम्बर १९१३ को प्रातः ६ बजकर ३० मिनटपर ईश्वरकी वन्दनाके साथ गाधीजीने अपनी 'शाति सैना' को, जिसमे २,०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियां और ५७ बच्चे थे, लेकर ट्रान्सवालकी ओर कूच कर दिया। दिनभर चलनेके पश्चात् सध्याको ५ बजे यह शाति सेना पल्मफोर्ड (Palmford) पहुची। योजनानुसार यह उनका पहला पडाव था। अतः रातको सारी सेनाने वही पर विश्राम किया।

गाधीजीकी पहली गिरफ्तारी —

रातको जब सारी सैना खा-पीकर निश्चित होकर सो रही थी, एक यूरोपियन पुलिस अफसर चोरकी भाति दबे पाव पडावमे आया और चुपकेसे गाधीजीको अलग बुलाकर उसने उन्हे गिरफ्तारीकी सूचना दी। इस सूचनाके पाते ही सैनाका

नेतृत्व अपने साथी श्री पी के नायडूके हाथोंमे सोंपकर गांधीजी गड़बड़ी फैलनेके भयसे विना अपनी सेनाको खबर किये चुप-चाप पुलिस अफसरके साथ हो लिए। बेचारी 'शांतिसेना इस समय निश्चिन्त होकर सो रही थी, इसलिए उसे सुबह्से पूर्व इस दुर्घटनाका पता भी न चल सका। सुबह् जब सेनाको अपने नेताके छीने जानेका समाचार मिला तो उनके दुःखका ठिकाना न था।

इधर गांधीजी गिरफ्तार होनेके बाद ७ नवम्बरको वोल्क्रस्ट की अदालतमे पेश किये गये। लेकिन अदालतने तुरन्त कोई काररवाई करनेके बजाय १४ ता० तकके लिए मुकदमा मुल्तवी कर दिया। इसपर गांधीजीने फिरसे मुकदमा पेश होनेके समय तकके लिए जमानत पर रिहाईकी अर्जी पेश करदी। अदालतने इस अर्जीको स्वीकार किया और ५० पौंडकी जमानत लेकर उन्हे रिहा कर दिया।

दूसरी गिरफ्तारी—

अदालतसे छूटते ही गांधीजी पुनः तुरन्त शांतिसेना में आ मिले। उनके इस आकस्मिक पुनर्मिलनसे अपने नेताके छिन जानेसे सैनिकोंके हृदयपर जो उदासी छा गयी थी, प्रफुल्लतामे विलीन हो गई। अपने नेताको अपने बीचमे देखकर सबके हृदय तरंगित हो उठे, और शिथिल हुआ जोशने फिर बल पकड़ लिया। इस प्रकार उमंगित और तरंगित होकर शांति सेनाका अभियान और तेजीसे आगे बढने लगा। सेनाके इस द्रुत अभियानसे सरकार चिन्तित हो उठी। इस प्रगतिके तल पर

सरकारको स्पष्टतः गांधीजी की छाया दिखाई दी, और इसलिये उनका मुक्त रहना उसे बहुत ही खतरनाक मालूम दिया। फलतः घबडायी हुई सरकारने ८ नवम्बरको ही (गांधीजीको रिहा हुए अभी मुश्किलसे एक ही दिन हुआ था) स्टैनडूटन (Standerton) मे गांधीजीको दुबारा गिरफ्तार कर अदालतके सामने ला खडा किया। लेकिन अदालतने इस बार भी उनका मामला २१ ता० तकके लिये मुल्तवी कर दिया, और ५० पौंडकी जमानत पर वे पुनः रिहा कर दिये गये। रिहा होनेपर गांधीजी पहलेकी भाँति तुरन्त फिर सत्याग्रही सैनामे आ मिले। पर इसी समय क्रुद्ध सरकारने श्री. पी के. नायडू सहित गांधीजीके ५ अन्य सााथियों और सहयोगियोंको गिरफ्तार कर जेलमे ठूँस दिया। सरकारके इस कृत्यसे स्पष्ट हो गया कि अब वह पूरी तरहसे उत्तेजित और चिन्तित हो उठी है और जिस किसी प्रकारसे शाति सैनाके बढ़ावको रोकनेके लिए उतावली हो चली है।

तीसरी गिरफ्तारी—

लेकिन सरकारके प्रहारोकी परवाह न कर शाति सैना गांधीजीके साथ निर्बाध गतिसे आगे बढती ही जाती थी। ९ नवम्बर को गाधीजी और उनकी सैना टीकवर्थमे आ पहुची। यहाँपर गाधीजीके अंग्रेज मित्र पोलक भी उनसे आ मिले। गांधीजीकी इच्छा हुईकि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थिति और उनके आन्दोलन पर प्रकाश डालनेके लिए तुरन्त ही पोलकको भारत भेजे, परन्तु परिस्थिति वश ऐसा न किया जा सका। दुर्भाग्यसे
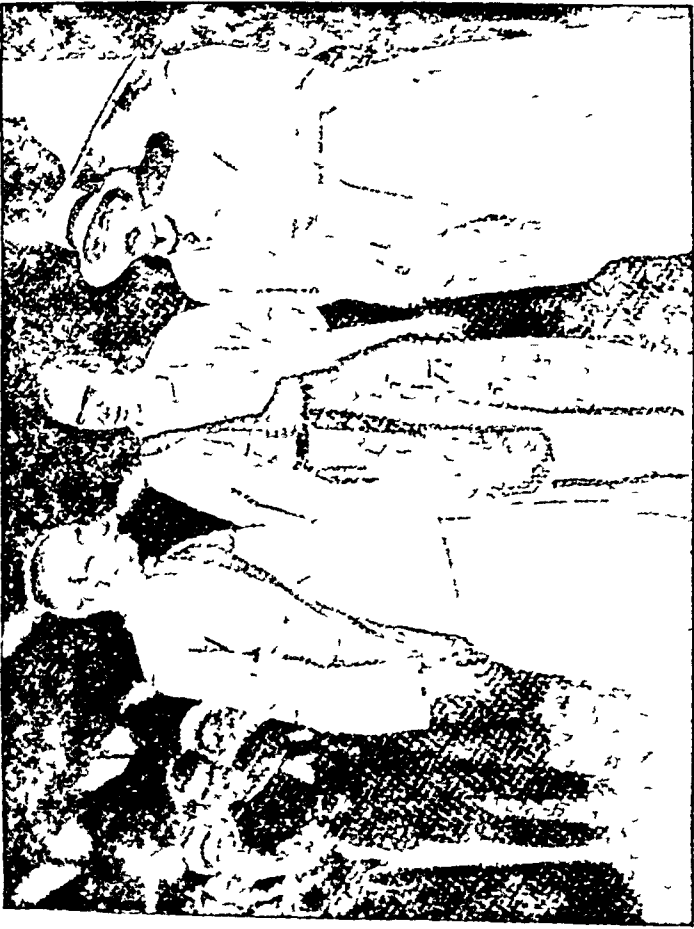
[सन् १९१४] दक्षिण अफ्रीका के अन्तिम सत्याग्रह युद्ध मे [पृष्ठ २७६]
गाधीजी के साथ श्री कॅलनबॅक, श्रीमती पोलक आदि

गाधीजी तीसरी वार उसी दिन, जब उनकी पोलकसे भेंट हुई थी, गिरफ्तार कर लिये गये। इस स्थितिके उत्पन्न हो जानेसे शाति सैनाके संचालन और नेतृत्वका भार पोलकके सिरपर चला आया, और इसलिये उन्हे तत्काल भारत जानेका विचार छोड देना पडा।

गाधीजीको सजा—

गाधीजी इस वार डन्डो (Dundee) के वारन्ट पर गिरफ्तार किये गये थे। अतः गिरफ्तार होने पर वे डन्डी ले जाये गये, और ११ नवम्वरको वहॉकी अदालतमे उनपर मुकदमा भी पेश हो गया। गाधीजी पर सरकार द्वारा यह जुर्म लगाया गया था कि उन्होंने मजदूरोको नैटाल छोड़नेके लिए उकसाया है। डन्डीकी अदालतने सरकारके इस दावेको स्वीकार किया, और विना कुछ अधिक सोचे विचारे गाधीजीको ९ महीनेका सपरिश्रम कारावास दण्ड देकर सींकचोंमे डाल दिया। सरकार यह देखकर खुश हो उठी कि ऑधीका सूत्राधार गाधी कठघरेमे फॅस गया है, और इसलिये अब आधीका वेग थम जायगा। लेकिन सरकार भूलमे थी। ऑधी तो चल चुकी थी, और अब गाधीको वन्द कर उसके रोकनेका प्रयास निष्फल था।

गाधीके पकड़े जाने और कैद होनेके वाद भी शाति सेनाका वढाव पूर्ववत् नियमित रूपसे जारी रहा। १० ता० नवम्वरको शाति सेना पोलकके नेतृत्वमे अग्रसर होती हुई टॉकवर्थसे सुवहको ग्रेनलिन्गस्टाड (Greylingstad) होती हुए वलफोर (BalFour) मे आ पहुची। इस वढावसे सरकार वहुत ही व्यग्र

हो उठी। वह किसी भी हालतमे अब इस सैनाको और आगे न सरकने देना चाहती थी। अतः मजदूरोंकी सैनाको गिरफ्तार करनेके लिए सरकारने पहले ही से इमीग्रेशन आफीसर चीमनीको पुलिस-दलके साथ वलफोर भेज रखा था। साथ ही सरकारने गिरफ्तार मजदूरोको नैटाल वापिस ले जानेके लिए तीन स्पेशल गाड़िया भी स्टेशन पर तैनात कर रखी थी। अतः मजदूर सैना ज्योंही बलफोर पहुची, पुलिस उन्हें गिरफ्तार करनेके लिए आगे वढी। लेकिन पुलिसकी इस काररवाईसे मजदूर सत्याग्रहियोंकी प्राकृतिक शातिको तजकर उग्र हो उठे। उन्होने स्पष्ट रूपसे यह जतला दिया कि जब तक गांधी स्वयं वहां आकर उन्हें अनुमति न देगे, वे गिरफ्तार न होगे। सरकारी अफसर सत्याग्रहियोंके साथ किसी प्रकारके संघर्षकी आशका न कर अपने साथ वहुत कम पुलिस लेकर आये थे। अतः स्थिति उग्र हो जानेसे वे बड़ी कठिनाईमे आ पड़े। किन्तु अफसरोको अधिक देर तक यह परेशानी न उठानी पडी, क्योंकि मजदूर सैनाके नेता पोलक और कच्छलिया सेठने अन्तमे मजदूरोको सत्याग्रहियोंके आदर्श और कर्त्तव्य पर चलते हुए गिरफ्तार होने और जेल जाने के लिए तैयार कर लिया। फलतः सरकारी अफसरोंको अब मजदूरोके साथ कोई कठिनाई न उठानी पडी, और सरलतासे सारी शाति सैनाको गिरफ्तार कर वे नेटाल ले चले। सेनाके इस प्रकार गिरफ्तार होनेके कुछ ही समय वाद सरकारने गाधीजीके परम भक्त और सहयोगी श्री पोलक तथा कैलनबकको भी गिरफ्तार कर वोलक्रस्ट जेलमे डाल दिया।

तीनों साथी एक साथ--

डन्डीके मामलेके बाद सरकारने गांधीजी पर इस बातको लेकर कि उन्होंने अनधिकारी व्यक्तियोंको ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेमें सहयोग दिया है, एक और मामला खड़ा कर दिया। अतः इस मामलेको लेकर सरकारने उनपर वोलक्रस्टकी अदालतमें एक और मुकदमा दायर किया। फलतः डन्डीके मुकदमेके दो दिन बाद ही १३ ता० को गांधीजी वोलक्रस्ट ले जाये गये, और १४ ता० को मुकदमेकी सुनवाईके लिए उन्हें वहां की अदालतमें हाजिर किया गया। सरकारकी मन्शाके अनुसार सरकारकी इस अदालतने गांधीजी पर आरोपित अपराधको सही स्वीकार कर उन्हें तीन महीनेकी सख्त कैदकी सजा दे डाली।

गांधीजीके अनन्य साथी कैलेनबक और पोलक पर भी १५ और १७ नवम्बरको इसी अदालत में हड़तालियोंको मदद पहुंचानेके अपराधमें मुकदमा चला और इन दोनोंको भी तीन-तीन महीनेकी सख्त कैदकी सजा दे दी गयी।

इस प्रकार तीनों साथी बन्दी हुए और तीनों एक ही साथ वालक्रस्ट जेलमें रखे गये। किन्तु सरकार तीनों मित्रोंका अधिक दिनों तक एक साथ रहना बरदास्त न कर सकी, और इसलिए जल्दी ही तीनोंको तीन अलग जेलोंमें कर दिया गया। गांधीजी को औरजियाकी जेलमें रखा गया, कैलनबक प्रिटोरिया जेल भेजे गये, और पोलक जरम्सिटन जेलमें डाल दिये गये।[1]

1 1.Ibid pp. 473-474

मजदूर सत्याग्रहियो पर अमानुषिक अत्याचार——

गांधीजी आदि नेताओंको जेलमे ठूंसनेके बाद निश्चिन्त होकर सरकार मजदूरोंके साथ मनमानासा बर्ताव करने लगी। मजदूरोंको वलफोरमें गिरफ्तार करनेके बाद उन्हे घसीट कर नैटाल ले जाया गया, और वहॉपर खानोके केन्द्रमे उन्हे बन्दी बनाकर रखा गया। यहॉ पर उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया गया जैसा प्राचीन समयमें रोममे गुलामोंके साथ किया जाता था। सरकार हर किसी तरहसे मजदूरोंको खानोंपर काम करनेके लिए मजबूर करना चाहती थी। लेकिन वीर सत्याग्रही मजदूरोंने काम करनेके लिए हाथ उठानेसे साफ इन्कार कर दिया था। वे अब जागरूक हो चुके थे, इसलिए गुलाम बनकर जीवन-यापन करनेको कतई तैयार न थे। परिणामतः इस असहयोगसे खीजकर सरकारने उनको अनेक अमानुषिक तरीकोसे पीडित करना शुरू कर दिया। उन बेचारे निहत्थे मजदूरोकी पीठपर कोड़े बरसाये गये, उन्हे जितनी कठोरतासे हो सका पीटा और मारा गया, और आत्मिक यन्त्रणा पहुचानेके लिए उन्हे भद्दीसे भद्दी गालिया भी दी गयीं। किन्तु इन सब अत्याचारो और पीडाओं-को वीर 'शातिसेना' शातिके साथ बरदाश्त करती चली गयी। निःसन्देह गाधीजीके सत्याग्रहके सत्य और अहिसाके सिद्धान्तको वे हृदयगमकर चुके थे, और इस बातको पूरी तरहसे समझते थे कि उनका कल्याण सब कुछ 'सहने' मे ही है। और सचमुच मजदूरोकी यह सहनशीलता बड़ी ही प्रभावोत्पादक साबित हुई। नेटालके उत्तरी और दक्षिणी किनारोंकी खानोमे काम करनेवाले भारतीय मजदूर, जो अभी तक सत्याग्रहमे शामिल न हुए थे.

अपने न्यूकासलके निरीह और शांत मजदूर भाइयोंपर ऐसा अत्याचार होता देख बिगड़ उठे और फौरन काम बन्द कर नृशंस सरकारके विरुद्ध सत्याग्रहमे कूद पड़े।

मजदूरोंकी इस बढती हुई धृष्टताको देखकर सरकार अब ओर भी आग बनकर भभक उठी। मजदूर सत्याग्रहियोंको दबाने और बलपूर्वक उन्हें काम पर लगानेके लिए सरकारने अब सशस्त्र घुड़सवार पुलिससे काम लिया, लेकिन इससे भी कोई फल न निकला। फौज और पुलिससे जरा भी चिन्तितन होकर सत्याग्रही अपने असहयोग पर डटे ही रहे और अड़े ही रहे।

सरकारने क्रोधसे उन्मत्त होकर तब गोलियाँ चलवायीं, लेकिन 'गोलियाँ' भी सत्याग्रहियोंको झुकानेमे असमर्थ साबित हुईं। क्योंकि मरनेका उन्हें भय ही न रह गया था, और झुकनेके लिए वे तैयार न थे। पर सरकारका अत्याचार तब भी रुकनेका नाम न लेता था।

भारत मे प्रतिध्वनि--

गोरीशाहीके इन अत्याचारोंकी प्रतिध्वनि भारत भी पहुची। गोखले भारतीय मजदूरो पर होनेवाले इन अत्याचारोंकी दारुण कथाओंको सुन सुनकर क्षुब्ध हो उठे। उनके साथ सपूर्ण भारत भी रोप और पीड़ासे कराह उठा। फलतः भारतमे सर्वत्र सभा-सोसाइटियों और समाचार पत्रोंमे गोरे अत्याचारोंकी निन्दा और भर्त्सनाकी जाने लगी। हिन्दुस्तानके तत्कालीन वाइसराय हार्डिंज तकका खून गोरोंके उक्त अत्याचारोंकी कहानी सुनकर खौल उठा। १९१३ दिसम्बरको क्रुद्ध वाइसराय

ने मद्रासकी एक सार्वजनिक सभामें भाषण करते हुए दक्षिण अफ्रीकाके सरकारकी कडी आलोचनाकी और मजदूरो पर होनेवाले अत्याचारो पर क्षोभ तथा क्रोध प्रकट किया। नि सन्देह भारतकी इस प्रतिक्रियाका दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय आन्दोलन पर बहुत ही अच्छा असर पड़ा, और दूसरी तरफ गोरी सरकारकी अनीतिका भी सारी दुनियामें भंडा-फोड़ होगया।

भारतीयोकी दृढता और सरकारका झुकना--

इधर गोरी सरकार जितना बढकर और तीव्र होकर अत्याचार करती जाती थी भारतीय मजदूर सत्याग्रही भी उतनी ही दृढता और शक्तिके साथ उनका सामना करते जाते थे। न्यूकासलमे सरकारने जो आग भड़काई थी, उसकी चिनगारियोसे अब फोनिक्स भी भभक उठा था। फोनिक्स नैटालके उत्तरी तट के खानोंमे काम करनेवाले मजदूरोंका केन्द्र था! पर सरकार इस समय चौकन्नी हो रही थी, इसलिए फोनिक्सके उठते हुए विप्लव पर प्रारम्भमें ही उसकी क्रोधित निगाहें जा पडी, और उसने चुन-चुन कर वहाँके तमाम नेताओंको तुरन्त गिरफ्तार कर लिया। अपनी घबराहट और उत्तेजनामें सरकार अपराधी और गैर अपराधीका अतर तक भुला चुकी थी, और इसलिए बिना किसी कारणके उसने इण्डियन ओपीनियनके अंगरेजी भागके सम्पादक वेस्टको भी गिरफ्तार कर जेलमे डाल दिया। इन सब नेताओके गिरफ्तार हो जानेसे सत्याग्रहियोको सहायता पहुंचाने और मार्ग बतानेके लिए अब कोई भी नेता बाहर न रह गया था। और इस इच्छासे ही सरकारने नेताओंको सीकचोंमे डाला भी था। पर नेताओंसे विलग होकर अकेले पड जाने पर भी जागरूक

मजदूर निडर होकर अडिग बने रहे। वे किसी भी हालतमें सरकारकी कदम बोशीके लिए झुकनेको तैयार न थे। सरकार यह देख सोचमें पड गई। उसे सूझ ही नहीं पड रहा था कि क्या करे, क्या न करे? वह अब महसूस करने लगी थी कि शस्त्रोंके प्रहार इन निहत्थोंकी पीठ पर जैसे बेअसर हो जाते हैं।

भारतकी निगाहें भी इस समय दक्षिण अफ्रीका पर लगी हुई थीं। अतः वहाँके अत्याचारोंकी खबरसे चिन्तित होकर गोखलेने सी एफ ऐन्ड्रूजको तुरन्त दक्षिण अफ्रीका जाकर सत्याग्रहियोंको सहायता पहुचानेका आग्रह किया। भारतके दीनजनोंके बन्धु ऐन्ड्रूजने बड़ी प्रसन्नताके साथ इस पुनीत कार्यका भार अपने ऊपर लिया और तुरन्त अपने मित्र पिटर्सन के साथ दक्षिण अफ्रीकाके लिए चल पडे।

लेकिन इसी बीच सरकार भी अपने दमन और अत्याचारोंसे खुद ही थक कर और परेशान होकर समझौताकी राह ढूंढने लगी थी। अतः भारतीयोंको शांत करनेके लिए जनरल स्मट्सने भारतीय मामलेकी जाँचके लिए तुरन्त एक कमीशन नियुक्त कर दिया था। इस कमीशनके सदस्य तीन यूरोपियन थे। समझौतेके लिए जमीन तैयार करनेको चतुर सरकारने गांधीजी और उनके साथी—कैलन बक तथा पोलकको १८ दिसम्बर १९१३ को बिना शर्त रिहा भी कर दिया। उनके बाद शीघ्र ही बेस्ट भी छोड दिये गये।

जेलसे छूटते ही गांधीजी तथा उनके साथी डरबन आये। यहांसे तुरन्त २१ दिसम्बर १९१३ को गांधीजीने स्मट्सको

एक जोरदार पत्र लिखा जिसमे उन्होने माग की थी कि कमीशनमे किसी भारतीय विरोधी यूरोपियनको न रखा जाय, कमसे कम एक भारतीय कमीशनका सदस्य हो, सब सत्याग्रही कैदी तुरन्त रिहा कर दिये जायँ, और यदि मजदूरों पर हुए अत्याचारोंके संबधमे हमसे गवाही लेनी हो तो हमे खानो व कारखानोंके केन्द्रमे जाने दिया जाय। इस पत्रमे गांधीजीने यह भी साथही साथ घोषित कर दिया था कि अगर उनकी ये शर्तें स्वीकार न की गई तो वे फिरसे सत्याग्रह शुरू कर देंगे।

किन्तु सरकार अभी भी ऐंठी हुई थी। २४ ता० दिसम्बरको सरकारके अध्यक्ष जनरल स्मट्सका गाधीजीको रूखासा उत्तर मिला कि कमीशनमे उनकी शर्तपर सदस्य नियुक्त नहीं किया जा सकता। फलतः गाधीजीने अपनी पूर्व घोषणाके अनुसार एक जनवरी १९१४ से पुनः सत्याग्रह करनेका ऐलान कर दिया।

इसी समय ऐन्ड्रूज भी डरबन आ पहुचे। दोनों मित्रोंकी यह प्रथम मुलाकात थी। इधर घटना चक्र भी बदलता जा रहा था। दक्षिण अफ्रीकाकी यूनियन रेलवेके यूरोपियन कार्यकर्त्ताओंने यकायक हड़ताल बोल दी थी। अतः गांधीजीके कुछ भारतीय मित्रोंने उन्हे इस अवसरका फायदा उठाकर तुरन्त सत्याग्रह शुरू कर देनेकी राय दी। किन्तु गाधीजी किसीकी मुसीबतों पर पनपनेवालोमे से नहीं है, उनके सत्याग्रहके सिद्धान्तमे दूसरे की मूसीबतोसे अपना फायदा उठाना बिलकुल अमान्य और वर्जित है। फलतः गांधीजीने अपने मित्रोंकी इस पापपूर्ण आकाक्षाको दबाते हुए स्पष्ट घोषित कर दिया कि यदि सत्याग्रहकी आवश्यकता हुई तो रेलवे हडतालके खतम होनेपर ही उसे छेडा

जा सकेगा। गाधीजीकी इस निर्मल घोषणा और अशत्रु भाव को देखकर प्रतिशोधी -और प्रतिहिंसक ससार चकित हो उठा। शत्रुपर दया वा करुणा करनेका यह अद्भुत व्यापार नि सन्देह दुनियाके लिये नया सा था। अतः गाधीके शत्रु भी उनकी इस व्यापक करुणासे पिघल कर द्रवित हो उठे, तथा कठोर और गोरी सरकार भी भारतीयोंके इस अपूर्व बलिदान और त्यागसे प्रभावित हुए विना न रह सकी। सत्याग्रहकी यह महत्वपूर्ण विजय थी। गाधीने अन्ततः—सरकारके हृदयको अपने स्नेहकी आचसे नरम कर दिया था।

सरकारको विपद्ग्रस्त पाकर गाधीजी भी अब यह चाहने लगे थे कि अच्छा हो यदि किसी तरह भारतीयों और सरकारके बीच शातिपूर्वक समझौता हो जाय। अतः उन्होने स्मट्ससे मिलनेके लिए एक प्रार्थना पत्र भेजा। यह प्रार्थना स्वीकार कर ली गई और तद्नुसार गांधी अपने मित्र एन्ड्रूजको लेकर स्मट्ससे मिलने प्रिटोरिया पहुचे। यद्यपि इस वार स्मट्स बडी जल्दीसे मिलनेको तय्यार हो गये थे, लेकिन ये वे ही स्मट्स थे जिन्होंने 'अभियान' के प्रारम्भमें भारतीय नेताकी कोई बात तक सुननेसे इन्कार कर दिया था। तो क्या अब स्मट्सका हृदय बदल गया था? ऐसा समझना गलत होगा। उसका हृदय भीतरसे वस्तुतः पूर्वकी भाँति ही दुरंगा और कुचाली बना रहा, जैसा कि उसके समझौतेके बादके और आजके कारनामोंसे प्रत्यक्ष ही है। वह इस समय असलमें सत्याग्रहियोंके पौरुषको दबानेमें असमर्थ हो उठा था, और इसीलिए भय और नीति वश समझौतेके लिए तैयार हुआ था, बदला कदापि नहीं।

अस्तु जिस किसी तरहसे इस बार गांधीजी और जनरल स्मट्स मिले और उनमे बहुत-सा पत्रव्यवहार भी चला। गाधीजीने अन्तमे स्मट्सके सामने निम्न शर्तें पेश की,—भारतीयोंसे उनके मामलेमे सलाह ली जायेगी, कमीशनके काममे भारतीय रोड़ा न अटकायेंगे, सत्याग्रह स्थगित कर दिया जावेगा और सत्याग्रही कैदी रिहा होगे, ३ पौंड का टैक्स हटा दिया जावेगा; हिन्दू और मुस्लिम तथा पारसी धर्मके नियमानुसार हुए व्याह कानूनन् करार दिये जायेंगे; शिक्षित भारतीयोको ट्रान्सवालमे प्रवेश दिया जायगा आदि।

इन शर्तोंके उत्तरसे स्मट्सने गाधीजीको सूचित किया कि सत्याग्रही कैदी तो रिहा कर दिये जा चुके है, और बाकी का फैसला 'कमीशन की रिपोर्ट' आने पर कर दिया जायगा। गाधीजी इस उत्तरसे सतुष्ट हो गये और फलतः कमीशनकी रिपोर्ट तैयार होने तकके लिए उन्होने सरकारके साथ एक अस्थायी समझौता कर लिया। इस समझौतेके करानेमे ऐन्ड्रूजने गांधी और स्मट्सके बीच एक मध्यस्थ और साक्षीका काम किया था।[1] लार्ड हार्डिजने भी इस अवसर पर भारतीयों और यूनियन सरकारके बीच समझौता करानेमे सहयोग देनेके लिए भारत सरकारकी तरफसे बेनजमिन रॉबर्टसनको दक्षिण अफ्रिका भेजा था। अतः रॉबर्टसन भी इस समय प्रिटोरियामे मौजूद थे।

उक्त कमीशनकी रिपोर्ट, जिसपर शेष फैसला रोक दिया गया था, जल्दी ही तैयार होकर प्रकाशित कर दी गयी। रिपोर्ट पक्षपात रहित थी, और उसमे भारतीयोंकी उन सब मागोंको सही और

1 Ibid pp 501-502

उचित बतलाया गया था, जो गांधीजीने स्मट्सके सामने पेशकी थीं। कमीशनने जोरदार शब्दोंमे खूनी कानून, ३ पौंडके टेक्स, और भारतीय विवाह संबधी कानूनको जिनकी वजहसे सत्याग्रहका भीषण तूफान उठा था, यूनियन सरकारसे रद्द करने की सिफारिश की थी। इसके साथ ही कमीशनने भारतीयोंकी अन्य तमाम छोटी मोटी मांगोंको भी मंजूर करनेकी सलाह दी थी। कमीशनकी इन सिफारिशोंसे भारतीय मामले का शाति दायक हल अब निश्चित सा हो गया था। अतः इस रिपोर्टके निकलने पर ऐन्ड्रूज और बेनजमिन दक्षिण अफ्रीका के भारतीयोंकी चिन्तासे मुक्त होकर अपने निर्दिष्ट स्थानों— क्रमशः इंगलैण्ड और भारतको चल दिये।

कमीशनकी सिफारिशके बाद जैसाकि स्मट्सने वचन दिया था, यूनियन सरकारने भी विना समय लगाये यूनियन पार्लिमेंट (केप टॉउन) मे इंडियन रिलीफ बिल (Indian Relief Bill) पास करके भारतीयोंकी सारी मागोंको स्वीकार कर लिया। इसके साथही स्मट्सने ३० जून १९१४ को एक पत्र लिखकर गांधीजीको यह भी आश्वासन दिया कि शासन संबधी मौजूदा कानूनोंका प्रयोग भी भारतीय हित और अधिकारोंको दृष्टिमे रखकर किया जायेगा।[1]

सफल संग्राम और गांधीजीका भारतको प्रस्थान—

इस प्रकार रिलीफ बिलके पास हो जानेसे सत्याग्रहका वह प्रगल्भ और महान सत्य-संग्राम, जो १९०६ मे गांधीजीके विशाल और दृढ़ नेतृत्वमे आरम्भ हुआ था, १९१४ मे आकर सफलता-

1 Ibid pp 505-506

पूर्वक समाप्त हो गया। सत्याग्रह--सत्य और अहिंसा, की यह अनुपम और अलौकिक विजय थी। भारतीय सत्याग्रहियों—स्त्री, बच्चे, और पुरुषोंने, अपने आत्मत्याग, आत्म-बलिदान और आत्म-पीड़न द्वारा, अन्ततः पाश्चात्य भौतिकवादी नृशंसता और पशुताको अपनी हार स्वीकार करनेको मजबूर करके ही छोड़ा। अतः इस सत्याग्रहसंग्रामको हम भारतकी आध्यात्मिक संस्कृति और पश्चिमकी भौतिकवादी अथवा रावणीय संस्कृतिके बीचका एक युद्ध भी कह सकते है–जिसमे एक ओर भौतिकवादी हिंसा से परिपूर्ण गोरोंकी आसुरी शक्ति थी और दूसरी ओर भारतीयो की आध्यात्ममूलक अहिंसाकी विमल देव शक्ति थी। दूसरे शब्दोंमे यह युद्ध दो परस्पर विरोधी भावनाओं, सिद्धान्तों और संस्कृतियोंके बीचका एक विकट और असामान्य युद्ध था।

निःसन्देह इस युद्धके प्रारम्भमे भौतिकता और पशुबलमे विश्वास करनेवाले संसारने यही सोचा होगा कि निहत्थे और शस्त्र एवं ताकत विहीन भारतीय सत्याग्रही स्मट्सके शस्त्रों और पल्टनोंके सामने क्या टिक सकेंगे, किन्तु उसे (संसार) तब जरूर अमित आश्चर्य हुआ होगा, जब उसने देखा कि आठ वर्षोंके अविरल पीडन और बलिदानके पश्चात् हिंसा नतमस्तक होकर अहिंसाके सामने घुटने टेके हुए है, और जनरल स्मट्स निहत्थे और दरिद्र भारतीयोंके साथ सम्मानपूर्वक समझौता कर रहे है। अतः हम निःसंकोच होकर कह सकते हैं कि दक्षिण अफ्रिकाका यह संग्राम 'सत्य' और 'अहिंसा'की एक अपूर्व और सफल लडाई थी।

अस्तु सत्याग्रह संग्रामके इस प्रकार सफलता पूर्वक समाप्त हो

[सन् १९१४] दक्षिण अफ्रीका से लौटते समय [पृष्ठ २८९.]

जानेसे गांधीजीका दक्षिण अफ्रीकाका कार्य भी अब समाप्त हो चला था। इसलिए अब वहा रुकना आवश्यक न समझ कर गांधीजी भारत लौटनेके लिए तत्पर हो उठे। वे आरम्भ ही से इस अवसरकी ताकमे थे कि कब दक्षिण अफ्रीकाके कार्योसे छुट्टी मिले और वे मातृभूमिकी सेवाके लिए हिन्दुस्तान लौट जावे। अब उन्हे यह सुअवसर मिला था, इसलिए वे समझौतेके कुछ ही महीने बाद १८ जुलाई १९१४ को इंगलैडके मार्गसे, क्योंकि उन्हें वहाँ अपने गुरु गोखलेसे भेट करना था,[१] भारतके लिए रवाना होगये।

उपसहार—

जिस समय गांधीजी भारतको लौटे, उस समय उनका ख्याल था कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोके अब सारे दुःख-दर्द खतम हो जायेगे, और यूनियन सरकार भविष्य ने, जैसा कि उसके मत्री स्मटूसने आश्वासन दिया था, भारतीयोके हितका ख्याल रखकर ही कानूनोका निर्माण और प्रयोग किया करेगी। किन्तु खेद, ये सब वायदे झूठे और सारहीन निकले। कूटनीतिज्ञ स्मटूसने अपने उन वायदोंको कभी पूरा न किया, और आज भी वह भारतीयोंके विरुद्ध नये-नये कानून और बिल बनाने पर लगा हुआ है। स्मटूसने असलमे उस वक्त जो कुछ किया था, वह सब गांधीजीके भय ही से किया था, इसलिए उनके पीठ फेरते ही भारतीयोको फिर उसी पुराने तरीकेसे तग किया जाने लगा, और निर्भय होकर गोरे पुनः दक्षिण अफ्रीकासे भारतीयोको निकालने के लिए शोर मचाने लगे। १९२१ की इम्पीरियल कान्फरेन्समे ब्रिटिश गवर्नमेटने तक यूनियन सरकारसे भारतीयोंके नागरिक

---

१ गोखले उस वक्त इगलैण्ड मे थे।

हकोंको कबूल करनेकी सिफारिस की, किन्तु रंग-द्वेषी जनरल स्मट्सने भारतीयोंको किसी भी तरह बराबरीका हक देनेसे इनकार कर दिया। बल्कि इसके विपरीत उसकी यूनियन सरकारने उसी साल तीन ऐसे आर्डिनेन्स पास किये, जिनके द्वारा भारतीयोंके व्यापारिक अधिकार बिलकुल घटा दिये गये, म्यूनिस्पल फ्रेन्चाईज छीन लिया गया, और उन्हे यूरोपियन एरियामे बसनेसे कतई रोक दिया गया। १६३२मे फिर भारतीयोंके अधिकारोंका अपहरण करनेके लिए मलान ऐक्ट पास हुआ। यह बहुत ही विषाक्त ऐक्ट था, अतः उसकी जगह १९३६ मे सरकारने स्वयं कुछ सुधारोंके साथ 'ट्रान्सवाल ऐशियाटिक लड टिन्योर ऐक्ट' पास किया। इस ऐक्टके अनुसार भारतीयोंको यूरोपियन एरियासे अलग तो किया गया, लेकिन उन्हे अफ्रीकामे बसने और जायदाद बनानेके हक जो मलान ऐक्टमे नहीं दिये गये थे, दे दिये गये। १९३९ मे भारतीयोंको और कसकर बाधनेके लिए ट्रान्सवाल लैंड और ट्रेडिंग बिल पास किया गया। १९४३ मे पेगिंग ऐक्ट पास हुआ और भारतीयोंके तिजारत, बसने और जमीन लेनेके हको पर और कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

और आज १९४६ मे घिटो बिल पास करके जनरल स्मट्सने भारतीयोंके हकोंपर पूर्ण आघात कर दिया है। इस बिलके अनुसार भारतीयोंको यूरोपियनोंसे अलग हिस्सोंमे रहनेको मजबूर किया गया है। रग-द्वेषका यह नग्नरूप है। इसकी प्रतिक्रियामे भारतीयोंने आज फिर वहाँ 'सत्याग्रह सग्राम' छेड़ रखा है। दूसरी तरफ गोरी फासिस्ट शाही भी भारतीय सत्याग्रहियोंका पूरी तरह कठोरता और भीषणताके साथ

बा और बापू

दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटते समय — इङ्गलैण्ड मे

[पृष्ठ २९०

सन् १९१४]

दमन करती जा रही है। किन्तु भारतको आशा है कि यदि उसकी प्रवासी जनता गाधीजीके सत्य और अहिंसाके मार्गपर युद्धको चलाती रही तो स्मट्सको अन्तमे फिर झुकना पड़ेगा और गोरे आतकवादको भारतीयोसे क्षमा मॉगनी पड़ेगी।

महात्मा गाधीके शब्दोंमे यह गोरी अत्याचारी राजसत्ता अमलमे अपनी पशुता, स्वार्थपरता और रगके अभिमानमे पड़कर, दक्षिण अफ्रीकामे पाश्चात्य सभ्यता की कब्र खोद रही है। महात्मा गाधीका विश्वास है, जैसा कि उन्होंने पूनाकी प्रार्थना सभामे १० जुलाई १९४६ को कहा था, कि "यदि हमारे लोग दृढनिष्ठ होकर अन्त तक अहिंसा पर कायम रहे" तो उनका प्रबल पौरुष "पश्चिमी सभ्यता, जिसका सच्चा और नगा रूप दक्षिण अफ्रीकामे प्रकट हुआ है, के कफन के सन्दूक पर अन्तिम परेक ठोक देगा।" गाधीजीको यह भी आशा है कि स्मट्स जल्दी ही अपनी इस भूलको मालूम करके कि केवल अत्याचार और दडके भयसे भारतीयोंको दबाना असम्भव है, उनके साथ सम्मानप्रद समझौता करनेको राजी हो जायगा।

निःसन्देह, सम्पूर्ण प्रजातत्रवादी ससारकी निगाहें आज दक्षिण अफ्रीकाकी इस अमानुषिक फासिस्टवादी अनीतिको देखकर बहुत ही क्षुब्ध और त्रस्त हैं। देखना है दक्षिण अफ्रीका के इस फासिस्टवादका किस तरह अन्त होता है।[1]

---

१ दक्षिण अफ्रिकाकी आजकी स्थितिपर, वक्तव्य देते हुए २३ दिसम्बर ४७ को रायटर के प्रतिनिधिसे वहाँ की नेशनल भारतीय काग्रेसके प्रधान श्री मोरने कहा था—"दक्षिण अफ्रीकाके जीवनमें वर्ण विद्वेषकी भावना का प्राबल्य है। इस स्थानपर रहकर कोई भी वहा की स्थिति देखनेपर

यही कहेगा कि आजके दक्षिण अफ्रीका और १९३३ के नाजी जर्मनी मे तनिक भी अन्तर नहीं है।"

हाल ही मे (११ मार्च सन् ४८) की नेटाल और ट्रान्सवाल की भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने अमेरिकाके पत्रकारोके नाम एक पत्र लिखा है—जिसमे कहा है कि 'नेटालके २ लाख २३ हजार भारतीय एक बहुत बडे कैदखानेमे रह रहे हैं। आप लोग दक्षिण अफ्रीका का केवल एक ही चित्र देखेंगे—सोने की खानें, सुन्दर दृश्य तथा उन्नतिशील उद्योग, लेकिन दक्षिण अफ्रीका का दूसरा चित्र आप लोगो को देखने के लिए न मिलेगा—गुलाम मजदूरोका प्रदेश और बढती हुई तपेदिककी बीमारी।

'दक्षिण अफ्रीकामे भारतीय इस स्पष्ट समझौतेपर आये थे कि उन्हे नागरिकताके सम्पूर्ण अधिकार दिये जायेंगे, लेकिन सन् १८९६ मे ही उनसे नागरिकताके अधिकार छीन लिये गये। इस समय रग और जातिभेदके आधारपर बने हुये भारतीयोके विरुद्ध ६६ कानून हैं। उन्हे एक प्रातसे दूसरे प्रातमे जाने की भी आजादी नही है।'

लेकिन इन सबके बावजूद गाधीजीके साथ हमे भी विश्वास है कि अत्याचारी अफ्रीकाकी सरकारका अन्तत झुकना पडेगा और भारतीयोकी सही मागोको स्वीकार करना पडेगा! डरबनसे प्रकाशित १४ मार्च सन् ४८ के समाचारके अनुसार नेटाल भारतीय सघके अध्यक्ष श्री ए एस काजीने डरबनकी एक सभामें भाषण करते हुए कहा है कि 'दक्षिण अफ्रीकाकी सरकार भारतीयों की समस्या पर विचार करनेको तैयार हो गयी हैं।'

श्री काजीके इस वक्तव्यसे हमे आशा होती है कि स्मट्स अब अधिक दिन तक न ऐंठे रहेंगे और उसकी सरकार भारतीयोसे सम्मानपूर्वक समझौता कर लेगी!

प्रथम भाग समाप्त

मुद्रक—पं० पृथ्वीनाथ भार्गव, भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस।

सहायक पुस्तकों की सूची

1. The Awakening of Asia, by H M Hyndman
2. India by Sir V Chirol
3. The Rise and Growth of the Congress in India by C F Andrews & Girija Mukerji
4. Indian Constitutional and National Development by Gurumukh Nihal Singh
5. Mahadeva Govind Ranade by Killock
6. Renascent India by H C E Zacharias
7. Allan Octavian Hume by W Wedderburn
8. Congress 1903, Ghose
9. Economic History of British India by R C Dutt
10. Glimpses of the World History
11. International Politics by F L Schuman
12. Mrs Besant, pub Madras 1917.
13. An Indian diary by Montegue,
14. आत्मकथा अनु हरिभाऊ उपाध्याय
15. M K Gandhi by J J Doke
16. दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह ले महात्मा गांधी अनु. गोयदे
17. Satyagraha In South Africa Trans, by Govindji Desai
18. महात्मा गांधी लेखक श्री रामचन्द्र वर्मा
19. Gandhiji World Citizen by M Lester
20. Gandhiji pub, 1944 BOMBAY
21. Hind Swaraj by M K Gandhi